॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

त्रैवर्णिकानां

नवरत्नविवाहपद्धतिः ।

श्रीराजधानीकर्पूरस्थलनिवासिगौतमगोत्रशौरि-
अन्वयालंकृतश्रीदैवज्ञदुनिचन्द्रात्मजश्रीयुत-
पण्डितविष्णुदत्तवैदिककृत-नवरत्न-
प्रकाशिकाटीकासहिता ।

इयं च

श्रीकृष्णदासात्मज-गंगाविष्णोः
अध्यक्ष "लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" मुद्रणालये
मैनेजर पं० शिवदुलारे वाजपेयी इत्यनेन स्वाम्यर्थं
मुद्रिता प्रकाशिता च ।

षष्ठं संस्करणम् ।

संवत् १९७६, शके १८४१.

कल्याण-मुंबई.

॥ श्रीः ॥

विशेष सूचना.

विदित हो कि इस लक्ष्मीवेंकटेश्वर यंत्रालयमें हमारी बनाई भई रामगीता भाषाटीकात्रयोपेता तथा उपनयनपद्धति भाषाटीकासहित उपस्थित है। इन सर्व नवरत्नाविवाहपद्धति आदि पुस्तकोंका पुनर्मुद्रणादि सर्व अधिकार श्रीकृष्णदासात्मज गंगाविष्णुको दे दिया है यहांसे कोई मतलब लेके दूसरा कोई न छापे.

दैवज्ञ दुनिचन्द्रात्मज (शौरि)
पं० विष्णुदत्तशर्मा वैदिक,
कपूरथला.

विज्ञापना।

विदित हो कि हमारे आर्यावर्त भारतखण्डमें अतिचिरसे वर्धित अधर्मरूप यवनराज्यके प्रताप (संताप) से नित्य आनन्दरूप शीतलस्वभावसंपन्न सगुणनिर्गुणात्मक पूर्वोत्तर तटयुक्त और वेद ४ पुराण १४ न्याय २ मीमांसा २ धर्मशास्त्र १८ शिक्षा १ कल्प २ व्याकरण ८ निरुक्त १ छंद ३ ज्योतिष ६ काव्य २ नाटक १० चंपू १ आख्यायिका इतिहास कोश ५२ अलंकार नीति मंत्र २ तंत्रचिकित्सा ८ गणित २ वेदांत सांख्ययोग कर्मकाण्डादिकरूप विकसित जो अनेक कमल उनपर लोभायमान भृंगरूप विद्वद्वृंद और आनन्दमग्न कविरूप हंस चक्रवाक पारावत क्रौंचादियोंसे शोभायममान वेदाविद्यारूप नदीके किञ्चित् शुष्कप्राय होनेपर तदनंतरही सर्वान्तर्यामी कृपालु परमेश्वरकी कृपादृष्टि और अखण्डप्रताप श्रीमती महाराजराजेश्वरी श्रीविक्टोरियाजीके राज्यप्रतापरूप अरुणोदय होनेपर और धर्मरूप चारों तरफ वृष्टिके होनेसे वही सनातन वेदविद्यारूप नदी सगाध होकर वहने लगी उसकी अशुद्धिरूप मलनिवृत्ति करनेके लिये हमारे भ्रातृगण क्षत्री वैश्य शूद्रादि तनमनधनसे अतिउद्यत होनेपर बौद्ध चार्वाक जैन अनार्यादि नूतनमलके निवृत्त होनेसे वही हंसादिरूप विद्वान् निर्मल जलपान करते हैं तथापि विना कषाय पदार्थ हरीतक्यादि भक्षण विना जैसे जलका मधुरगुण (मिठास) मालूम नहीं होता तद्वत् विना अर्थ विनियोगके वेदविद्याका फलरूप गुण मालूम नहीं होता इसमें श्रुति प्रमाणभी है यथा

"स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम् । योऽर्थज्ञ इत् सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा ॥" इसलिये सर्वोपकारके लिये विवाहपद्धतिको मैंने वेदभाष्य सायण उवट महीधरादि देख और श्रीनिवाहुरामकृत संस्कृत टीका तथा ब्राह्मणसर्वस्व हरिहरभाष्य आदि ग्रन्थोंका सार ले तथा अनेक विवाहपद्धति गृह्यसूत्रसे मिलाय पाठ शुद्ध करा है और जो मंत्र पद्धतियोंमें अपचारसे अशुद्ध थे वह यजुर्वेदादि संहितासे मिलाय शुद्ध कर साथ वेदका प्रमाण अध्याय मंत्रांकभी लिखे हैं और मंत्रोंको ऋषि छन्द देवतादिसे सुशोभित कर कर्तव्यता मंत्रार्थ भावार्थ गूढार्थ-युक्त नव प्रकरण संयुक्त भाषामें टीका बनाई (रची) है इसलिये सज्जन पुरुष इस पुस्तकको स्वीकार कर मेरे परिश्रमको सफल करें और इस पुस्तकमें जो वरकन्याके प्रति उपदेश आचार दोष गुण कहे हैं वह उपदेश करें ऐसे करनेमें लोक परलोकमें यशकी धर्मकी प्राप्ति होगी । इस परिश्रमसे सर्वांतर्यामी परमेश्वर श्रीरामचंद्रजी प्रसन्न हों ।

राजधानीकपूरस्थलनिवासी

गौतमगोत्र (शोरि) अन्वयालंकृत

दैवज्ञ दुनिचन्द्रात्मज

पण्डित-विष्णुदत्तशर्मा वैदिक.

विवाहपद्धतिस्थितविषयनिरूपण.

प्रथम प्रकरण ज्योतिषशास्त्रमें.

जिसमें स्त्रीप्रशंसा, दैवज्ञपूजन, विवाहप्रश्न, प्रश्नसे शुभाशुभ विचार, वैधव्ययोगका व्रत शांति आदिसे परिहार, सावित्री-व्रतविधान, पिप्पलविवाह, कुंभविवाह, अच्युतविवाहविधान, प्रश्नसे कन्यास्त्रीपुत्रविचार, मंगलशब्द, अशुभशब्द, बालकव-रणनक्षत्र, कन्यावरणविधि, कन्यापरिणयनकाल, चैत्रादि-मासनियमव्यवस्था, ज्येष्ठमें विवाह निषेध, पुत्रविवाहके अनंतर कन्याविवाहनिषेध और विधान, मुण्डनविचार; विवाहके मुहूर्त, पुरुषस्त्रीराशिचक्र, वर्णचक्र, योनिचक्र, गणचक्र, लत्ता-पात, युतिवेध, चरणवेध, जामित्र, बुधपंचक, सर्व देशमें एकार्गल चक्र यह सब दोषपरिहारसहित, उपग्रह, क्रांतिसा-म्य, दग्धातिथि, दशयोग पंगंधकाणलग्नविचार, ग्रहनैसर्गि-कमैत्रीचक्र, दुष्टभकूट, लग्नशुद्धि, गोधूलीलग्न, वधूप्रवेश, द्विरा-गमनमुहूर्त, शुक्रविचार परिहारसहित यह सब भाषाटीकासहित प्रथम प्रकरणमें लिखे हैं ।

द्वितीय प्रकरण कर्मकाण्डविषयमें.

यथार्थग्रहचित्र, मण्डपचित्र, तिलकमण्डलचित्र, सर्वतो-भद्रचित्र, पञ्चाग्निकुण्ड, आज्यस्थाली, चरुस्थाली, प्रणीतापात्र, पुरोडाशपात्र, स्रुव, उपभृत्स्रुक्, स्रुवास्रुक्, पुष्करस्रुक्, अग्निहोत्र-हवणी, वैकंकतस्रुक्, उलूखल, मुसल, शूर्प, शम्या, स्फ्यः

घृतावदान, उपवेश, कच, दृषत्, उपल, षड्वर्त, अग्नि, अरणी, चोत्तरारणी, मोविली, प्रमन्थ, नेत्र, अन्तर्धानाटक, हविर्धानपात्री, प्राशित्रहरण, चमसा, इडापात्री, यजमानासन, पत्न्यासन, होत्रासन, ब्रह्मासन, यजमानपात्री, पत्नीपात्री, कृष्णाजिन इन सबके प्रमाणसहित चित्र, कात्यायनोक्तपात्रोंके लक्षण, विनियोगवर्णन, ऋषिच्छंददेवतालक्षण, छंदसंख्या, गायत्रीछंदभेद यह सर्व श्रेष्ठतासे द्वितीय प्रकरणमें लिखे हैं ।

तृतीय प्रकरण कात्यायनोक्तशांतिमें.

जिसमें प्रमाणसहित स्वरसंयुक्त अतिशुद्ध कर वेदोंके मंत्र, स्वस्तिवाचन, गणपत्यादिपूजन, रक्षाविधान, आचार्यादिवरण, वेदस्वरूप, आशीर्वादमंत्र, कलश, वास्तुपूजन, योगिनी, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इंद्रादि दश दिक्पाल, नवग्रहपूजन, बलिदान, संकल्प, शांति, सामग्री है ।

चतुर्थ प्रकरण संकल्पादिभेदमें.

विवाहसामग्री, चतुर्थीकर्मसामग्री, कन्योद्वाहमें यजमानकर्तृकप्रतिज्ञासंकल्प, यजमानकर्तृक शुभ्रचौलशाटिकासंकल्प, कन्यापितृकर्तृक वेदीदानसंकल्प, यजमानकर्तृक चतुर्थीदानसंकल्प, यजमानकर्तृक उपाध्यायदक्षिणासंकल्प, यजमानकर्तृक कन्यायज्ञ, अंतमें भूरिअन्नद्रव्यदानसंकल्प, यजमानकर्तृक विवाहप्रतिज्ञासंकल्प, वरकर्तृक पत्नीप्रतिग्रहगोदानसंकल्प, अभावे सुवर्णमयीगोदानसंकल्प, उपाध्यायदक्षिणासंकल्प, यजमानकर्तृक खट्वादानसंकल्प, जलवेष्टन, गोत्रोच्चारण, अति

विस्तृत कन्यासंकल्प, संक्षेपसे कन्यासंकल्प, परिभाषा, सूर्यादिनवग्रहमंत्र, इनको पूजनीयता, षोडशोपचार पूजा, ज्योतिषबोधक नवग्रहमंगलाष्टक, पारस्करोक्त कुशकंडिकामें विवाहसूत्र ।

पंचम प्रकरणमें.

विवाहपद्धति प्रारम्भ, मंगलाचरण, ग्रंथकर्तुः प्रशंसा, वाग्दानविधि, बाह्मकवरण, वेदोच्चारण, गणेशस्तुति, ऋषिसृष्टि, शिवसंकल्प, शांतिपाठ यह सब अत्युत्तम भाषाटीकासहित साथ प्रमाण स्वरयुक्त मंत्र हैं ।

षष्ठ प्रकरण विवाहविधिमें.

(तत्र कन्याहस्तेन) यहांसे आदि ले (प्राङ्मुखौ वधूवरौ स्थितौ भवतः) इस पर्यंत अर्थात् संपूर्ण पद्धति अनेक पद्धतियोंसे मिलाय संस्कृत शुद्ध कर ऋग्वेदादि चतुर्वेदोंसे मंत्र निकाल और जिस वेदका जो मंत्र उसका प्रमाण तथा स्वरसहित अतिशुद्ध कर विनियोगोंके सहित लिखे हैं । इसकी टीका महीधरभाष्य, सायनभाष्य, उवटभाष्य, ब्राह्मणसर्वस्व, गृह्यसूत्र, हरिहरभाष्य तथा निबाहुरामकृतटीका जिसको पाश्चालदेशीय महाविद्यानिकरके मुख्य संस्कृताध्यापक श्रीपण्डित गुरुप्रसादजीने शुद्ध किया इत्यादि अनेक वेदार्थबोधक ग्रंथोंसे मंत्रोंके अर्थ साथ मन्वादि प्रमाण देकर सबकी समझमें आनेवाली मनोभाविनी अतिसुंदर भाषाटीकामें करे हैं इसी प्रकार प्रमाणोंके विवाहपद्धतिके पद २ का अर्थ स्पष्ट भाषाटीकामें लिखा है ।

सप्तम प्रकरणमें.

चतुर्थीकर्म अतिविस्तृत भाषाटीकासहित है ।

अष्टम प्रकरण स्त्रीआचारमें.

धर्मशास्त्रादि अनेक शास्त्रोक्त विवाहानंतर जो स्त्रीमात्रको पतिसेवा आदि प्रतिदिन कर्त्तव्य है वह अतिविस्तारसे निरूपण करा है ।

नवम प्रकरण रजस्वलाकृत्यमें.

अर्थात जिस समय स्त्रियोंको ऋतु आते हैं उस दिनसे तीन दिनपर्यन्त स्त्रीरक्षा भोजन शयनासनादि व्यवस्था जिससे गर्भाशय शुद्ध रहनेसे अतिशौर्य बलबुद्धिसंपन्न और दुराचारसे दुष्ट कुकर्मी संतान होती है । यह सब धर्मशास्त्र कर्मकांड ज्योतिष चिकित्सासे शुद्ध कर अतिसुन्दर निरूपण करा है । तथा आखिर प्रकीर्णाध्याय लिखा है ।

प्रार्थना—यद्यपि अनेक विवाहपद्धति मूल और संस्कृतटीकासंवलितसे कार्य सिद्ध था तथापि वेदमंत्रोंमें अशुद्धिका सन्देह और संस्कृतटीकाको सर्वोपकारक न होनेसे तथा बिना विवाह प्रकरण अन्य स्थानोंमें मंत्रार्थ कर्तव्यताकी इच्छा लग्नशुद्धि कात्यायनीशांति संकल्प आदिकी आवश्यकता विचार कर संस्कारकी शुद्धि और लोकोपकारार्थ कि जिसको पढकर सामान्य विद्यासंपन्नभी पुरुष अतिसुगम रीतिसे समझकर आनंदपूर्वक निर्वाह करे इसलिये मैंने अत्युत्तम भाषाटीकासहित विवाहपद्धतिका पुस्तक नव प्रकरणमें अति परि-

श्रमसे बनाया है । इसको महाशय जन स्वीकार कर प्रचरित करें और जो मेरी अशुद्धि हो वह क्षमा करें ।

पुष्पाञ्जलिः—यदशुद्धमसम्बद्धमज्ञानाद्यत्कृतं मया ।
विद्वद्भिः क्षम्यतां सर्वं बालत्वादयमञ्जलिः ॥

कर्पूरस्थलनिवासि—दैवज्ञ—दुनिचन्द्रात्मज (शोरि)
पण्डित विष्णुदत्तशर्मा—वैदिक.

विशेषद्रष्टव्यम् ।

यथाह सुश्रुते भगवान् धन्वन्तरिः । अथास्मै पंचविंशतिवर्षाय द्वादशवर्षां पत्नीमावहेत् । पित्र्यधर्मार्थकामप्रजाः प्राप्स्यतीति ।

किञ्च—तद्वर्षाद्द्वादशात्काले वर्तमानमसृक् पुनः । जरापक्वशरीराणां याति पंचाशता क्षयम् ॥ ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिः । यद्याधत्ते पुमान्गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते ॥ जातो वा न चिरं जीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः । तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत् ॥ अयमेवाशयमालम्ब्य भावमिश्रोऽपि भावप्रकाशे वयोधिकां निंदन् बालां स्तौति ॥

यथा—पूति मांसं स्त्रियो वृद्धा बालार्कस्तरुणं दधि । प्रभाते मैथुनं निद्रा सद्यः प्राणहराणि षट् ॥ वृद्धोऽपि तरुणीं गत्वा तरुणत्वमवाप्नुयात् । वयोधिकां स्त्रियं गत्वा तरुणः स्थविरायते ॥ अत्याशितोऽधृतिः क्षुद्रान्सव्यथांगः पिपासितः । बालो वृद्धोऽन्यवेगार्तस्त्यजेद्रोगी च मैथुनम् ॥ लिंगिनीं गुरुपत्नीं च सगोत्रामथ पर्वसु । वृद्धां च संध्ययोश्चापि गच्छतो जीवनक्षयः ॥ विंशतेश्चैव मैथुनमित्याद्यनेकवचनप्रामाण्यात्तद्ग्रन्थालोकनाच्च स्त्रिया वरो द्विगुणोऽभावे सार्धो वा स्त्री त्ववयवीयसी एव विधेया इति मे प्रतिभात्यतश्चैहलौकिकपारलौकिकहितेप्सुभिः पुरुषैरस्य प्रचारः कर्त्तव्य इति शम्॥

भा० टी०—सुश्रुतमें भगवान् धन्वंतरी स्वयं लिखते हैं कि पचीस (२५) वर्षके बालकको द्वादश (१२) वर्षकी स्त्रीसे विवाह करनेसे धर्मअर्थकामसंयुक्त पिताको हित दीर्घायुवाली संतान प्राप्त होती है और स्त्रीको ऋतु द्वादशवर्षसे ले पचास वर्षपर्यन्त रहते हैं और षोडश (१६) वर्षसे न्यून

(कम) स्त्रीको यदि पचीस वर्षसे कम (न्यून) पुरुष प्राप्त हो उससे जो गर्भ हो वह स्रव जाता है अर्थात् गिर जाता है वा उत्पन्न होकर चिरकाल जीवित नहीं रहता यदि रहता है तो दुर्बलशरीर (न ताकत) असमर्थ इन्द्रियवाला चिरजीवता है इस कारणसे अतिबालकोंका गर्भाधान न करावे । अर्थात् पचीस वर्षका पुरुष और सोलह वर्षकी स्त्री वा चौदह वर्षकी स्त्री और वीस वर्षका पुरुष हो इससे न्यून नहीं । और इसी आशयको लेकर भावमिश्रजी भावप्रकाश ग्रंथमें वृद्धा (बडी) स्त्रीका निषेध और बालास्त्रीका स्वीकार कहते हैं । जैसे सडा मांस, वृद्ध स्त्री, लाल दधि वा दिनमें बनाया हुआ दधि, प्रातःकाल स्त्रीसे संभोग और प्रातःकाल निद्रा यह शीघ्र बलको नष्ट करते हैं । वृद्धपुरुष यौवनवती स्त्रीको प्राप्त होय युवा होता है और अपनेसे बडी स्त्रीको यदि युवा पुरुष प्राप्त होय तो शीघ्रही वृद्ध (बूढा) हो जाता है । बहुत अन्न भोजन कर धैर्यरहित क्षुधायुक्त पीडायुक्त तृषायुक्त और बालक अर्थात् वीस (२०) वर्षसे न्यून (कम) और वृद्ध (अशीति ८० वर्षसे ऊपर पुरुष), रोगातुर और जो एकसे संभोग कर चुका हो यह ७ पुरुष मैथुन न करे । यदि यह करे तो प्रत्यक्ष फलको प्राप्त होते हैं । इसी प्रकार संन्यासयुक्त स्त्रीसे वा गुरुकी स्त्रीसे और अपने गोत्रकी स्त्रीसे वा कन्यासे और पर्वकाल, अष्टमी, अमावस, एकादशी आदिमें और वृद्धा स्त्रीसे तथा संध्याकालमें संभोग करनेसे जीवनका

क्षय होता है इसलिये:विंशति अर्थात् वीस (२०) वर्षके ऊपर पुरुषको मैथुन करना चाहिये इत्यादि अनेक वचन निदर्शनसे सिद्ध यह भया कि स्त्रीसे बालक द्विगुण अर्थात् दुगुण (दूना) होना चाहिये । जैसे स्त्री बारह (१२) वर्षकी और पुरुष पचीस (२५) वर्षका । यदि ऐसा योग्य गुणयुक्त वर न मिले तो द्वादश (१२) वर्षकी लडकीको वर विंशति (२०) वर्षका अवश्य होना चाहिये । और कन्या वरसे सदैव न्यून होनी चाहिये। ऐसा करनेसे इस लोकमें यश परलोकमें अनंत सुख प्राप्त होता है, इसलिये संसारमीरु धर्मनिष्ठ पुरुषोंको इसका प्रचार तनमनधनसे अवश्य करना चाहिये ।

प्रार्थनेयं देवज्ञदुनिचन्द्रात्मज (शौरि)
कर्पूरस्थलीयविष्णुदत्तशर्मणः ।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ

भाषाटीकासहिता

नवरत्नविवाहपद्धतिः ।

अथ मुहूर्तचिंतामणौ विवाह (उपयमन) प्रकरणम् ।

भार्य्यात्रिवर्गकरणं शुभशीलयुक्ता ।
शीलं शुभं भवति लग्नवशेन तस्याः ॥
तस्माद्विवाहसमयः परिचिंत्यते हि ।
तन्निघ्नतामुपगताः सुतशीलधर्माः ॥ १ ॥

शिव शिवकर गौरी राम सीतासमन्वितम् ।
नत्वा लग्नविशुद्ध्यर्थं टीकां कुर्वे मनोहराम् ।

भा० टी०—भार्या अर्थात् जिससे विवाह होय वह स्त्री शुभशीलसे युक्त धर्म अर्थ कामका साधन होती है। वह शुभशीलता लग्नद्वारा होनेसे विवाहका समय प्रथमचिंतन करते हैं। भावार्थ यह है कि यदि लग्न दशदोषादिरहित शुद्ध होय तो उसमें पाणिग्रह करनेसे स्त्री दुष्टभी श्रेष्ठ (अच्छी) और वंध्यायोगवाली पुत्रवती और पापिष्ट धर्मयुक्त लग्नके प्रभावसे हो जाती है ॥ १ ॥

आदौ संपूज्य रत्नादिभिरथ गणकं वेदयेत्
स्वस्थचित्तं कन्योद्वाहं दिगीशानलहयवि-

शिखे प्रश्नलग्नाद्यदीन्दुः । दृष्टो जीवेन सद्यः परिणयनकरो गोतुलाककर्कटाख्यं वा स्यात्प्रश्नस्य लग्नं शुभखचरयुतालोकितं तद्विदध्यात् ॥ २ ॥

भा० टी०–प्रथम रत्न सुवर्ण रजतादिसे गणितविद्यानिपुण ज्योतिषी स्वस्थचित्त बैठेको भेटकर कन्याका विवाह निवेदन (कथन) करे यहां रत्नादिसे यह प्रयोजन है जितनेसे संतुष्ट हो जाय उतना द्रव्य देना वा यथाशक्ति अनुसार देना और साथ यह कहना कि मैं कन्याका विवाह करना चाहता हूं। यदि उस काल विवाहप्रश्नसे दशम १० एकादश ११ तृतीय ३ सप्तम ७ पंचम ५ स्थानमें चन्द्रमा होय और पूर्णदृष्टि नवम ९ पंचम ५ से बृहस्पति चंद्रमाको देखे वा वृष तुला कर्क यह प्रश्नके लग्न होय और शुभग्रह युक्त होवे वा देखे तो शीघ्रही विवाह होता है ॥ २ ॥

विषमभांशगतौ शशिभार्गवौ तनुगृहं बलिनौ यदि पश्यतः । रचयतो वरलाभमिमौ यदा युगलभांशगतौ युवतिप्रदौ ॥ ३ ॥

भा० टी०–यदि शुक्र चंद्र विषम (मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धन, कुंभ) राशिके नवांशमें बलयुक्त प्राप्त होकर प्रश्नलग्नको देखे तो यह वरकी प्राप्ति कन्याको करते हैं। यदि शशी शुक्र

समराशिके नवांशमें हों और बलयुक्त प्रश्नलग्नको देखे तो कन्याकी प्राप्ति बालकको करते हैं ॥ ३ ॥

षष्ठाऽष्टस्थः प्रश्नलग्नाद्यदीन्दुर्लग्ने क्रूरः सप्तमे वा कुजः स्यात् । मूर्ताविन्दुः सप्तमे तस्य भौमो रंडा सा स्यादष्टसंवत्सरेण ॥ ४ ॥

भा० टी०-प्रश्नलग्नसे षष्ठ ६ अष्टम ८ इन स्थानोंमें चंद्रमा होय और लग्नमें क्रूर ग्रह होवे यह एक योग है १। वा प्रश्नलग्नसे षष्ठ ६ अष्टम ८ इन स्थानमें चंद्रमा होय और प्रश्नलग्नसेभी सप्तम ७ स्थानमें मंगल होवे यह द्वितीय योग है २। अथवा लग्नमें चंद्रमा और सप्तम ७ स्थानमें मंगल होवे यह तृतीय योग है ३ । फल इनका ऐसे होनेसे आठ वर्षके अंतर वह कन्या रंडा होती है ॥ ४ ॥

प्रश्नतनोर्यदि पापनभोगाः पंचमगो रिपुदृष्टशरीरः । नीचगतश्च तदा खलु कन्या सा कुलटा त्वथवा मृतवत्सा ॥ ५ ॥

भा० टी०-प्रश्नलग्नमें पापी ग्रह अर्थात् क्षीणचंद्रमा सूर्य मंगल शनैश्चर और इनके साथ युक्त बुध यह पापी ग्रह लग्न पंचमस्थानमें होय और लग्नमें स्थित हो शत्रुग्रह उसको देखे वा नीचगत होय तो निश्चयसे वह कन्या व्यभिचारिणी वेश्या कुलटा होती है । अथवा मृतवत्सा अर्थात् न रहनेवाले संतानवाली होती है । प्रमाण बृहज्जातकका, पापी नीच उच्च ग्रहोंमें यथा " क्षीणेन्द्वर्कमहीसुतार्कतनयाः पापा बुधस्तैर्युतः ।

अजवृषमृगांगना कुलीरा झषवणिजौ च दिवाकरादितुंगाः । दश १० शिखि ३ मनुयुग २८ तिथी १५ न्द्रियांशै ५ स्त्रिनवक २७ विंशति २० भिश्च तेऽस्तनीचाः ॥" अर्थात् मेषके १० अंश सूर्य उच्च और तुलाके १० अंश नीच इस प्रकार वृषके ३ अंश चंद्रमा उच्च और वृश्चिकके ३ अंश नीच और मंगल मकरके २८ अंश उच्च और कर्कके २८ अंश नीच कन्याके १५ अंश बुध उच्च और मीनके १५ अंश नीच होता है और बृहस्पति कर्कके ५ अंश उच्च और मकरके ५ अंश नीच । शुक्र मीनके २७ अंश उच्च और कन्याके २० अंश नीच । शनैश्चर तुलाके २० अंश उच्च और मेषके २० अंश नीच होता है ॥ ५ ॥

यदि भवति सितातिरिक्तपक्षे तनुगृहतः सम-
राशिगः शशांकः । अशुभखचरवीक्षितोऽ-
रिरंध्रे भवति विवाहविनाशकारकोऽयम् ॥ ६ ॥

भा० टी०—यदि लग्नग्रहसे कृष्णपक्षमें समराशिगत चंद्रमा होय और षष्ठ ६ अष्टम ८ इन स्थानोंमें स्थित हो पापी ग्रह देखे तो विवाहका नाश करनेवाला होता है ॥ ६ ॥

जन्मोत्थं च विलोक्य बालविधवायोगं विधाय व्रतम्।
सावित्र्या उत पैप्पलं हि सुतया दद्यादिमां वा रहः॥
सल्लग्नेऽच्युतमूर्तिपिप्पलघटैः कृत्वा विवाहं स्फुटं ।
दद्यात्तां चिरजीविनेऽत्र न भवेद्दोषः पुनर्भूभुवः ७॥

भा० टी०-प्रश्नलग्नसे जैसे विधवायोग विचारा इसी प्रकार जातकशास्त्रसे जन्मलग्नसे उत्पन्न विधवायोगविचार करे। जैसे लिखाभी है-" बाल्ये विधवा भौमे पतिसंत्यक्ता दिवाकरेऽस्तस्थे । सौरे पापैर्दृष्टे कन्यैव जरां समुपयाति ॥ " अन्यच्च " उत्सृष्टा रविणा कुजेन विधवा बाल्येऽस्तराशिस्थिते " अर्थात् यदि मंगल स्त्रीके जन्मलग्नसे सप्तम स्थानमें स्थित हो तो स्त्रीको बालविधवा योग होता है । यदि सप्तम स्थानमें सूर्य स्थित हो तो पति स्त्रीको त्याग देता है । यदि कन्याकी जन्मकुंडलीमें शनैश्चर पापदृष्टियुक्त सप्तम स्थित हो तो कन्याही वृद्ध हो जाती है अर्थात विवाह नहीं होता । औरभी लिखा है " लग्ने व्यये च पाताले जामित्रे चाष्टमे कुजे । कन्या भर्तृविनाशाय भर्ता कन्याविनाशकः ॥ " अर्थात् जन्मलग्न चतुर्थ ४ सप्तम ७ द्वादश १२ अष्टम ८ इन स्थानोंमें यदि कन्याके मंगल हो तो पतिका नाश करता है यदि पुरुषके इन स्थानोंमें मंगल होय तो स्त्रीनाश करता है। इत्यादि योगोंसे अच्छी तरह बालविधवायोगको विचार आगे कहना जो वैधव्यनाशक सावित्रीका व्रत पिता कन्यासे विधिपूर्वक करवावे । यदि भर्ताके स्त्रीनाशक और स्त्रीके भर्तानाशक योग पडा होय तो उन दोनोंका विवाह करना श्रेष्ठ होता है और वैधव्यकारक योग नहीं रहता । इसमें दृष्टान्त यह है कि जैसे दोनों अंगार आपसे युद्ध करें तो वातसे दोनोंही निस्तेज हो जाते हैं और सर्प दोनों युद्ध करें तो उसकी विष उसको और उसकी विष उसको नहीं बाधा करती । और

केवल स्त्रीकेही विधवा योग होय तो एकांतमें कन्याका पिता कन्यासे सावित्रीव्रत करवाय पश्चात् पिप्पलसे वा घट अथवा सुवर्णमयी विष्णुमूर्तिसे यथोक्त विधिसे विवाह करे पीछेसे चिरायुवाले वरसे विवाह करे तो पुनर्भूदोष नहीं होता । प्रमाणभी जैसे व्रतखंडमें लिखा है । " सावित्र्यादिव्रतादीनि भक्त्या कुर्वन्ति याः स्त्रियः । सौभाग्यं च सुहृत्त्वं च भवेत्तासां सुसन्ततिः ॥ " यह अष्टम प्रकरण स्त्रियोंके आचारमें अच्छी तरह आगे लिखा है ॥ ७ ॥

अथ पिप्पलव्रतं ज्ञानभास्करोक्तं लिख्यते ।

बलवद्विधवायोगे बाल्ये सति मृगीदृशाम् ।
पिता रहसि कुर्वीत तद्व्रतं शास्त्रसम्मतम् ॥ १ ॥
सुदिने शुभनक्षत्रे चन्द्रताराबलान्विते ।
अवैधव्यकरैर्योगैर्लग्ने ग्रहबलान्विते ॥ २ ॥
व्रतारम्भं प्रकुर्वीत बालवैधव्यनाशकम् ।
सुस्नातां चित्रवसनां कन्यां पितृगृहाद्बहिः ॥ ३ ॥
नीत्वाऽश्वत्थशमीस्थाने यद्वा बदरिकाश्रमे ।
आलवालं प्रकुर्वीत यदि वा मृदुकर्षितम् ॥ ४ ॥
कुमार्याचार्यनिर्दिष्टं कृत्वा संकल्पमादरात् ।
करकाम्बुप्रमाणेन सिंचनं प्रतिवासरम् ॥ ५ ॥

चैत्रे वाश्विनमासे वा तृतीयासितपक्षतः ।
यावत्कृष्णा तृतीयान्या मासमेकं यथाविधि ॥ ६ ॥
ब्राह्मणानां तथा स्त्रीणां पूजनं च समाचरेत् ।
तदाशिषाप्नुयात्कन्यां सौभाग्यं च सुखान्वितम् ७॥
प्रतिमां पार्वतीनाम्ना वैष्णवे भाजनेऽर्चयेत् ।
चंदनाक्षतदूर्वाद्यैर्बिल्वपत्रैर्यथाविधि ॥ ८ ॥
उपचारैर्यथाशक्त्या नैवेद्यैः प्रतिवासरम् ।
एवं व्रतप्रभावेण बालवैधव्यनिष्कृतिः ॥ ९ ॥
जायते कन्यकानां च ततः पाणिग्रहक्रियाः॥ १०॥

इति अश्वत्थव्रतविधानम् ।

भा० टी०-भावार्थ यह है कि बालिष्ठ स्त्रीको विधवायोग पडनेमें एकांत स्थानमें पिता शास्त्रोक्त उसका भंग वक्ष्यमाण शुभ दिन शुभ नक्षत्रोंमें करे । कन्याको स्नान करवाय वस्त्र भूषण पहनाय घर (गृह) से बाहिर अश्वत्थ (पिप्पल) के स्थानमें कन्याको साथ ले पिप्पलकी आलवाल(आढ)चारों तरफ कर कन्या संकल्पपूर्वक जो चतुर्थ प्रकरणमें लिखा है प्रतिदिन जलसे सिंचन करे फिर चैत्र वा आश्विन शुक्लतृतीयासे कृष्णतृतीयापर्यन्त कन्या ब्राह्मण और स्त्रियोंका पूजन कर उनके आशीर्वाद ग्रहण करे । और सुवर्णपात्रमें पार्वतीजीका

षोडशोपचारसे वक्ष्यमाण पूजन करे इस व्रतके प्रभावसे कन्याओंका बालवैधव्य योग नाश होता है पीछेसे चिरायुवाले वरसे विवाह देवे ॥ १-१० ॥

अथ अश्वत्थविवाहविधिः सूर्यारुणसंवादोक्तो लिख्यते ।

सुहृद्द्विजगुरून्नारी मंगलोच्चारणैः समम् ।
आहूयोद्वाहकाले च रम्यभूमौ च मण्डपे ॥ १ ॥
गत्वा प्रणम्य गौरीं च गणनाथं च भूरुहम् ।
भवानीं चैव मन्थानीं पिता मंत्रमुदीरयेत् ॥ २ ॥
उद्वाहयिष्ये विधिवदश्वत्थेन मनोहराम् ।
कन्यां सौभाग्यसौख्यार्थहेतवेऽहं द्विजोत्तमाः ३ ॥
नमस्ते विष्णुरूपाय जगदानंदहेतवे ।
पितृदेवमनुष्याणामाश्रयाय नमो नमः ॥ ४ ॥
पूर्वजन्मकृतं पापं बालवैधव्यकारकम् ।
नाशयाशु सुखं देहि कन्याया मम भूरुह ॥ ५ ॥

भा० टी०-भावार्थ यह है कि अश्वत्थव्रतके अनन्तर मित्र द्विज गुरु मंगल शब्दके साथ स्त्री विवाहकालमें इन सबको लेकर सुंदर मण्डपभूमिमें प्राप्त होय गौरी गणेश पिप्पल भवानी मंथानी इनको प्रणाम कर कन्याका पिता इस मंत्रसे प्रार्थना करे हे ब्राह्मणगण ! आपके प्रत्यक्ष सौभाग्य सुख अर्थके लिये अपनी कन्याका अश्वत्थके साथ विवाह करता हूं जगत् आनंद

हेतु विष्णुरूप और पितर देव मनुष्योंका आश्रय इस अश्वत्थको वारंवार नमस्कार कर साथ प्रार्थना करते हैं भो अश्वत्थदेव ! पूर्वजन्मकृत जो बालवैधव्यकारक पाप इनका नाश करो और मेरी कन्याको सुख सौभाग्य देवो । इति । यह प्रार्थनाका मंत्र है और विवाहविधि वक्ष्यमाण यथावत् मंत्रोंसे करनी चाहिये ॥ १–९ ॥

अथ कुम्भविवाहः सूर्यारुणसंवादे ।

विवाहोक्तेन मंथन्या कुम्भेन च सहोद्वहेत् ।
विवाहात्पूर्वकाले तु चंद्रताराबले शुभे ॥ १ ॥
पिता संकल्प्य वाद्यं च विवाहविधिपूर्वकम् ।
सूत्रेण वेष्टयेत्पश्चाद्दशतंतुविशेषतः ॥ २ ॥
कुंकुमालंकृतं देहं तयोरेकांतमंदिरे ।
ततः कुम्भं विनिःसार्य प्रभज्य सलिलाशये ॥ ३ ॥
ततोऽभिषेचनं कुर्यात्पञ्चपल्लववारिभिः ।
तत्सर्वं वस्त्रपूजाद्यं ब्राह्मणाय निवेद्य च ॥ ४ ॥
कन्यालंकारवस्त्राद्यं ब्राह्मणाय निदयेत् ।
प्रार्थना—वरुणांगस्वरूप त्वं जीवनानां समाश्रय५॥
पतिं जीवय कन्यायाश्चिरं पुत्रान्सुखं वरम् ।
देहि विष्णो वरानन्दं कन्यां पालय दुःखतः ॥ ६ ॥

इति कुम्भविवाहः ।

---

१ दशतंतुविधानत इत्यपि पाठः ।

भा० टी०—भावार्थ यह है कि विवाहके प्रथम शुभदिनमें विवाहोक्त विधिसे मन्थानी कुंभमें संकल्पपूर्वक विवाह करे पीछेसे दशतंतुसूत्रसे वेष्टन कर कुंकुम (केशर) लगाय एकान्तमें फिर कुंभको निकाल सलिलस्थानमें प्रक्षेप कर (फेंक) पंचपल्लवसे कन्याको अभिषेक करे अनंतर संपूर्ण कुंभपूजनकी सामग्री ब्राह्मणको दे कन्याकेभी वस्त्र भूषण ब्राह्मणको देवे और वरुणकी प्रार्थना करे । हे जीवनके आश्रय वरुणस्वरूप घट ! कन्याके पतिको चिरंजीवी करो । हे विष्णो ! कन्याकी पालना कर सुख सौभाग्यको देवो । इस प्रकार सुवर्णमयी चतुर्भुज विष्णुकी मूर्ति बनाय विवाह कर यथावत् विधिसे ब्राह्मणको मूर्ति देवे । दानका प्रकार जैसे वहांही लिखा है यथा—

शुभे मासे सिते पक्षे सानुकूलग्रहे दिने ।
ब्राह्मणं साधुमामंत्र्य संपूज्य विविधार्हणैः ॥७॥
तस्मै दद्याद्विधानेन विष्णोर्मूर्तिं चतुर्भुजाम् ।
शुद्धवर्णसुवर्णेन वित्तशक्त्याथवा पुनः ।
निर्मितां रुचिरां शंखगदाचक्राब्जसंयुताम् ॥८॥
दधानां वाससी पीते कुमुदोत्पलमालिनीम् ।
सदक्षिणां च तां दद्यान्मंत्रमेतमुदीरयेत् ॥ ९ ॥

यन्मया पूर्वजनुषि घ्नन्त्या पतिसमागमम् ।
विषोपविषशस्त्राद्यैर्हतो वातिविरक्तया ॥ १० ॥
प्राप्यमानं महाघोरं यशःसौख्यधनापहम् ।
वैधव्याद्यतिदुःखौघनाशाय सुखलब्धये ॥ ११ ॥
महासौभाग्यलब्ध्यै च महाविष्णोरिमां तनुम् ।
सौवर्णनिर्मितां शक्त्या तुभ्यं संप्रददे द्विज ॥ १२ ॥
अनघा त्वहमस्मीति त्रिवारं प्रवदेदिति ।
एवमस्त्विति विप्राशीर्गृहीत्वा स्वगृहं विशेत् ॥ १३ ॥
ततो वैवाहिकं नान्तो विधिं कुर्यान्मृगीदृशाम् १४ ॥

इति विष्णुप्रतिमादानविधिः ।

भा० टी०—सानुकूल ग्रहदिनमें ब्राह्मणको बुलाय सुवर्णनिर्मित चतुर्भुज शंख चक्र गदा पद्मसे युक्त पीत वस्त्र वनमालासहित दक्षिणाके साथ प्रतिमा देय कन्या यह मन्त्र पढे कि जो मैंने पूर्वजन्ममें पतिसमागम नाश करनेसे वा विष उपविष शस्त्रसे पतिको मारा उससे उत्पन्न जो वैधव्य योग उसके नाशके लिये और सुखप्राप्तिके लिये यह सुवर्णमयी महाविष्णुकी मूर्ति हे ब्राह्मण ! तुमको दान करती हूं इससे मैं पापरहित भई यह तीन बार कहे एवमस्तु ऐसे ब्राह्मण वाक्यके अनंतर गृहमें आवे तब पिताआदिके साथ मंगलशब्दकपूर्वक विवाह करे ॥ १–१४ ॥

शास्त्रार्थः ।

यदि कोई महाशय शंका करे कि विष्णुमूर्ति कुंभ पिप्पल इनमेंसे एकके साथ विवाह कर फिर द्वितीयवार मनुष्यके साथ विवाह करनेसे पुनर्भूदोष स्त्रीको होना चाहिये । उसका उत्तर यह है कि जो एक मनुष्यके साथ विवाह कर फिर द्वितीय पुरुषके साथ विवाह किया जाय वह स्त्री पुनर्भू कहलाती है। इसमें हम प्रमाण देते हैं । याज्ञवल्क्यस्मृति अध्याय प्रथम यथा-" अक्षता च क्षता चैव पुनर्भूः संस्कृता पुनः । " अर्थात् पतिके मर जानेपर वा जीवितपर जो फिर दूसरे मनुष्यसे संस्कृत विवाही जाय वही पुनर्भू होती है । यदि पिप्पलादि विवाहके अनंतर मनुष्यके साथ विवाह होनेसे पुनर्भूदोष है तो याज्ञवल्क्यजीने ' अक्षता च क्षता ' यह शब्द किसलिये कथन करा ? ऐसे लिख देना था कि ' पुनर्भूः संस्कृता पुनः ' और ' अक्षता च क्षता ' इन शब्दोंका अर्थ मिताक्षरामें यह लिखा है पति अक्षत हो अर्थात् जीवित हो वा (च क्षता) क्षत हो अर्थात् मर गया हो फिर संस्कार करनेसे पुनर्भू संज्ञा होती है । इसलिये पिप्पल देवादि विवाहसे पुनर्भूदोष नहीं है। हम औरभी प्रमाण देते हैं कि जो घटादिविवाहसे पुनर्भूदोष न हो । प्रमाण विधान व्रतखंडका जैसे " स्वर्णाम्बुपिप्पलानां च प्रतिमा विष्णुरूपिणी । तया सह विवाहे च पुनर्भूत्वं न जायते ॥ " अन्यच्च " लक्ष्मीरूपा सदा कन्या हरिरूपं सदा जलम् । हरेर्दत्तं च यद्दानं दातुः पापहरं सदा ॥ अर्थ-सुवर्ण घट पिप्पलकी प्रतिमा मूर्ति विष्णुरूप होती है इनके साथ

विवाह करनेसे पुनर्भूदोष नहीं होता और लक्ष्मी सदैव कन्या हरिरूप सदैव जल होता है इसलिये विष्णुको जो दान दिया जाय वह यजमानके पाप नष्ट करनेवाला होता है । इसलिये इनके साथ विवाह करनेसे पुनर्भूदोष नहीं प्रत्युत (किंच) कन्याका वैधव्यनाशक है । और वेदमेंभी सोम, सूर्य, अग्नि पालन करनेसे स्त्रीके रक्षक लिखे हैं । और चतुर्थ मनुष्य पति लिखा है यथा " सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः । तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः " इस मंत्रका अर्थ विस्तारपूर्वक आगे विवाहप्रकरणमें लिखा है । यदि कोई महाशय अबभी यह आक्षेप करे कि जो वस्तु एकको दान करवा भोगनेके लिये दी जाय फिर यदि वही वस्तु दूसरेको भोगनेके लिये दी जाय वह उच्छिष्ट (जूंठ) होती है और उच्छिष्टका सर्वत्रही निषेध है. इस लिये प्रथम विष्णु घट वा पिप्पलको स्त्री दी फिर वही मनुष्यके साथ विवाह दी तो वहभी उच्छिष्ट भई इसालिये मनुष्यको स्वीकार नहीं करनी चाहिये । उत्तर—महाशय मित्रवर! आपने युक्तिसे फिरभी वही दोष उच्छिष्ट मानकर लगाया अहो आप बडे निपुण हो और अति चञ्चलबुद्धि हो परंतु आपको विनयपूर्वक हम यह कहते हैं कि आप उच्छिष्टका त्याग सर्वत्र करते हो वा आपके पूर्व पूर्व पुरुषोंने किया जैसे मधु (सहत) दुग्ध यहभी उच्छिष्टही है यह आप किसलिये भक्षण करते हो और श्राद्धादि कर्मोंसे मधुवातादि मन्त्रोंसे मधु पितरोंको अर्पण करते हो वा नहीं । बस, अब चुप हो गये; भला [illegible] तो कहिये, बस अब नहीं कहेंगे; निरुत्तर भये । अच्छा,

अपने प्रश्नका तो उत्तर श्रवण कीजिये । महात्मन् ! जैसे मधु मक्षिकाके, दुग्ध वत्ससे, कमल भ्रमरोंसे उच्छिष्ट भयाभी देवपितृकर्ममें आता और जगत्को पंचगव्यादिसे पवित्र करता है उसी प्रकार विष्णु घट पिप्पलसे संस्कृत स्त्री मनुष्यके साथ विवाह करनेके अनंतर पुत्रपौत्रादि संतानसे शुभलोककी प्राप्ति और इस लोकमें सुख देती है तथा याज्ञवल्क्यस्मृतिमें लिखा है । अध्याय १ " लोकानंत्यं दिवः प्राप्तिः पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः । यस्मात्तस्मात्स्त्रियः सेव्याः कर्त्तव्याश्च सुरक्षिताः ॥ " इति और विधानखंडमेंभी लिखा है यथा " यथालिभुक्तकमलं देवानां पूजनाय वै । अर्हं भवति सर्वत्र तथा कन्या नृणां भवेत् ॥ " इसलिये भास्कराचार्य मन्थानीमें कन्याका विवाह यत्नसे करता भया और रेणुकमहर्षि अश्वत्थसे कन्याका विवाह करता भया । प्रमाण अभिधानखण्डका । जैसे " मन्थन्या भास्करो यत्नात् कृतवान दुहितुर्विधिम् । रेणुकोऽपि स्वकन्यायास्तरूद्वाहं चकार सः ॥ " इसलिये पुत्रवत् कन्याकीभी जन्मकुण्डली सर्व महाशयजनोंको अवश्य बनानी चाहिये । यदि कर्मानुसार जिसके योग पडा हो उसका शास्त्रोक्त उपाय करानेसे शांति हो जाय तो सुख हो । इत्यलम् ॥

प्रश्नलग्नगणे यादृशाऽपत्ययुक् स्वेच्छया कामिनी तत्र चेदाव्रजेत् । कन्यका वा सुतो वा तदा पण्डितैस्तादृशापत्यमस्या विनिर्दिश्यते ॥ ८ ॥

भा० टी०-प्रश्नकालमें जैसी संतानयुक्त अपनी इच्छासे उस स्थान आ जाय वा कन्या वा बालक बुद्धिवान् ज्योतिषी तादृश उसकी संतान कहे अर्थात् जैसी स्त्री कन्या बालक प्राप्त होय वैसेही उसको स्त्री पुत्रादिक मिलते हैं ॥ ८ ॥

शंखभेरीविपंचीरवैर्मंगलं जायते वैपरीत्यं तदा लक्षयेत् । वायसो वा खरः श्वा शृगालोऽपि वा प्रश्नलग्नक्षणे रौति नादं यदि ॥ ९॥

भा० टी०-शंख दुंदुभी वीणा सतारका शब्द प्रश्नकालमें शुभ होता है और काक श्वान गर्दभ शृगाल यह प्रश्नकालमें शब्द करें तो निषिद्ध (अशुभ) हैं ॥ ९ ॥

विश्वस्वातीवैष्णवपूर्वात्रयमैत्रैर्वस्वाग्नेयैर्वा करपीडोचितऋक्षैः । वस्त्रालंकारादिसमेतैः फलपुष्पैः सन्तोष्यादौ स्यादनु कन्यावरणं हि ॥ १० ॥

भा० टी०-अब कन्याका वरण लिखते हैं । ज्येष्ठा स्वाती श्रवण पूर्वात्रय अनुराधा धनिष्ठा कृत्तिका अथवा पाणिग्रहणोचित नक्षत्रोंमें फल पुष्प वस्त्रालंकारादिसे कन्याको संतुष्ट कर पीछेसे वरण करे ॥ १० ॥

धरणिदेवोऽथवा कन्यकासोदरः शुभदिने गीतवाद्यादिभिः संयुतः । वरवृतिं वस्त्रयज्ञोपवीतादिभिर्ध्रुवयुतैर्वह्निपूर्वात्रयैराचरेत् ॥ ११॥

भा० टी०—अथ बालक वरण लिखते हैं । ब्राह्मण वा कन्याका भ्राता (भाई) शुभदिनमें गीतादिवाद्यसहित होय वस्त्र यज्ञोपवीतादिसे उत्तराफाल्गुनी उत्तराभाद्रपदा उत्तराषाढा रोहिणी कृत्तिका पूर्वाभाद्रपदा पूर्वाषाढा इन नक्षत्रोंमें वरका वरण करे । इस प्रकार वर वरण कर पीछेसे कन्याको वस्त्रालंकारादि श्वशुरगृहसे जो प्राप्त उससे पूर्वोक्त नक्षत्रोंमें वरण करना ॥ ११ ॥

गुरुशुद्धिवशेन कन्यकानां समवर्षेषु षडब्दकोपरिष्टात् । रविशुद्धिवशाच्छुभो वराणामुभयोश्चंद्रविशुद्धितो विवाहः ॥ १२ ॥

भा० टी०—गुरु बृहस्पतिजीकी शुद्धिसे कन्याका षट् ६ वर्षके ऊपर अष्टम ८ दशम १० समवर्षमें विवाह शुभ है । और सूर्यकी शुद्धिद्वारा वरका विवाह श्रेष्ठ है और वर कन्या दोनोंका चंद्रमाकी शुद्धिसे विवाह शुभ होता है भावार्थ यह है कि कन्याकी जन्मराशिसे गुरु और वरकी जन्मराशिसे सूर्य और दोनोंका चंद्रमाजीकी शुद्धिसे श्रेष्ठ विवाह होता है । इसी आशयको काशीनाथजी कहते हैं । "वरस्य भास्करबलं कन्यायाश्च गुरोर्बलम् । द्वयोश्चंद्रबलं ग्राह्यं विवाहो नान्यथा भवेत् ॥" ॥ १२ ॥

मिथुनकुंभमृगालिवृषाजगे मिथुनगेऽपि रवौ त्रिलवे शुचिः । अलिमृगाजगते करपीडनं भवति कार्तिकपौषमधुष्वपि ॥ १३ ॥

भा० टी०-मिथुन, कुंभ, मकर, वृश्चिक, वृष, मेष इन राशियोंमें सूर्य होय अथवा आषाढके १० दश दिनपर्यंत मिथुनराशिगत सूर्य हो वा वृश्चिक मकर मेषगत सूर्य हो तो कार्तिक पौष चैत्रमेंभी पाणिग्रहण शुभ है ॥ १३ ॥

आद्यगर्भसुतकन्ययोर्द्वयोर्जन्ममासभतिथौ करग्रहः। नोचितोऽथ स बुधैः प्रशस्यते चेद्द्वितीयजनुषोः सुतप्रदः ॥ १४ ॥

भा० टी०-आद्यगर्भ प्रथमगर्भ अर्थात् ज्येष्ठ पुत्र वा कन्या होय तो उन दोनोंका जन्मके मासमें वा जन्मतिथिमें अथवा जन्मनक्षत्रमें पाणिग्रहण श्रेष्ठ नहीं। यदि वह दोनों दूसरे गर्भके होय तो जन्म मास तिथि नक्षत्रमें विवाह पुत्रको देनेवाला है ॥ १४ ॥

ज्येष्ठद्वंद्वं मध्यमं संप्रदिष्टं त्रिज्येष्ठं चेन्नैव युक्तं कदापि। केचित्सूर्यं वह्निगं प्रोक्तमाहुर्नैवान्योन्यं ज्येष्ठयोः स्याद्विवाहः ॥ १५ ॥

भा० टी०-ज्येष्ठ बालक ज्येष्ठ कन्याका विवाह मध्यम होता है यदि ज्येष्ठका महीना (मास) ज्येष्ठ बालक ज्येष्ठाही कन्या यह तीन ज्येष्ठ किसी कालमेंभी श्रेष्ठ नहीं अतिनिषिद्ध हैं। कई आचार्योंका यह मत है कि जिस कालपर्यंत कृत्तिकामें सूर्य हो उतना काल ज्येष्ठमास निषिद्ध है; परंतु सिद्धांतमत यही है वर कन्या ज्येष्ठोंका आपसमें विवाह श्रेष्ठ नहीं ॥ १५ ॥

सुतपरिणयात्षण्मासान्तः सुताकरपीडनं न च निजकुले तद्वद्वा मुण्डनादपि मुण्डनम् । न च सहजयोर्देये भ्रात्रोः सहोदरकन्यके न सहजसुतोद्वाहोऽब्दार्धे शुभे न पितृक्रिया १६

भा० टी०—पुत्रविवाहके अनंतर षण्मास (६) के बीचमें कन्याका विवाह शुभ नहीं । इस प्रकार अपनी कुलमें मुंडन (चूडाकर्म) के पीछे मुंडन षट् ६ महीनेके अन्तर श्रेष्ठ नहीं और एक पिताके दो पुत्रोंको दो भ्राताकी कन्यासे सहोदर (सगे) भाइयोंका विवाह शुभ नहीं । यदि एक पिताकी दो कन्या होय तो एक पिताके दो पुत्रोंसे विवाहका दोष नहीं सहोदर शब्दका यह अर्थ है कि एक माताके गर्भमें न हो और एक पितासे सपत्नीसे उत्पन्न भ्राता सहोदर नहीं कहाते प्रमाण " समानोदर्य्यसोदर्य्यसगर्भ्यस्तु सनाभयः । " इत्यमरः । और बालक कन्याके विवाहके अनंतर षट् मास ६ पर्यंत पितृक्रिया श्राद्धादि शुभ नहीं है ॥ १६ ॥

वध्वा वरस्यापि कुले त्रिपूरुषे नाशं व्रजेत्कश्चन निश्चयोत्तरम् । मासोत्तरं तत्र विवाह इष्यते शान्त्याथ वा सूतकनिर्गमे परे ॥ १७ ॥

भा० टी०—वधूवरके तीन पुरुषमें यदि कोई नाशको प्राप्त हो जाय निश्चयके अनंतर एक मासके अनन्तर विवाह करे । अथवा कूष्मांडशांति कर विवाह करे । कोई आचार्य सूतक

पातककी निवृत्तिके अनन्तर कहते हैं। यदि कन्यादान हो चुका हो फिर सूतक पातक पडे तो भोजनादि सर्व विवाहांग करनेका दोष नहीं ॥ १७॥

चूडाव्रतं चापि विवाहतो व्रताच्चूडा च नेष्टा पुरुषत्रयान्तरे। वधूप्रवेशाच्च सुताविनिर्गमः षण्मासतो वाब्दविभेदतः शुभः ॥ १८॥

भा० टी०—विवाहसे चूडाकर्म चूडाकर्मसे विवाह षण्मासके बीच श्रेष्ठ नहीं इस प्रकार वधूप्रवेशसे कन्याका निर्गम ६ षट् मासके अंतर श्रेष्ठ नहीं। यदि वर्षका भेद होय तो दोष नहीं। विवाहमें सूर्य संक्रान्तिसे वर्षका भेद होता है ॥ १८॥

अथ विवाहमुहूर्ताः।

निर्वेधैः शशिकरमूलमैत्रपित्र्यब्राह्मांत्योत्तरपवनैः शुभो विवाहः। रिक्ताऽमारहिततिथौ शुभेऽह्नि वैश्वप्रांत्यांघ्रिश्रुतितिथिभागतोऽभिजित्स्यात् ॥ १९॥

भा० टी०—वेधरहित मृगशिर, हस्त, मूल, अनुराधा, मघा, रोहिणी, रेवती, उत्तरात्रय ३, स्वाती ये नक्षत्र विवाहमें शुभ हैं। चतुर्थी ४, नवमी ९, चतुर्दशी १४, अमावस ३० इनसे रहित तिथियां श्रेष्ठ हैं। विवाहमें चंद्र, बुध, बृहस्पति, शुक्र ये वार शुभ होते हैं। उत्तराषाढाके अंतका चरण श्रवणकी ४ चार घटी, अभिजित् नक्षत्र होता है ॥ १९॥

और राशि, वर्ण, योनि, गण, षडष्टक, नवपंचक, द्विर्द्वादश, राशिनाडीचक्र, वर्ग, लत्तादिक दश १० दोष अवश्य विचारने योग्य हैं इसलिये सारणी बनाकर सबकी समझमें आनेवाली अतिसुगम रीतिसे आगे लिखते हैं ॥

अथ राशिचक्रम.

मेष	वृष	सिंह	धन मकर पू०	चतुष्पद
मिथुन	कन्या	तुला	कुंभ	नर द्विपद
कुंभ	मीन	मकरपरार्द्ध	०	जलचर
वृश्चिक	कर्क	०	०	कीटकसंज्ञक

पुरुषकी राशि स्त्रीकी राशिसे बली उचित है और संपूर्ण चतुष्पद द्विपदोंके वश्य हैं सिंहके विना जलचर भक्षक हैं । सर्प विच्छू भयदायक हैं ॥

अथ वर्णचक्रम्.

मीन	वृश्चिक	कर्क	ब्राह्मण
मेष	सिंह	धन	क्षत्री
वृष	मकर	कन्या	वश्य
मिथुन	कुंभ	तुला	शूद्र

वरस्य वर्णताधिका वधूर्न शस्यते बुधैः । अर्थात् वरके वर्णसे अधिक वधू श्रेष्ठ नहीं वरका वर्ण कन्यासे अधिक श्रेष्ठ है.

अथ योनिचक्रम्.

आश्विनी	स्वा. हस्त	धनि. पू.भा.	भरणी रेवती	पुष्य कृत्ति.	श्रवण पू.षा.	उ.षा. ऽभि.	मृग रो.	नक्षत्र
अश्व (घोडा)	महिष	सिंह	गज	छाग मेंढा	वानर	नकुल	सर्प	योनयः
ज्येष्ठा अनु.	मूल आर्द्रा	श्लेषा पुनर्व.	मघा पू.फा.	चित्रा विशा.	उ.फा. उ.भा.			नक्षत्र
मृग	श्वान	बिलाव	चूहा	व्याघ्र	गौ			योनयः
अनयोर्वैरं		अनयोर्वैरं		अनयोर्वैरं		अनयोर्वैरं		वैरं

वैर वैर वैर वैर

यह योनिचक्र विवाहमें सेव्यसेवक भावमें मैत्री कार्यमें अवश्य विचारना चाहिये।

अथ गणचक्रम्.

म.	श्ले.	ध.	ज्ये.	मूल	शत.	कृत्ति	चि.	वि.	राक्षस
पू.फा.	पू.षा.	पू.भा.	उ.फा.	उ.षा.	उ.भा.	रोहि.	भर.	आर्द्रा	मनुष्य
ऽनु.	पुन.	मृ.	श्र.	रेव.	स्वा.	ह.	अश्वि.	पुष्य	देवता

अपने गणके साथ परम प्रीति, देवता मनुष्योंकी सम, देवता राक्षसोंका युद्ध, मनुष्य राक्षसकी मृत्यु गणोंकी आपसमें होती है।

अथ षडष्टकचक्रम्.

मे.	वृष.	मि.	क.	सिं.	तु.	पुरुषराशिमृत्युः
वृ.	ध.	कुं.	मी.	म.	मी.	स्त्रीराशिमृत्युः

अथ नवपंचकचक्रम्.

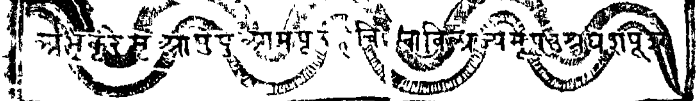
मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	कं.	कुं.	अन्योन्यपुरुषसंतानहानि.
सिं.	कं.	तु.	वृ.	ध.	म.	मि.	स्त्रीराशिकी कालि होती है.

अथ द्विर्द्वादशचक्रम्.

मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	वृ.	म.	मी.	दारिद्र्यं
वृ.	मि.	क.	सिं.	कं.	तु.	ध.	कुं.	मी.	दारिद्र्यं

मृत्युः षडष्टके ज्ञेयोऽपत्यहानिर्नवात्मजे ।
द्विर्द्वादशे निर्द्धनत्वं द्वयोरन्यत्र सौख्यकृत् ॥

अथ नाडीचक्रम् ।



" दंपत्योरेकनाड्यां परिणयनमसन्मध्यनाड्यां हि मृत्युः" अर्थात् स्त्री वरका एक नाडीमें स्थित नक्षत्रोंमें विवाह अशुभ होता है और मध्यम नाडीमें मृत्यु होती है । इसलिये तृतीय नाडी शुभ है ।

अथ वर्गचक्रम्.

गरुड	बिडाल	सिंह	श्वान	सर्प	मूषक	मृग	मेंढा
अ. ॥	क	च	ट	त	प	य	श
इ. ३	ख	छ	ठ	थ	फ	र	ष
उ. ७	ग	ज	ड	द	ब	ल	स
ऋ. ९	घ	झ	ढ	ध	भ	व	ह
लृ. ८	ङ	ञ	ण	न	म		

अपने वर्गमें परम प्रीति होती है और अपने वर्गसे पंचम वर्ग शत्रु होता है और चतुर्थ मित्र और तृतीय उदासीन होता है इनका फल वर्गसदृश है ।

अथ राशिस्वामिचक्रम्.

मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	कं.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.	राशयः
मं.	शु.	बु.	चं.	सू.	बु.	शु.	मं.	बृ.	श.	श.	बृ.	स्वामिनः

अथ राशिचक्रम्.

मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	कं.	तु.	वृ.	धन	म.	कुं.	मी.
चु	इ	का	हि	म	टो	रा	तो	ये	भो	गु	दि
चे	उ	कि	हु	मि	प	रि	न	यो	जंज	गे	दु
चो	ए	कु	हे	मु	पि	रु	नि	भ	जिंज	गो	थ
ला	ओ	घे	हो	मे	पु	रे	नु	भि	खेग्व	स	ळ
लि	वा	ङ	डा	मो	ष	रो	ने	ख्वि	सि	ञ	ञ
लू	वि	छ	डि	टा	ज	ता	जो	ध	खं	सु	दे
ले	वू	के	डु	टि	ठा	ति	या	फा	ग्वो	से	दो
लो	वे	को	डे	टु	पे	तु	यि	ढा	ग	सो	च
अ	वो	हा	डो	टे	पो	ते	यु	भे	गि	द	चि

अथ लत्ताचक्रम्.

सूर्य	चंद्र	मंगल	बुध	बृ.	शुक्र	शनि	रा.	विवाहन.
पू.षा.	पू.भा.	भर.	मघा	उ.भा.	पुष्य	शत.	उ.फा	रोहि.
उ.षा.	उ.भा.	कृ.	पू.फा.	रेवती	ऽश्ले	पू.भा.	ह.	मृगशि.
उ.भा.	रो.	पुष्य	वि.	मृ.	चि.	कृ.	ज्ये.	मघा.
अश्वि	आर्द्रा	मघा	ज्येष्ठा	पुन.	वि.	मृ.	पू.षा.	उत्तराफा.
भरणी.	पुष्य	पू.फा.	मूल	पु.	ऽनु.	आ.	उ.षा.	हस्त
रो.	ऽश्ले	ह	उ.षा.	म.	मू.	पुष्य	ध.	स्वाती
आ	पू.फा.	स्वा.	ध	उ.फा	उ.षा.	म.	पू.भा.	अनुराधा
पुष्य	ह.	अनु.	पू.भा.	चि.	धनि.	उ.फा	रे.	मूल
म.	स्वा.	मृ.	रे	वि.	पू.भा.	चि.	भ.	उत्तराषा.
स्वा.	पू.षा.	श	मृ	उ.षा.	कृ.	मू.	पु.	उ.भा.
वि.	उ.भा.	पू.भा.	आ.	श्र.	रो.	पू.षा.	पुष्य	रेवती

यह लत्तादोष विवाहादि शुभकार्योंमें वर्जित है । विशेषकर मालवदेशमें अवश्य वर्जनीय है ॥

अथ पातदोषचक्रम्,

वैधृति	हर्षण	व्यतिपात	शूल	गंड	योगानाम्.
अन्ते विवाहनक्षत्रं यथा गंडयोग १५ घटी रेवती ३० वा २५ घटीपातेनपातितं नक्षत्रं विवाहे वर्ज्यं कुरुजांगलदेशे अवश्यं वर्ज्यम् ॥					

अथ युतिदोषचक्रम्.

चं.सू.	च मं.	चं.बु.	चं.बृ.	चं. शु	चं.श.	चं.रा.	युति
दारिद्यं	मरणं	शुभं	सौख्यं	सापत्न्यं वैराग्यं	मृति	मृति	फलं

अथ वेधचक्रम.

रो.	मृ.	म.	उ.फा	ह.	स्वा	ऽनु	म	उ.षा	उ.भा	रेव.	वि.न.
ऽभि	उ.षा	श्र	रे.	उ.भा	श.	भ.	पु.	मृ.	ह.	उ.फा	सूर्यो

अथ चरणवेधचक्रम.

प्र.	प्र.	प्र.	प्र.	नक्षत्रके प्रथम पादमें ग्रहको विवाहनक्षत्रके
४	१	२	३	चतुर्थपादका वेध है विवाहमें सर्वदेशमें वेध
१	४	३	२	वर्ज्य है अत्यावश्यकमें चरणवेध वर्ज्यहै.

अथ यामित्रनाक्षत्रचक्रम.

रो.	मृ.	म	उ.फा.	ह.	स्वा.	ऽनु.	मू.	उ.षा.	उ.भा.	रे.	वि.न.
ऽनु	ज्ये.	ध.	पू.भा	उ.भा.	ऽश्वि.	कृ.	मृ.	पु.	उ.फा.	ह.	ग्रहा

लग्नसे चंद्रमासे सप्तम ग्रह यामित्रकारक होता है अथवा लग्ननवांशसे वा चंद्रराशिस्थ नवांशसे पंचपंचाशत ५५ नवमांशमें जो ग्रह होय वह यामित्रकारक होता है शुभ नहीं होता ॥

अथ बुधपंचकचक्रम्.

८	२	४	६	१	अंक
रोग	वह्नि	राजा	चौर	मृत्यु	बाण

शुक्ल प्रतिपत्से गततिथि लग्नसे युक्त कर नौसे भाग ले शेष रहा अंक बाण जानना । यह दक्षिणदेशमें निषिद्ध है ॥

अथ सर्वदेशे बुधपंचकम्.

रोग	वह्नि	राज	चौर	मृत्यु	बाणः ५ दिने
०८ १७ २६	०२ ११ २० २४	०४ १३ २२ ३१	०६ १५ २५	०१ १० १९ २८	सूर्यसंक्रांतिसे इन दिनोंमें बाण है ।
सूर्य	भौम	शनि	मंगल	बुध	इन दिनोंमें.
व्रतमें	गृह गोपमें	नृप सेवामें	यात्रामें	विवाहमें	इन कार्यमें वर्जित है ।
रात्रिमें	दिनमें	दिनमें	रात्रिमें	संध्यामें	

एकार्गलचक्रम्.

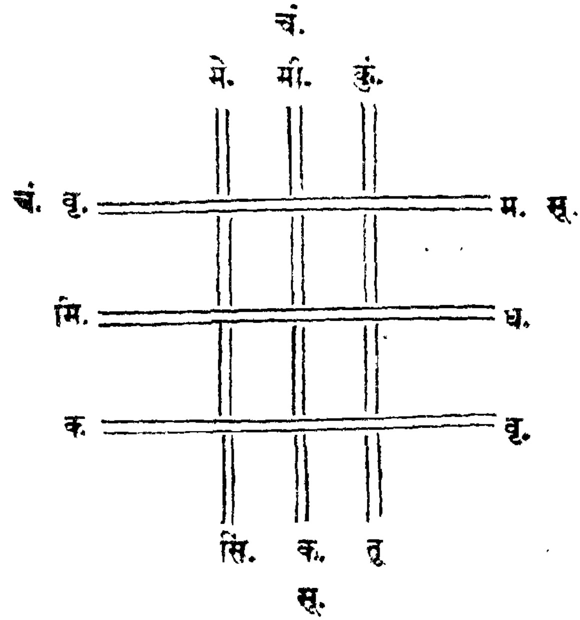
व्या	गंड	व्यति	वि०	शूल	वैधृति	वज्र	परि	ऽतगं

यदि सूर्यनक्षत्रसे विवाहनक्षत्र विषम अभिजित सहित स्थित हो तो एकार्गला योग कुरु बाह्लीक देशमें वर्जित है ।

अथोपग्रहाः.

५	८	१०	१४	७	१९	१५	१८	२१	२२	२३	२४	२५
यदि सूर्यनक्षत्रसे इन अंकोंमें विवाहनक्षत्र होय तो उपग्रहदोष होता है ॥												

अथ क्रांतिसाम्यम्.



अर्थात् चंद्रमा सूर्य अन्योन्य नक्षत्रगत होय संमुख स्थित होय तो क्रांतिसाम्य दोष होता है विवाहमें शुभ नहीं होता ॥

अथ दग्धा तिथिः.

मीन चैत्र	वृष. ज्येष्ठ	मेष वैशाख	कन्या आश्विन	वृश्चि. मार्गशी.	मकर माघ	मासोंमें
२	४	६	८	१०	१२	दग्धातिथिः
धन पौष	कुंभ फाल्गुन	कर्क श्रावण	मिथु. आषाढ	सिंह भादों	तुला कार्तिक	मासोंमें
२	४	६	८	१०	१२	दग्धातिथिः

यह शुभ कर्मोंमें दग्धातिथि वर्जित है ॥

अथ दश योगाः.

सूर्यचंद्रनक्षत्रयोगः २७ शेषः ।									
००	०१	४	६	१०	१९	१५	१८	१९	२०
वात	ऽभ्र	ऽग्नि	नृप	चौर	मृति	रोग	वज्र	वाद	क्षिति

यथा सूर्यर्क्ष श्रवण २२ चंद्रर्क्ष धनिष्ठा २३ अनयोर्योगः ४५ भशेषः २७ सप्तविंशति तष्टः १८ वज्रपातयोगः ॥

अथ पंगवंधकाणलग्नानि.

मे.	वृ.	मि.	क.	सि.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी
बंध	अंध	अंध	अं.	बंध	अंध	बधिर	ब०	ब.	ब.	पंगु	पंगु
दिन में	दिन में	रात्रि में	रा. में	दिन में	रात्रि में	अप-राण्हमें	अप-राण्हे	अ. ग.	सं. में	सं० में	सं. में

यह गौड मालव देशमें त्याज्य है अथवा गुरुदृष्टिसे किसी स्थानमेंभी दोष नहीं ॥

अथ ग्रहनैसर्गिकमैत्रीचक्रम्.

सूर्य	चंद्रमा	मंगल	बुध	बृहस्प०	शुक्र	शनि	ग्रहाः
मं. बृ. चं	सूर्य बुध	चं. बृ. सूर्य	सूर्य शुक्र	सूर्य मं. चं	बुध शनि	शुक्र बुध	मित्र
बुध	बृ. शु. श. मं.	शुक्र शनि	म. श. सूर्य	शनि	मंगल बृहस्प.	बृहस्पति	सम
शुक्र शनि	०	बुध	चंद्रमा	शुक्र बुध	सूर्य चं	सू. चं. मंगल	शत्रु

प्रोक्ते दुष्टभकूटके परिणयस्त्वेकाधिपत्ये शुभोऽथाऽराशीश्वरसौहृदेऽपि गदितो नाडयृक्षशुद्धिर्यदि । अन्यर्क्षेशपयोर्बलित्वसखिते नाडयृक्षशुद्धौ तथा ताराशुद्धिवशेन राशिवशताभावे निरुक्तो बुधैः ॥ २० ॥

भा० टी०—दुष्टभकूटमेंभी विवाह शुभ होता है यदि दोनों राशिका स्वामी एक हो अथवा दोनोंकी आपसमें मैत्री होय ॥ २० ॥

कार्मुकतौलिककन्यायुग्मलवे झषगे वा । यर्हि भवेदुपयामस्तर्हि सती खलु कन्या ॥ २१ ॥

व्यये शनिः खेऽवनिजस्तृतीये भृगुस्तनौ चंद्रखला न शस्ताः । लग्नेट् कविग्लौश्च रिपौ मृतौ ग्लौलग्नेट्शुभाराश्च मदे च सर्वे ॥ २२ ॥

व्यायाष्टषट्सु रविकेतुतमोर्कपुत्रास्त्र्यायारिगः

क्षितिसुतो द्विगुणायगाब्जः। सप्तव्ययाष्टरहितौ ज्ञगुरू सिताष्टत्रिद्यूनषड्व्ययग्रहान्परिहृत्य शस्तः॥ २३॥ त्याज्यालग्नेऽव्धयां मन्दात् षष्ठे शुक्रेंदुलग्नपाः। रन्ध्रे चंद्रादयः पंच सर्वेऽस्तेऽब्जगुरू समौ॥ २४॥

भा० टी०–धन, तुला, कन्या, मिथुन, मीन इन लग्नोंमें वा इन नवमांशमें विवाह होवे तो कन्या सती होती है। और चरलग्नका नवांश न होवे तुला मकरमें चंद्रमा होवे तब चरलग्नभी शुभ है और लग्नसे द्वादश १२ स्थानमें शनि, दशमें १० मंगल, तृतीय ३ शुक्र, लग्नमें १ चंद्रमा, मंगल शनि सूर्य शुभ नहीं होते हैं। षष्ठ ६ स्थानमें लग्नेश शुक्र चंद्रमा शुभ नहीं और अष्टम ८ स्थानमें, चंद्रमा, लग्नेश, बुध, बृहस्पति, शुक्र, मंगल शुभ नहीं हैं। और सप्तम ७ स्थानमें संपूर्ण ग्रह शुभ नहीं होते हैं। अन्यच्च तृतीय ३ एकादश ११ अष्टम ८ षष्ठ ६ स्थानमें सूर्य: केतु, राहु, शनि श्रेष्ठ हैं और तृतीय ३ एकादश ११ षष्ठ ६ स्थानमें मंगल शुभ है और द्वितीय २, तृतीय ३, एकादश ११ स्थानमें चंद्रमा शुभ है। ७। १२। ८। ३। ६ इन स्थानके विना और स्थानमें बुध, गुरु, शुक्र शुभ हैं। अन्यच्च। लग्नमें शनि, सूर्य, चंद्र, मंगल यह न होय और षष्ठ स्थानमें शुक्र, चंद्रमा लग्नेश न होय और अष्टम स्थानमें चंद्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र न होय। सप्तम स्थानमें कोईभी ग्रह न होय अर्थात् शुद्ध होवे तो शुभ है।

कई आचार्य सप्तम स्थानमें चंद्रमा, बृहस्पतिको सम कहते हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥

कर्तरीदोषमाह ।

लग्नात्पापावृजुनृजू रिष्फार्थस्थौ यदा तदा ।
कर्तरी नाम सा ज्ञेया मृत्युदारिद्र्यशोकदा ॥ २५ ॥

भा० टी०—लग्नसे द्वितीयस्थानमें वक्री ग्रह और द्वादश १२ स्थानमें मार्गी ग्रह होय तो कर्तरीदोष होता है शुभ नहीं ॥ २५ ॥

पुष्टिमाह ।

त्रिकोणे केन्द्रे वा मदनरहिते दोषशतकं हरे-
त्सौम्यः शुक्रो द्विगुणमपि लक्षं सुरगुरुः ।
भवेदाये केन्द्रेऽगप उत लवेशो यदि तदा
समूहं दोषाणां दहन इव तूलं शमयति ॥ २६ ॥

भा० टी०—विवाहलग्नसे नवम, पंचम, प्रथम, चतुर्थ, दशम यदि बुध होय तो शत १०० दोषका नाश करता है । यदि शुक्र होय तो द्विगुणशत २०० दोषका नाश करता है, बृहस्पति जो होय तो लक्ष १००००० दोषका नाश करता है । यदि एकादश ११ चतुर्थ सप्तम, लग्न दशम स्थानमें यदि लग्नेश ऊन नवमांशेश होय तो दोषोंके समूहका, जैसे अग्नि तूलके पुंजको क्षणभरमें नाश करता है तद्वत नाश करता है ॥ २६ ॥

अथ संकीर्णजातीनां विवाहः ।

कृष्णे पक्षे सौरिकुजार्केऽपि च वारे वर्ज्ये
नक्षत्रे यदि वा स्यात्करपीडा । संकीर्णानां

तर्हि शतायुः खलु लाभः प्रीतिप्राप्तिः सा भवतीह स्थितिरेषा ॥ २७ ॥

भा० टी०—कृष्णपक्षमें, शनैश्चर, मंगल, सूर्यवारमें और विवाहमें वर्जित नक्षत्रोंमें यदि संकीर्ण शबर, किरात, निषाद, भिल्ल, पुलिंद, म्लेच्छ, यवन प्रभृतियोंका विवाह होय तो आयु, सुत, प्रीतिका लाभदायक होता है ॥ २७ ॥

अथ गोधूलीलग्नमाह ।

पिण्डीभूते दिनकृति हेमंतर्तौ स्यादर्धास्ते तपसमये गोधूलिः । सम्पूर्णास्ते जलधरमालाकाले त्रेधा योज्या सकलशुभे कार्यादौ ॥ २८ ॥

भा० टी०—जब नक्षत्रादि शुद्धि न होय तब गोधूलीसमय सर्व कार्यमें शुभ होता है । जैसे मार्गशिर, पौषमें जब पिंडाकार सूर्य होय तो गोधूलीसमय होता है (फाल्गुन माघमेंभी इसी प्रकार) और (चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढमें) अर्द्ध सूर्य जब होय तब गोधूलीसमय होता है । और श्रावण भाद्रपद (आश्विन कार्तिकमें) संपूर्ण सूर्य अस्त होनेपर गोधूलीसमय होता है यह सर्व कार्यमें श्रेष्ठ है ॥ २८ ॥

अथ वधूप्रवेशः ।

समाद्रिपंचांगदिने विवाहात् वधूप्रवेशोऽष्टदिनांतराले । शुभः परस्ताद्विषमाब्दमासदिनेऽक्षवर्षात्परतो यथेष्टम् ॥ २९ ॥

भा० टी०—विवाहदिनसे २ । ४ । ५ । ६ । ७ । ८ । ९ । १० । १२ । १४ । १६ दिनमें इसके ऊपर विषम वर्षमें वा मासमें विवाह दिनसे ५ पांच वर्ष उपरांत यथेच्छ प्रवेश करे ॥ २९ ॥

ध्रुवाक्षिप्रमृदुश्रोत्रवसुमूलमघानिले ।
वधूप्रवेशः सन्नेष्टो रिक्तारार्के बुधे परैः ॥ ३० ॥

भा० टी०—हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित्, उत्तरात्रय, रोहिणी, मृगशिर, चित्रा, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, मूल, मघा, स्वाती इन नक्षत्रोंमें वधूप्रवेश श्रेष्ठ है और चतुर्थी ४, नवमी ९, चतुर्दशी १४ यह तिथि न होय और मंगल, सूर्य, बुध इन वारोंके विना वधूप्रवेश शुभ है ॥ ३० ॥

अथ द्विरागमनमुहूर्त्तः ।

चरेद्‌थौजहायने घटालिमेषगे रवौ रवीज्य-
शुद्धियोगतः शुभग्रहस्य वासरे । नृयुग्ममी-
नकन्यकातुलावृषे विलग्नगे द्विरागमं लघु-
ध्रुवे चरेऽस्रपे मृदूडुभिः ॥ ३१ ॥

भा० टी०—विषम वर्ष विवाहकालसे वा विषम मास कुंभ वृश्चिक मेषगत सूर्य होय और मिथुन, कन्या, तुला, मीन, वृष यह लग्न होंय और सूर्य, बृहस्पति शुद्ध हो शुक्र, बृहस्पति, चंद्र, बुध इन दिनोंमें और हस्त, अश्विनी, पुष्य अभिजित्, उत्तरात्रय, स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिष, मूल, मृग, रेवती, चित्रा, अनुराधा इन नक्षत्रोंमें द्विरागमन शुभ होता है ॥ ३१ ॥

अथ शुक्रविचारमाह ।

दैत्येज्यो ह्यभिमुखदक्षिणे यदि स्याद्गच्छेयु-
र्नहि शिशुगर्भिणी नवोढा । बालश्चेद्व्रजति
विपद्यते नवोढा । चेद्वंध्या भवति च गर्भि-
णी त्वगर्भा ॥ ३२ ॥

भा० टी०-यदि शुक्रजी सम्मुख वा दक्षिण भागमें स्थित होय तो तब बालक गर्भिणी नवीन युवती यह तीन न जांय यदि बालक यात्रा करे तो मृत्युको प्राप्त होता है और यदि गर्भवती स्त्री जाय तो गर्भरहित होती है अर्थात् गर्भ स्रव जाता है और यदि नवीन युवती यात्रा करे तो वंध्या हो जाती है और यात्रामें वामांग पृष्ठमें शुक्र श्रेष्ठ होता है ॥ ३२ ॥

अथापवादमाह ।

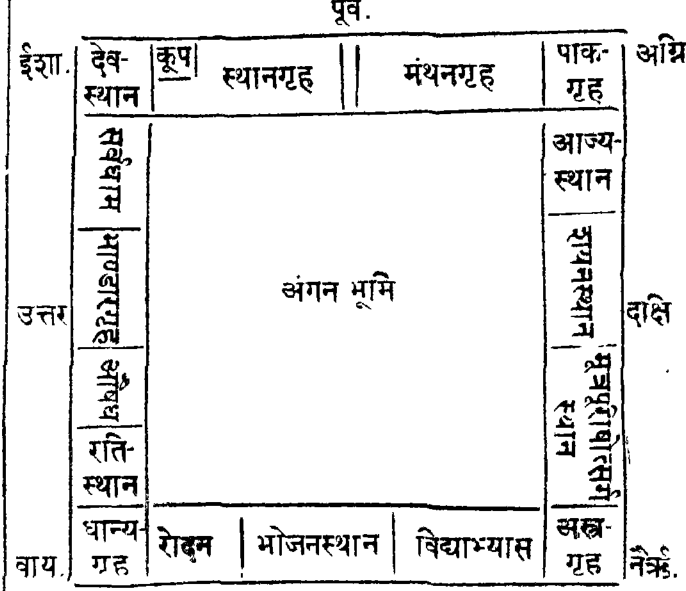
नगरप्रवेशविषयाद्युपद्रवे करपीडने विबुध-
तीर्थयात्रयोः । नृपपीडने नववधूप्रवेशने
प्रतिभार्गवो भवति दोषकृन्नहि ॥ ३३ ॥
पित्र्ये गृहे चेत्कुचपुष्पसंभवः स्त्रीणां न दोषः
प्रतिशुक्रसंभवः । भृग्वंगिरोवत्सवसिष्ठक-
श्यपात्रीणां भरद्वाजमुनेः कुले तथा ॥ ३४ ॥

इति श्रीदैवज्ञाऽनंतरामसुतविरचिते मुहूर्त-
चिंतामणौ विवाहप्रकरणं समाप्तम् ॥ १ ॥

भा० टी०—अपने नगरमें एक गृहसे द्वितीयगृहमें प्रवेश करना होय अथवा देशभंग वा राजभंग होय और विवाहमें अर्थात् विवाहको मुख्य रख यात्रामें और देवयात्रा पंचकोशी आदि तीर्थयात्रा गंगादि और वधूके आगमनमें सम्मुख शुक्र दोषकारक नहीं होता प्रमाणभी जैसे बादरायणका " स्वभवनपुरप्रवेशे देशानां विभ्रमे तथोद्वाहे । नूतनवध्वागमने प्रतिशुक्रविचारणं नास्ति ॥ एकग्रामे पुरे वापि दुर्भिक्षे राजविप्लवे । विवाहे तीर्थयात्रायां प्रतिशुक्रो न दुष्यति ॥ " और कई आचार्य दीपमालाके अनंतर प्रतिपत्में आगमनसे शुक्रका सम्मुख दक्षिण दोष नहीं कहते । प्रमाण—" अस्तंगते गुरौ शुक्रे सिंहस्थे वा बृहस्पतौ । दीपोत्सवदिने चैव कन्या भर्तृगृहं विशेत् ॥ " यदि कन्याके पितृगृहमें कुच पुष्पका संभव हो अनंतर विवाह करनेसे शुक्रका दोष नहीं होता । प्रमाण चंडेश्वरका—" पित्र्यागारे कुचकुसुमयोः संभवो वा यदि स्यात्पत्युः शुद्धिर्न भवति सफला सेवितुं स्वामिसद्म । " और भृगु, अंगिरा, वत्स, वसिष्ठ, कश्यप, अत्रि और भरद्वाज इनके कुलमेंभी शुक्रकृत दोष नहीं होता ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

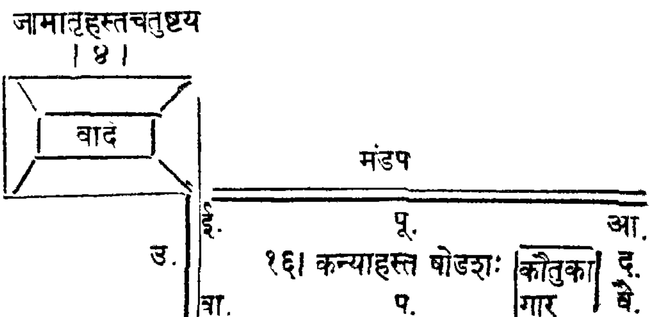
इति श्रीगौतमगोत्र (शोरि) अन्वयालंकृत—श्रीदैवज्ञदुनिचन्द्रात्मजकपूरस्थलनिवासि—पण्डित—विष्णुदत्तवैदिकसंगृहीत—विवाहमुहूर्ततत्कृतटीकासमाप्तिमगात् । समाप्तमिदं प्रथमं प्रकरणम् ॥ १ ॥

अथ यथार्थ गृहचित्र.

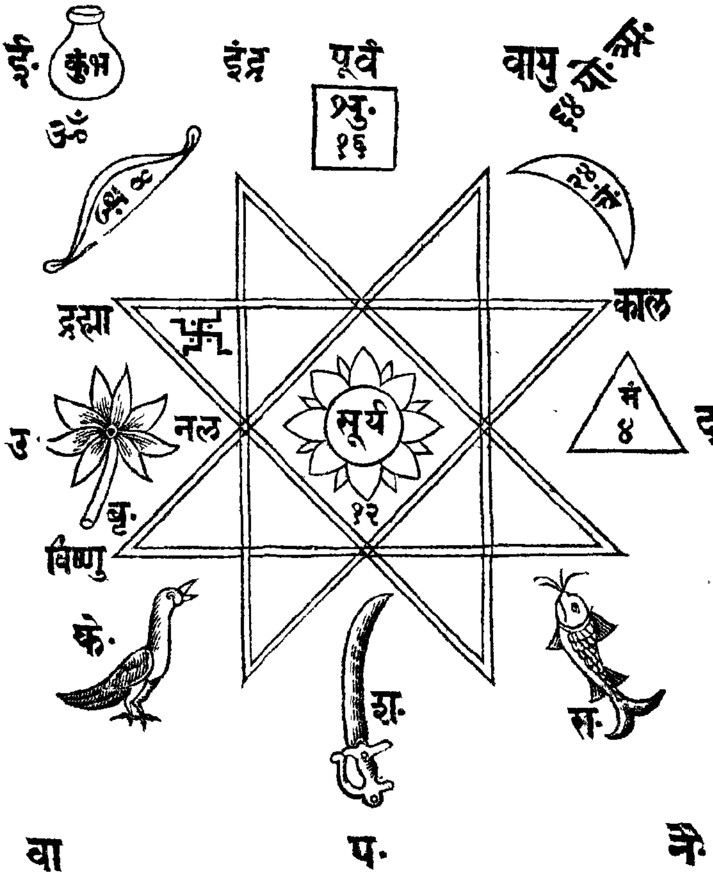


अभावे यथाशक्त्या लग्नादिकं वीक्ष्य शुद्धगृहं विधेयमिति ॥

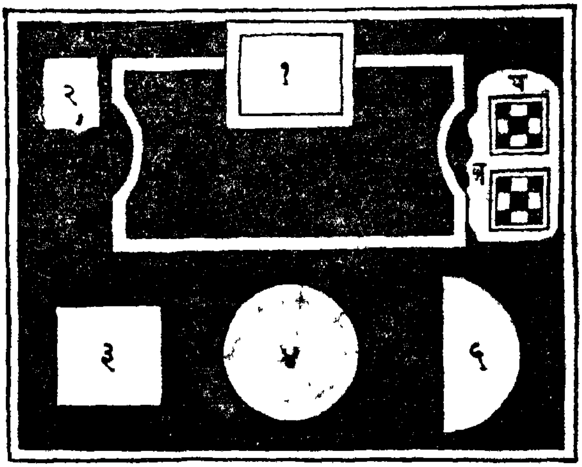
मंडपचित्र.



अथ तिलक नाम मण्डल चित्रम्.



अथ पंचाग्निकुण्डचित्रम्.



आहवनीयकुण्ड १ आवसथ्यकुं० २ सभ्यकुण्ड ३ गार्हपत्य कुण्ड ४ दक्षिणाग्निकुण्डमिति ५ ब्रह्मासनं यजमानासनम्.

अथपात्राणामाकृतयः ।

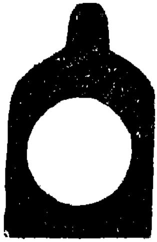
आज्यथाली १



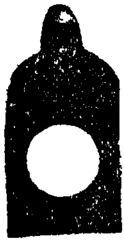
चरुस्थाली २



प्रणीतापात्रं ३



पुरोडाशपात्रं ४



स्रुव ५



उपभृत्स्रुक् ६



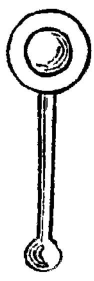
ध्रुवास्रुक् ७



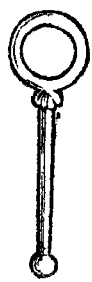
पुष्करस्रुक् ८



अग्निहोत्रहवनी ९

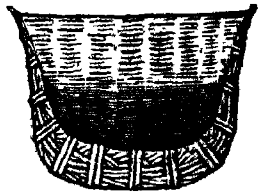


वैकङ्कतस्रुक् १०



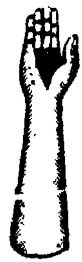
उलूखलं ११ मुसलं १२ शूर्पम् १३



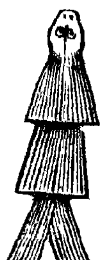


१४ शम्या १५ स्फ्यः शृतावदान १६ उपवेषः १७



कूर्च १८ १९ दृषत् २० उपल २१ षड्वर्त.



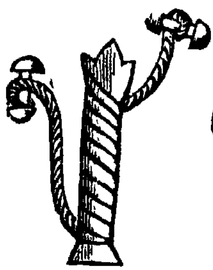
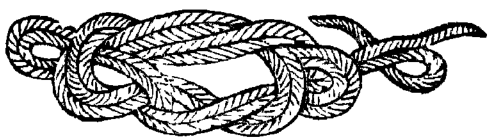



२२ अग्नि. २३ अरणि २४ उत्तरारणि २५ ओविली.

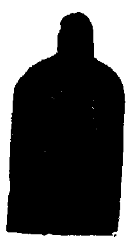





२६ प्रमन्थ. २७ नेत्रम्

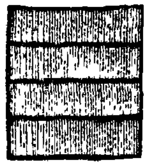
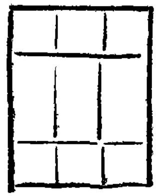



२८ अंतर्धानकट २९ हविर्धानपात्री ३० प्राशित्रहरणं ३१ चमसा.

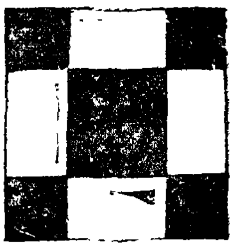
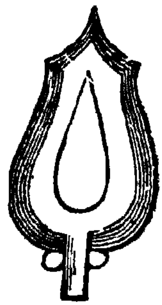





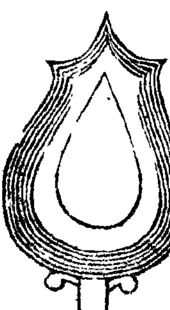
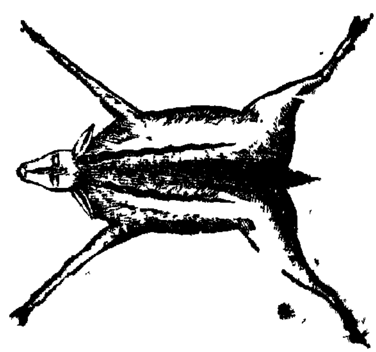
३२ इडापात्री ३३ यजमानासनं ३४ पत्न्यासनं ३५ होत्रासनं.


३६ ब्रह्मासनम् ३७ यजमानस्य पात्री.

३८ पत्नीपात्री. ३९ कृष्णाजिनम्.



अथ द्वितीयं प्रकरणम् ।

यज्ञपात्राणि कात्यायनसूत्रे–ऋचो यजूꣳषिसामानि निगदा मन्त्रास्तेषां वाक्यं निराकांक्षं मिथः संबद्धं–वैकङ्कतानि पात्राणि खादिरः स्रुवः स्फ्यश्च पालाशी जुहूराश्वथ्युपभृद्वारणान्यहोमसंयुक्तानि बाहुमात्र्यः स्रुचः पाणिमात्रपुष्करास्त्वग्बालाहꣳसमुखप्रसेका मूलदण्डा भवन्त्यारत्निमात्रः स्रुवोऽङ्गुष्ठपर्ववृत्तपुष्करः स्फ्योऽस्याराकृतिरादर्शाकृतिः प्राशित्रहरणं चमसाकृति वा चात्वालोत्करावन्तरेण सञ्चरः प्रणीतोत्करावीष्टिषु ॥ ३ ॥ विस्तरस्तु तत्रैव वा संस्कारभाष्ये द्रष्टव्यः॥ विस्तरभयान्न लिखितं ॥ विवाहप्रकरणे येषां प्रयोजनं तेषां प्रमाणं पृ० प० अमुकोपरि लिखितं अन्यान्यादर्शमात्राणि ॥

इति श्रीदैवज्ञदुनिचंद्रात्मजविष्णुदत्तसंगृहीतं गृहमण्डपपात्रचिह्नं नाम द्वितीयं प्रकरणं सप्रमाणं समाप्तम् ॥ २ ॥

अथ विनियोगवर्णनम् ।

व्याख्या लिख्यते । विदित हो कि आगामी सर्वमंत्रोंका साथ विनियोग दिखाया जावेगा इसलिये प्रथम विनियोगकी पुष्टि करते हैं कि विनियोग उसको कहते हैं कि ऋषि छंद देवताओंका स्वर कर्ममें योजन करना अर्थात् इस मंत्रका यह ऋषि और यह देवता अमुक छंद इनके यथार्थ ज्ञानको विनियोग कहते हैं और विना विनियोगके मंत्र सिद्धिको प्राप्त नहीं होता इस कारणसे विनियोगकी आवश्यकता है । ऋषि किनको कहते हैं-" द्रष्टारो ऋषयः " अर्थ-मंत्रद्रष्टा ऋषि होते हैं जैसे इस मंत्रका गौतम ऋषि वा भरद्वाज वा आङ्गिर इत्यादि ऋषि हैं वहां समझना कि यह मंत्र इस ऋषिको अपने तपोबलसे प्रत्यक्ष स्मरण भया उसको निश्चय गुरुसे किया था फिर वही मंत्र वेदके सदृश मिलनेसे वह ऋषि उस मंत्रका भया कि इसने प्रथम मालूम किया ॥ १ ॥ और देवता उनको कहते हैं-" स्मर्तारः परमेष्ठ्यादयः" अर्थात् जैसे ब्रह्माने अमुक वेदका स्मरण किया विष्णुने अमुक स्मरण करा इस प्रकार रुद्र, इंद्र, अग्नि, सूर्य, चंद्रादि जिस २ मंत्रोंको स्मरण करते भये वह उन २ के देवता भये ॥ २ ॥ अब छंद लिखते हैं-"छन्दो गायत्रीप्रभृतयः " अर्थात् गायत्रीसे आदि लेकर मंत्रोंके छंद होते हैं । अब छंदोंको यथावत् लिखते हैं कि जो वेदमंत्रोंके हैं । उक्ता १, अत्युक्ता २, मध्या ३, प्रतिष्ठा ४, सुप्रतिष्ठा ५, गायत्री ६, उष्णिक् ७, अनुष्टुप् ८, बृहती ९, पंक्ति १०, त्रिष्टुप् ११, जगती १२, अतिजगती १३, शक्वरी

१५, अष्टि १६, अत्यष्टि १७, धृति १८, अतिधृति १९ प्रकृति २०, आकृति, २१, विकृति २२, संस्कृति २३ अभिकृति २४, उत्कृति २५ यह छंदसंख्या है॥

अथ गायत्र्यादिच्छन्दोभेदाः.

	छन्दः	गायत्री	उष्णि.	अनुष्टुप्	बृहती	पंक्ति	त्रिष्टुप	जगती
१	आर्षी	२४	२८	३२	३६	४०	४४	४८
२	दैवी	१	२	३	४	५	६	७
३	आसुरी	१५	१४	१३	१२	११	१०	९
४	प्राजाप.	८	१२	१६	२०	२४	२८	३२
५	याजुषी	६	७	८	९	१०	११	१२
६	साम्नी	१२	१४	१६	१८	२०	२२	२४
७	आर्ची	१८	२१	२४	२७	३०	३३	३६
८	ब्राह्मी	३६	४२	४८	५४	६०	६६	७२

इस प्रकार सम्पूर्ण छन्दोंके अनेक भेद हैं विस्तारके भयसे लिखते नहीं एक गायत्री छन्द उदाहरण मात्र दिखला दिया है जिन महाशयोंको और भेद देखनेकी इच्छा हो वह सभाष्य पिंगलसूत्र छंदःशास्त्रसे देख लेवे॥

इति श्रीदैवज्ञढुंनिचंद्रात्मजपण्डितविष्णुदत्तकृतऋषिच्छंददेवतावर्णनं नाम द्वितीयं प्रकरणं समाप्तम्॥ २॥

अथ तृतीयं प्रकरणम् ।

ॐ स्वस्ति श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगुरवे नमः ॥ अथ कात्यायनीशान्तिप्रयोगः ॥

आदौ गणपतिं वन्दे विघ्ननाशं विनायकम् ।
ऋषींश्च देवजननीं ग्रहस्थापनमारभे ॥ १ ॥

भा० टी०—श्रीगुरुचरणसरोजं नत्वा गणपत्यादिदेवांश्च । कात्यायनकृतशान्तेः कुर्वे नृभाषभा टीका ॥ १ ॥ काव्यकलापे कुशला सन्ति यद्यपि सर्वभूदेवाः । सर्वजनसुखाभिहितो क्रियते विष्णुदत्तेन ॥ २ ॥ श्री विघ्नविनाशक विनायक गणपतिजीको तथा ऋषियोंको देवजननी दुर्गाजी अथवा अदितिजीको वंदन कर प्रथम ग्रहोंकी यथावत् स्थितिका आरंभ करते हैं । देवजननी इस शब्दसे लक्षणद्वारा ब्रह्मा विष्णु रुद्रादि देवता और ब्रह्मविद्याका ग्रहण होता है ॥ १ ॥

मण्डलं च ततः कृत्वा सर्वतोभद्रमेव च ।
व्रतोपनयने चूडे यत्र शांतिरुदाहृता ॥ २ ॥
विवाहादौ लिखेन्नित्यं तिलकं नाम मण्डलम् ।
द्वादशांगुलमध्यस्थं वर्तुलाष्टदलं रविम् ॥ ३ ॥
चन्द्रमर्द्धं लिखेत्तत्र ह्याग्नेय्यां चतुर्विंशतिः ।
त्रिकूटं भूसुतं चैव दक्षिणे चतुरंगुलम् ॥ ४ ॥

धनुषाकारं नवांगुल्यमीशाने च बुधं तथा ।
उत्तरे च गुरुः स्थाप्यः पद्माकारो नवांगुलः ॥ ५ ॥
पूर्वे संस्थापयेच्छुक्रं चतुष्कोणं नवांगुलम् ।
खड्गाकृतिं नवांगुल्यं प्रतीच्यां शनिमेव च ॥ ६ ॥
नैर्ऋत्यां राहुं संस्थाप्य मत्स्याकारं नवांगुलम् ।
केतुं दीर्घं यथा राहुं वायव्यां दिशि संस्थितम् ॥ ७ ॥
स्वस्वादिक्षु ग्रहाः स्थाप्याः संख्यारेखा भवेद्ध्रुवम् ।
भास्करांगारकौ रक्तौ श्वेतौ शुक्रनिशाकरौ ॥ ८ ॥
सोमपुत्रो गुरुश्चैव उभौ तौ पीतकौ स्मृतौ ।
कृष्णवर्णौ भवेच्छौरी राहुकेतू च धूम्रकौ ॥ ९ ॥
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च उत्तरे च तथानलः ।
इंद्रो वायुर्भवेत्पूर्वे सर्प्पकालौ च दक्षिणे ॥ १० ॥
ऐशान्यां कलशः स्थाप्य ओंकारादींश्च सर्वशः ।
मातरश्चोत्तरे स्थाप्या आग्नेय्यां योगिनीं न्यसेत् ११
कनिष्ठिकाप्रमाणेन रेखाः कार्याः प्रयत्नतः ।
स्थूलाःसूक्ष्मा न कर्तव्या यदीच्छेच्छ्रेय आत्मनः १२

इति ग्रहस्थापनम् ।

भा० टी०—व्रतमें उपनयन चूडाकर्म तथा जहां शांति हो वहां सर्वतोभद्र मण्डल रचना चाहिये, विवाहमें तिलक नाम मण्डल लिखे । यह मंडलका चित्र पीछे लिखा है इस लिये अर्थ सुगम होनेसे लिखते नहीं । तथापि सूर्य मंगल यह रक्त वर्णसे लिखे, बुध गुरु पीतवर्णसे, शुक्र चंद्र श्वेत और कृष्णवर्णसे शनि, राहु केतु धूम्रवर्णसे लिखे यदि कल्याणकी इच्छा हो तो न अति सूक्ष्म और न स्थूल लिखे । इति नवग्रहस्थापनाविधानम् ॥ २-१२ ॥

अथ स्वस्तिवाचनम्.

शुक्लयजुर्वेद अध्याय २५ कं० मंत्र १९ ।

हरिः ॐ स्वस्तिनऽइन्द्रोवृद्धश्रवाः स्वस्तिनः पूषाविश्ववेदाः । स्वस्तिनस्ताक्ष्योऽअरिष्टनेमिः स्वस्तिनो बृहस्पतिर्दधातु ॥ १ ॥

यजु० अध्याय ३५ मंत्र ३६ ।

पयः पृथिव्यांपय ऽओषधीषुपयो दिव्यन्तरिक्षेपयोधाः । पयस्वतीः प्रदिशः सन्तुमह्यम् ॥ २ ॥

शु० यजु० अध्याय ५ मंत्र २१ ।

विष्णोर्‌रराटमसि विष्णोः श्नप्त्रे स्थो विष्णोः स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवोसि । वैष्णवमसि विष्णवे त्वा ॥ ३ ॥

यजु० अध्याय १४ मंत्र २० ।

अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवतादित्या देवता मरुतो देवता विश्वेदेवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता ॥ ४ ॥

यजु० अध्याय ३६ मंत्र १७ ।

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शांतिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शांतिरेधि ॥ ५ ॥

यजु० अध्याय ३० अनुवाक १ मंत्र ३ ।

विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव ।
यद्भ॒द्रन्तन्न॒ऽआसु॑व ॥ ६ ॥

यजु० अध्याय १६ अनुवाक ७ मंत्र ४८ ।

इ॒मा रु॒द्राय॑ त॒वसे॑ कप॒र्दिने॑ क्ष॒यद्वी॑राय॒ प्र-
भ॑रामहे म॒तीः ॥ यथा॒ शमस॑द्द्वि॒पदे॒ चतु॑-
ष्पदे॒ विश्वं॑ पु॒ष्टं ग्रामे॑ऽअ॒स्मिन्नना॑तु-
रम् ॥ ७ ॥

यजुर्वेद अध्याय २ मंत्र १२ ।

ए॒तन्ते॑ देव सवित॒र्य॒ज्ञम्प्राहु॒र्बृह॒स्पत॑ये ब्र॒-
ह्मणे॑ ॥ तेन॑ य॒ज्ञम॑व॒ तेन॑ य॒ज्ञप॑तिं॒ तेन॒ मा-
म॑व ॥ ८ ॥

यजुर्वेद अध्याय ३ मंत्र १३ ।

मनो॑ जू॒तिर्जु॑षता॒माज्य॑स्य॒ बृह॒स्पति॑र्य॒-
ज्ञमि॒मन्त॑नो॒त्वरि॑ष्टं य॒ज्ञꣳ समि॒मन्द॑धातु ।
विश्वे॑ दे॒वास॑ऽइ॒ह मा॑दयन्ता॒मो३म्प्रति॑ष्ठ ।

एषवैप्रतिष्ठानामयज्ञोयुवैतेनयज्ञेनयु-
ञ्जन्ते सर्वमेव प्प्रातिष्ठितंभवति॥ॐ३म१॥

यजुर्वेद अध्याय २३ मंत्र १९ ।

गणानांन्त्वा गणपतिꣳहवामहे प्प्रियाणां
न्त्वाप्प्रियपतिꣳहवामहे निधीनान्त्वा नि
धिपतिꣳहवामहे वसोवम आहमजानिग
र्ब्भधमात्वमजासिगर्ब्भधम् ॥ १० ॥

शुक्लयजु० अध्याय १६ मंत्र २५ ।

नमोगणेभ्यो गणपतिभ्यश्चवोनमोनमो
व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्य श्चवो नमोनमोगृ-
त्सेभ्योगृत्सपतिभ्यश्चवो नमोनमोवि-
रूपेभ्योविश्वरूपेभ्यश्चवोनमः ॥ ११ ॥

ॐ सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः ।
लंबोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः ॥
धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचंद्रो गजाननः ।

---

१ यह मंत्र ब्राह्मणका है ।

द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि ॥
विद्यारंभे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा ।
संग्रामे संकटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते ॥
श्रीगणपतये नमः ॥

इति स्वस्तिवाचनम् ।

भा० टी०—यह स्वस्तिवाचनका अर्थ आगे विवाहप्रकरणके आदिमें लिखा है इसलिये पिष्टपेषण नहीं करते । [मनो॰ जूति इसका अर्थ] अति वेगयुक्त मेरा मन आज्यको सेवन करे इस यज्ञको बृहस्पतिजी विस्तृत करें तथा अरिष्टको तथा इस यज्ञकी पुष्टि करें । और विश्वदेवा १३ नाम देवगण यहां आनंदसे मग्न होवें वा मदयुक्त होवें । [सुमुखश्चेति] यह १२ द्वादश गणेशजीके नाम विद्याके प्रारंभ तथा विवाहमें प्रवेश निर्गम संग्राम संकट अर्थात् जहां भीति हो वहां लेनेसे विघ्नादि सर्व उपद्रव शान्त होते हैं इस लिये आदिमें गणपतिपूजन यथोक्त करना चाहिये ॥

अथ ततः संकल्पः ।

ॐ तत्सद्य ब्रह्मणो द्वितीयपरार्द्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे जंबुद्वीपे भरतखंडे आर्यावर्ते वर्तमानकलियुगप्रथमचरणे वैवस्वतमन्वंतरे अष्टाविंशतितमे युगेऽमुकऋतौ अमुक-

मासेऽमुकपक्षेऽमुकतिथौ अमुकवासरान्वितायां अमुककरणनक्षत्रयोगयुक्तायां श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तफलावाप्तिकामः धर्मार्थकाममोक्षार्थं मनोभिलषितप्राप्तये अमुकगोत्रोऽमुकशर्माऽहममुककर्मनिमित्तककात्यायनीशान्तिमहंकरिष्ये । तन्निर्विघ्नपरिसमाप्तयेगणपतिपूजनं च करिष्ये इति ॥

भा० टी०—संकल्पमें यथावत् संवत्सरादि नामादि उच्चारण करने चाहिये । और शर्मके स्थान क्षत्री वर्मा यह पद कहे और वैश्य गुप्त यह पद कहे । प्रमाण—"शर्म ब्राह्मणस्य वर्म क्षत्रियस्य गुप्तेति वैश्यस्य" गृह्यसूत्र १ कांडमें ॥

अथ गणपतिपूजनम् ॥ ॐ गणानां त्वा गणपति ँ हवामहे इति मंत्रेण । ॐ भूर्भुवः स्वःभगवन् गणपतिदैवत इहागच्छ इह तिष्ठ सुप्रतिष्ठ वरदो भव मम पूजां गृहाण ॥ पाद्यादिभिरर्चयेत् । भगवन् गणपतिदेव एतत्पाद्यादिभिर्गंधाक्षतादिभिश्च पूजितः प्रसन्नो भव ॥ पुनः । वक्रतुंड महाकाय कोटिसूर्यसमप्रभ । अविघ्नं कुरु मे देव सर्वका-

येषु सर्वदा ॥ इति । अथ पंचोपचारपूज-
नम् ॥ आवाहयाम्यहं देवमोंकारं परमेश्व-
रम् । त्रिमात्रं त्र्यक्षरं दिव्यं त्रिपदं च त्रिदै-
वकम् ॥ त्र्यक्षरं त्रिगुणाकारं सर्वाक्षरमयं
शुभम् । त्र्यणवं प्रणवं हंस स्रष्टारं परमेश्व-
रम् ॥ अनादिनिधनं देवमप्रमेय सनात-
नम् । परं परतरं बीजं निर्मलं निष्कलं शुभम् ॥

भा० टी०—गणानां त्वा इस मंत्रसे गणपतिका पूजन करे और प्रार्थना करे हे भगवन् गणपति देव ! यहां आओ और बैठो वरको देवो और पूजाको ग्रहण करो । पाद्य अर्घ आचमनीय इत्यादिसे आगे लिखे षोडश उपचारसे पूजन करे । इस प्रकार ओंकारके मंत्रोंसे ओंकारका पूजन करना ॥

शुक्लयजुर्वेद अध्याय २२ अनुवाक ७ मंत्र २२

ॐ आब्रह्मन्न्ब्राह्मणो ब्ब्रह्मवर्च्च-
सीजायतामाराष्ट्रे राजन्न्य ÷ शूरऽइषव्योति-
व्याधीमहारथो जायतान्दोग्ध्री धेनुर्वो-
ढानड्वानाशु÷सप्तिः पुरन्धिर्य्योषाजिष्णू
रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो

जायतान्निकामेनिकामेनःपुर्ज्जन्योवर्षतु फलवत्त्योनुऽओषधयःपच्यन्तान्योगक्षेमोनः कल्पताम् ॥

भा०टी०-(मंत्रार्थ) हे ब्रह्मन् हे ब्रह्माजी ! आपकी कृपासे यज्ञको करना कराना पढना पढाना दान लेना देना इत्यादि षट्कर्म करनेवाले और ब्रह्मतेजवाले ब्राह्मण होवे। और हमारे राष्ट्रमें क्षत्री व्याधि कातरसे रहित शूरवीर महारथ इस यजमानके हो। और इस यजमानकी दुग्ध देनेवाली गौ होवें और शीघ्र गमनवाले घोडे और सुंदर रूपवाले होवें। और पुरुष रथमें बैठनेवाले युवा सभायोग्य इस यजमानके संबंधी पुत्रादि होवे और हमारी प्रार्थनासे वृष्टि हो और फलयुक्त ओषधियां पकें हमारेको योग क्षेम होवें ॥

अथ रक्षाविधानम्.

शुक्लयजु० अध्याय ३ मंत्रः ३० ।

ॐमानःशꣳसोअररुषो धूर्तिःप्रणङ्मर्त्यस्य । रक्षाणोब्रह्मणस्पते ॥

यजु० अध्याय ३४ मंत्र ५२ ।

ॐयदाबध्नन्दाक्षायणाहिरण्यꣳशतानीकायसुमनस्यमानाः ।तन्मआबध्ना

मिशतशारदायाऽऽयुष्मान्जरदष्टिर्यथासम् ॥ इति पठन् ॥

भा० टी०—(मानःशं० स) हे ब्रह्मण्य ! ते हमारे अनिष्टचिन्तक परंतु मारनेमें असमर्थ हमारे शत्रुकी धूर्ति नाम हिंसा आप मत करें किंतु हमारी रक्षा करें अर्थात् असमर्थ शत्रुका क्या मारना वह आगे मृत होता है (यदाबध्नन्) दक्षकी संतान जो सुवर्ण शतानीक अर्थात् बहुत सेनायुक्त राजाको बान्धते भये प्रसन्न चित्त होकर शतजीवनके लिये तिस प्रकार जैसे वृद्धावस्थाको प्राप्त होवें तद्वत् बांधते हैं ॥

अथ मातृकापूजनम्.

गौरी १ पद्मा २ शची ३ मेधा ४ सावित्री ५ विजया ६ जया ७ । देवसेना ८ स्वधा ९ स्वाहा १० मातरो ११ लोकमातरः १२ ॥ हृष्टिः १३ पुष्टि १४ स्तथा तुष्टि १५ स्तथात्मकुलदेवताः १६ ॥ श्रीकुलदेव्यंतर्गतगौर्यादिषोडशमातृभ्यो नमः ॥ अथ ऋत्विजां वरणम् ॥ यथा चतुर्मुखो ब्रह्मा सर्ववेदधरः प्रभुः । तथा त्वं मम यज्ञेऽस्मिन्ब्रह्मा भव द्विजोत्तम ॥ गृहीत्वा तु कराङ्गुष्ठं यजमानः

पठेदिदम् ॥ अस्य कर्म्मणः प्रतिष्ठापनार्थं त्वं ब्रह्मा भव । अहं भवामि ब्रह्मा ब्रूयात् ॥

भा० टी०-गौरीसे आदि षोडश १६ मातृका भिन्न भिन्न अंक देकर मूलमें लिखी है । उनकी यथावत् षोडशोपचार पूजा करनेसे यह सन्तुष्ट होकर शुभको विधान करती हैं । ऋत्विक् होता आचार्य ब्रह्मादि वरणमें प्रथम ब्रह्माका वरण होता है अर्थ-जैसे चतुर्मुख सम्पूर्ण वेदविद्याके जाननेवाले ब्रह्माजी हैं तद्वत् आप मेरे यज्ञमें ब्रह्मा होवे यह कह हस्तका अंगुष्ठ पकडकर यजमान इस कर्मकी प्रतिष्ठाके लिये आप ब्रह्मा हो । होता है यह ब्रह्मा कहै ।

आचार्यस्तु यथा स्वर्गे शक्रादीनां बृहस्पतिः । तथा त्वं मम यज्ञेऽस्मिन्नाचार्यस्त्वं भव प्रभो ॥ गृहीत्वा तु करांगुष्ठं यजमानः पठेदिदम् ॥ अस्य कर्मणः प्रतिष्ठापनार्थं त्वं आचार्यो भव । अहं भवामि ॥ ऋग्वेदः पद्मपत्राक्षो गायत्र्यः सोमदैवतः । अत्रिगोत्रस्तु विप्रेन्द्र ऋत्विक् त्वं मे मखे भव ॥ गृहीत्वा तु करांगुष्ठं यजमानः पठेदिदम् ॥ अस्य कर्मणः प्रतिष्ठापनार्थं ऋग्वेदी भव । अहं भवामि ॥

भा० टी०–जैसे स्वर्गमे इंद्रादिकोंका आचार्य (गुरु) बृह-स्पतिजी हैं तद्वत् आप मेरे यज्ञमें आचार्य होवें ' गृहीत्वा तु ' इसका पूर्वोक्त अर्थ है यदि कोई कहे कि आचार्यको गुरु कैसे कहते हैं ? उत्तर–जो उपनयन कर शोचता और वेदविद्या पढाता इसको आचार्य अर्थात् गुरु कहते हैं प्रमाणभी यास्क-जीने निरुक्तमें लिखा है " आचार्यः कस्मादाचार्य आदावाचारं ग्राहयित्वा विनोत्यर्थान् " याज्ञवल्क्यजीभी लिखते है " उप-नीय दद्वेदमाचार्यः स उदाहृतः । " इस प्रकार ऋग्वेदादिक चार वेदोंका वरण जानना । ऋग्वेदका स्वरूप पद्मपत्रवत् नेत्र, गायत्री छंद, सोम देवता, अत्रि गोत्र इत्यादि ॥

कातराक्षो यजुर्वेदस्त्रिष्टुभो ब्रह्मदैवतः । भार-द्वाजस्तु विप्रेन्द्र ऋत्विक् त्वं मे मखे भव ॥ गृहीत्वा तु करांगुष्ठं यजमानः पठेदिदम् ॥ अस्य कर्मणः प्रतिष्ठापनार्थं त्वं मे यजुर्वेदी भव । अहं भवामि ॥ सामवेदस्तु पिङ्गाक्ष-स्त्रिष्टुभो विष्णुदैवतः । काश्यपेयस्तु विप्रेन्द्र ऋत्विक् त्वं मे मखे भव ॥ गृहीत्वा तु क-रांगुष्ठं यजमानः पठेदिदम् ॥ अस्य कर्मणः प्रतिष्ठापनार्थं त्वं सामवेदी भव । अहं भवामि ॥

भा० टी०–कायरता युक्त नेत्र त्रिष्टुप् छंद, ब्रह्म देवता भारद्वाज गोत्र इत्यादि यजुर्वेदका स्वरूप है । और पिंगल-वर्ण नेत्र त्रिष्टुप् छंद विष्णु देवता कश्यप गोत्र इत्यादि साम-वेदका स्वरूप छंदादिक है ॥

अथाशीर्वादः ।

ऋग्वेदस्तु यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः ।
ब्रह्मवाक्यैश्च नैर्नित्यं हन्यंतां तव शत्रवः ॥
अपुत्राः पुत्रिणः सन्तु पुत्रिणः सन्तु पौत्रिणः ।
अधनाः सधनाः सन्तु सन्तु सर्वार्थसाधकाः ॥
विप्रहस्ताच्च गृहीयाद्यज्ञपुष्पफलाक्षतान् ।
चत्वारस्तववर्द्धन्तामायु कीर्तिर्यशो बलम् ॥

अथ कलशपूजनम् ॥ ॐ ऋग्वेदाय नमः यजुर्वेदाय नमः सामवेदाय नमः अथर्ववेदाय नमः कलशाय नमः वरुणाय नमः रुद्राय नमः समुद्राय नमः गंगायै नमः । यमुनायै नमः सरस्वत्यै नमः कलशकुंभाय नमः ॥

भा० टी०–ऋक् यजु साम अथर्वण यह ४ वेद ब्रह्मवाक्य पुराणादिसहित तुमारे शत्रुओंको नष्ट करें । और जिनके पुत्र नहीं वह पुत्रयुक्त हों और पुत्रोंवाले पौत्रोंसे युक्त हों । निर्धन धनवान् हो धनवान् संपूर्ण कामना सिद्ध करनेवाले हों । यज्ञके

ब्राह्मणके हाथसे पुष्प फल अक्षत ग्रहण करे ४ वस्तु आयु १ कीर्ति २ यश ३ बल ४ वृद्धिको प्राप्त हो ॥

ब्रह्मणा निर्मितस्त्वं हि मंत्रैरेवामृतोद्भवः ।
प्रार्थयामि च त्वां कुंभ वाछितार्थं तु देहि मे ॥

शुक्लयजु० अध्याय ४ मंत्र ३६ ।

वरुणस्योत्तम्भनमसि वरुणस्य स्कम्भसर्जनीस्त्थो वरुणस्यऽऋतसदन्यसि वरुणस्यऽऋतसदनमसि वरुणस्यऽऋतसदनमासीद ॥

भा० टी०—(वरुणस्योत्तंभनमसि) हे शम्ये ! तुम वरुणके जलकी स्तंभन करनेवाली है और वरुणकी तुम शिथिल शम्या होवे और वरुणके सत्य स्थानमें हो और वरुणके सत्य स्थान होनेसे आप यहां स्थित होवें । यह वेदमंत्रार्थ है कि ब्रह्माजीने अमृतोद्भव मंत्रोंसे आपको रचा और हम आपकी प्रार्थना करते हैं कि हमलोगोंको वांछित अर्थ देवे ॥

अथ वास्तुपूजा.

अथातः संप्रवक्ष्यामि यदुक्तं वास्तुपूजनम् ।
येन पूजाविधानेन कर्मसिद्धिस्तु जायते ॥
अनंतं पुण्डरीकाक्षं फणाशतविभूषितम् ।
विद्युद्वन्धूकसाकारं कूर्मारूढं प्रपूजयेत् ॥

शुक्लयजु० अध्याय १३ मंत्र ६।

ॐनमोऽस्तु सर्प्पेभ्यो येकेच पृथिवीमनु। येऽअन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्प्पेभ्यो नमः॥ वासुक्याद्यष्टकुलनागेभ्यो नमः॥

भा० टी०—इसके अनन्तर वास्तुपूजा लिखते हैं जिसके करनेसे कर्मोंकी सिद्धि होती है। यह कर्मका अंग है कमलसदृश नेत्रवाला और शतफणोंसे सुशोभित विद्युत्कांतियुक्त कूर्मदेवपर स्थित अनंत (शेष) की पूजा करे। (नमोस्तु मंत्रार्थः) जो पृथ्वीमें रहते हैं और जो आकाशमें तथा स्वर्गमें सर्प रहते हैं तिन्ह संपूर्णोंके लिये यह प्रणाम हो और वह रक्षा करे यह फलितार्थ है॥

अथ योगिनीपूजा।

ॐ आवाहयाम्यहं देवीं योगिनीं परमेश्वरीम्। योगाभ्यासेन संतुष्टा परध्यानसमन्विता॥ १॥ दिव्यकुण्डलसंकाशा दिव्यज्वाला त्रिलोचना। मूर्तिमती ह्यमूर्त्ता च उग्रा चैवोग्ररूपिणी॥ २॥ अनेकभावसंयुक्ता संसारार्णवतारिणी। यज्ञं कुर्वन्तु निर्विघ्नं श्रेयो यच्छन्तु मातरः॥ ३॥

दिव्ययोगी महायोगी सिद्धयोगी गणेश्वरी । प्रेताशी डाकिनी काली कालरात्री निशाचरी ॥ ४ ॥ हुंकारी सिद्धवेताली खर्परी भूतगामिनी । ऊर्ध्वकेशी विरूपाक्षी शुष्कांगी मांसभोजनी ॥ ५ ॥ फूत्कारी वीरभद्राक्षी धूम्राक्षी कलहप्रिया । रक्ता च घोरा रक्ताक्षी विरूपाक्षी भयंकरी ॥ ६ ॥ चौरिका मारिका चंडी वाराही मुण्डधारिणी । भैरवी चक्रिणी क्रोधा दुर्मुखी प्रेतवासिनी ७॥ कालाक्षी मोहिनी चक्री कंकाली भुवनेश्वरी। कुण्डला तालकौमारी यमदूती करालिनी ८॥ कौशिकी यक्षिणी यक्षी कौमारी यंत्रवाहिनी । दुर्घटे विकटे घोरे कपाले विषलंघने ॥ ९ ॥ चतुःषष्टिः समाख्याता योगिन्यो हि वरप्रदाः । त्रैलोक्ये पूजिता नित्यं देवमानुषयोगिभिः ॥ १० ॥ इति ॥

भा० टी०—परब्रह्ममें खचित योगाभ्यासकर संतुष्ट परमेश्वरी देवी श्रीयोगिनीका आवाहन करते हैं । कुंडलोंसे युक्त वेज त्रिनेत्रयुक्त मूर्तिवाली और मूर्तिसे रहित भयानक इत्यादि

अनेक भावोंसे संयुक्त संसाररूपी समुद्रके पार उतारनेवाली योगिनी माता इस यज्ञको विघ्नरहित करे और हमारेको कल्याण देवे । यह ६४ योगिनी संकटमें विपत्तिमें अर्थात् जहां भीति हो वहां स्मरण की हुई वरको देती संकट दूर करती हैं इस कारण देव मानुष योगिजनोंकर यह पूजनीय हैं अर्थात् संपूर्ण जगत् इनकी पूजा करता है ॥ १-१० ॥

अथ ब्रह्मपूजा.

शु० यजु० अध्याय १३ मंत्र ३ ।

ब्रह्म यज्ञानम्प्रथमम्पुरस्ताद्विसीमतः सुरुचोवेनआवः ॥ सबुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः ॥ इति पाद्यादिभिर्ब्रह्माणमर्चयेत् ॥

भा० टी०-[मंत्रार्थ ब्र०] ब्रह्म सर्वव्यापी सूर्य प्रथम पूर्वदिशामें उदय होता है फिर अपने प्रकाशसे चारों तरफ मध्यवर्ती प्रकाश करता है वह प्रकाशमान लोक वेन मेधावी आदित्य दिशाओंसे जाना जाता है इस विद्यमान जगत्का अधिष्ठाता है और अमूर्त अदृश्यमान जगत्का कारण है । अर्थात् सूर्य भगवान्ही संपूर्ण लोकोंको दिशाको प्रकाश करता है ॥

अथ विष्णुपूजा.

यजु० अध्याय ५ मंत्र २१ ।

ॐ विष्णो रराटमसि विष्णोः श्नप्त्रे स्थो विष्णोः स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवो ऽसि । वैष्णवमसि विष्णवे त्वा ॥

भा० टी०-(विष्णोरराटमसि) इसका अर्थ आगे शांतिपाठमें लिखा है । इति विष्णुं पाद्यादिभिरर्चयेत् ॥

अथ शिवपूजा.

शुक्लयजुर्वेद अध्याय १६ मंत्र ४१ ।

ॐ नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥

भा० टी०-(नमः शंभवेति) शमके देनेवाले तथा सुख कल्याणादि गुण देनेवाले शंकरजीको नमस्कार है । इति शिवं पाद्यादिभिरर्चयेत् ॥

अथेंद्रपूजा.

यजु० अध्याय २० मंत्र ५० ।

ॐ त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रꣳ हवे हवे सुहवꣳ शूरमिन्द्रम् । ह्वयामि शक्रम्पु

स्हूतमिन्द्रं २७ स्वस्तिनोंमुघवा धात्विन्द्रं÷॥ ॐ इन्द्राय नमः इति पूजयेत् ॥

भा० टी०—[त्रातारमिंद्र०] रक्षा करनेवाला जिससे इंद्रजीको कहते हैं बुलानेमें शोभन शूरवीर वह इंद्र हम करके बुलाया मघा न नष्ट होनेवाला धन और स्वस्ति हमारेको देवे हम प्रार्थना करते हैं ॥

अथ वायुपूजा.

यजु० अध्याय २७ मंत्र ३२ ।

वायोयेते महस्रिणो रथासुस्तेभिरागंहि । नियुत्वान्त्सोमं पीतये ॥

यजु० अध्याय ९ मंत्र ७ ।

ॐ वातो वामनो गन्धर्वाः सुप्तविंᳬशतिः ॥ ते अग्रेश्वमयुञ्जँस्तेऽस्मिन् जवमादधुः ॥ ॐ वायवे नमः ॥ इति पूजयेत् ॥

भा०टी०—(वायो येते०) हे वायुदेव ! जो तुमारे सहस्रसंख्यक रथ सदृश रथ है उनसे युक्त होकर आप सोमपानके लिये आओ हम प्रार्थना करते हैं ॥

अथ धर्मपूजा,

यजुर्वेद अध्याय २ मंत्र १८ ।

ॐ अग्ने सपत्न दम्भनं मदब्धासोअदाभ्यम् । चित्रावसो स्वस्तिते पारमशीय ॥ धर्मायनमः ॥ इतिपू० ॥

भा० टी०—(अग्ने सपत्न०) हे भगवन् अग्निदेव ! तुम शत्रुओंको नाश करनेवाले हमारेको न हिंसन करते हमारी वृद्धि करे । हे चित्रावसो ! हे रात्रि ! न नाश होनेवाली कल्याण देवे । " रात्रिर्वै चित्रावसुरिति " श्रुतिः । और तुम्हारे पारको सुखपूर्वक प्राप्त होया करे ॥

अथ यमपूजा.

शु० यजु० अध्याय० २९ मंत्र १४ ।

ॐ असियमो अस्यादित्यो अर्वन्नसित्रितोगुह्येन व्रतेन । असिसोमेन समयाविपृक्त आहुस्तेत्रीणिदिवि बन्धनानि ॥ इति यमपूजा दक्षिणे कार्या ॥

अथ नवग्रहपूजा.

शु० यजु० अध्याय ३४ मंत्र ३१ ।

ॐ आकृष्णेन रजसावर्तमानो निवे

शयन्नमृतम्मर्त्यञ्च ॥ हिरण्ययेन सविता रथे नादेवोयाति भुवनानि पश्यन् ॥ ॐ सूर्याय नमः । इति सूर्यं पूजयेत् ॥

भा० टी०-(आकृष्णेनेति) सूर्य देव रात्रिरूप रजसे वर्तमान वारंवार भ्रमण करता तथा अपने २ स्थानमें देवताओंको अमृत मनुष्यादिकोंको अन्न देता हुआ सुवर्णके रथसे १४ भुवनोंको देखता भया और आरोग्य देता भया फिरता है उदय होता है ।

शुक्लयजु० अध्याय १० मंत्र १८ ।

इमं देवाऽअसपत्नꣳ सुवद्ध्वम्महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय इमममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विशऽएष वोमीराजा सोमोस्माकम्ब्राह्मणानाꣳ राजा ॥ ॐ सोमाय नमः इति पू० ॥

भा० टी०-(इमं देवा०) देवाः दानादिति हे दानशील पुरुषो ! तुम इस चंद्रमाको शूरवीरताके लिये ज्येष्ठता राज्य ऐश्वर्यादिके लिये अमुक पुत्र इसकी सेवा करो यह चंद्रमा

हम ब्राह्मणोंका राजा है । श्रौतार्थमें हे देवताओ ! यह संबंध करना ॥

शुक्लयजु० अध्याय ३ मंत्र १२ ।

अग्निर्म्मूर्द्धादिवः ककुत्पतिः पृथिव्या ऽअयम् ॥ अपाᳬ रेताᳬ सि जिन्वति ॥ ॐ अंगारकाय० इति पूति पू० ॥

भा० टी०—(अग्निर्मूर्द्धा) हे अग्निस्वरूप वा अग्नितत्त्वमंगल देव ! स्वर्ग आकाशमें सूर्यरूप होकर मूर्द्धवर्ति हो और ककुत् बडे तेजस्वी और पृथिवीके पुत्र हो और तुमही जल वृष्टि रेतोत्पत्तिमें कारण है । श्रौतार्थमें अग्निस्तुतिमें विनियुक्त है प्रमाण बृहज्जातके " शिखीभूखपयोमरुद्गणानां वशिनो भूमिसुतादयः क्रमेण " ॥

यजु० अध्याय १५ मंत्र ३ ।

उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्ते सᳬ सृजेथामयञ्च ॥ अस्मिन्त्सधस्थे ऽअध्युत्तरस्मिन्विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥ ॐ बुधाय नमः ॥ इ० पू० ।

भा० टी०—(उद्बुध्यस्व०) हे बुधदेव ! अग्निवत् प्रकाशमान आप प्रसन्न होके आपकी प्रसन्नतासे यह यजमान इष्ट

मनोरथको प्राप्त होवे और इस लोकमें ऐश्वर्यादि भोग उत्तर-लोकमें देवताओंके साथ निवास करे यह हम प्रार्थना करते हैं श्रोतमें अग्नि ॥

यजु० अध्याय २६ मंत्र ३ ।

बृहस्पतेऽअतियदर्य्योऽअर्हाद्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु ॥ यद्दीदयुच्छवसऽऋतप्रजाततदस्मासु द्रविणन्धेहिचित्रम् ॥ ॐ बृह-स्पतये नमः इ० ॥

भा० टी०–(बृहस्पते०) हे बृहस्पति देव ! अतिशयसे धन अर्थ स्वामिता अर्ह पूजा यज्ञ करनेवाले पुरुषमें धारण करे और बलसे जो रक्षा करनेवाले तथा सत्यसे हैं उत्पत्ति जिनकी वा सत्य प्रजावाले पुरुषोंको अनेक प्रकार चित्र विचित्र धन देवे यह प्रार्थना करते हैं ॥

यजु० अध्याय १९ मंत्र ७५ ।

ॐ अन्नात्परिस्रुतो रसम्ब्रह्मणाव्यपिबत्क्षत्रम्पयः सोमम्प्रजापतिः ऋतेनसत्यमिन्द्रियविपानᳬ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदम्पयोमृतम्मधु ॥ ॐ शुक्राय नमः इति० ॥

भा० टी०-(अन्नात्परिस्रुतो०) हवि लक्षणरूप अन्नका परिस्रुत रस त्रयी लक्षण ब्रह्मसे व्याप्त और क्षत्रसे व्याप्त सोम प्रजापतिसंबंधि पय इस सत्यसे युक्त इन्द्रकी इंद्रिय अन्न यह शुक्रजीके संबंधसे युक्त हो यह प्रार्थना करते हैं ॥

यजु० अध्याय ३६ मंत्र १२ ।

शन्नो॑ दे॒वीर॒भिष्ट॑यऽआपो॑ भवन्तु पी॒तये॑ शँय्योर॒भिस्र॑वन्तु नः ॐ शनैश्चराय नमः ॥ इति पूजयेत् ॥

भा० टी०-(शन्नोदेवी०) सुखरूप हमारे कल्याणकारक देवस्वरूप रोगके विनाशके लिये भयके दूर करनेके वास्ते शनिदेवकी स्तुति और प्रार्थना करते हैं। श्रौतमें वरुणसंबंधी स्तुत्यमन्त्र है ॥

यजु० अध्याय १९ मंत्र ३९ ।

कया॑ नश्चि॒त्रऽआभु॑वदू॒ती स॒दावृ॑धः॒ सखा॑ । कया॒ शचि॑ष्ठया वृ॒ता ॥ ॐ राहवे नमः इति पूजयेत ॥

भा० टी०-(कयानश्चित्र०) हे राहु देव ! किस आन-

१ यह मैंने उवटभाष्यसे संक्षिप्त अर्थ लिखा है विशेष अर्थ ब्राह्मणसर्वस्वसे आगे लिखा देख लेंगे।

तुम हमारेको आनंद करते हैं और किससे हमारेको धन देते हैं वह हम उपाय करें । पूजा इति शेषः । श्रौतमें इंद्र ॥

यजु० अध्याय २९ मंत्र ३ ।

केतुङ्कृण्वन्नकेतवे पेशोमर्य्याऽ अपेशसे ॥ समुषद्भिरजायथाः ॥ ॐ केतवे नमः ॥ इति पूजयेत् ॥

ॐ ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरांतकारी भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च । गुरुश्च शुक्रः शनिराहुकेतवः सर्वे ग्रहाः शांतिकरा भवन्तु ॥ इति नवग्रहपूजा ॥ त्र्यंबकं यजामहे इति त्र्यंबकपूजनम् ॥ अथ कुशकण्डिकाप्रारम्भः ॥ ततो होमार्थं चतुरंगुलोच्छ्रितहस्तमात्रपरिमितां वेदीं कुर्यात् कुशैः परिसमुह्य तान् कुशान् ऐशान्यां परित्यज्य गोमयोदकेनोपलिप्य खादिरेण स्रुवेण चोल्लेखनं हस्तेनोद्धरणं जलेनाभ्युक्षणं कांस्यपात्रयुगलेन लौकिकं निर्मथितं वाग्निमानीय स्थापयेत् । ततः पुष्पचंदनतांबूलवासांस्यादाय ॥ ॐ अद्य कर्तव्यामुकशान्तिहोमकर्मणि कृताकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्मकर्तुममुकगोत्रममुकश-

र्माणमेभिः पुष्पचंदनतांबूलवासोभिर्ब्रह्मत्वेनत्वामहं वृणे इति ब्राह्मणं वृणुयात् । ॐ वृतोस्मीति प्रतिवचनम् । तथाविहितं कर्म कुर्वित्याचार्येणोक्ते करवाणीति प्रतिवचनम् । ततोऽग्नेर्दक्षिणतः शुद्धमासनं दत्त्वा तदुपरि प्रागग्रान्कुशानादायास्तीर्य्य अग्निप्रदक्षिणं कारयित्वाऽस्मिन्कर्माणि त्वं मे ब्रह्मा भवेत्यभिधाय भवानीति तेनोक्ते तदुपरि ब्रह्माणमुदङ्मुखमुपवेश्य प्रणीतापात्रं पुरतः कृत्वा वारिणा परिपूर्य्य कुशैराच्छाद्य ब्रह्मणो मुखमवलोक्याग्नेरुत्तरतः कुशोपरि निदध्यात् । ततः परिस्तरणम् । बर्हिषश्चतुर्थभागमादायाग्नेरीशानांतं ब्रह्मणोऽग्निपर्यन्तं नैर्ऋत्यादायव्यान्तं अग्नितः प्रणीतापर्यंतं ततोग्नेरुत्तरतः पश्चिमदिशि पवित्रच्छेदनार्थं कुशत्रयं पवित्रकरणार्थं साग्रमनन्तर्गर्भकुशपत्रद्वयं प्रोक्षणीपात्रं आज्यस्थालीसंमार्जनार्थं कुशत्रयं उपयमनार्थं वेणीरूपकुशत्रयं समिधस्तिस्रः स्रुवः आज्यं षट्पंचाशदुत्तराचार्यमुष्टिशतद्वयावच्छिन्नामतण्डुलपूर्णपात्रं ततः पवित्रच्छेदनकुशैः पवित्रे छित्त्वा सपवित्रकरेण प्रणीतोदकं

त्रिः प्रोक्षणीपात्रे निधाय अनामिकांगुष्ठाभ्यां पवित्रे उत्तराग्रे गृहीत्वा त्रिरुत्पवनं प्रोक्षणीपात्रं वामकरेणादाय । अनामिकांगुष्ठाभ्यां गृहीतपवित्राभ्यां तज्जलं किंचित्त्रिरुत्क्षिप्य प्रणीतोदकेन प्रोक्षणीमभिषिच्य प्रोक्षणीजलेनासादितवस्तुसेचनं कृत्वाग्निप्रणीतयोर्मध्ये प्रोक्षणीपात्रं निदध्यात् आज्यस्थाल्यामाज्यं निरूप्याधिश्रयणं ततः कुशं प्रज्वाल्याज्योपरि प्रदक्षिणं भ्रामयित्वा वह्नौ तत्प्रक्षिप्य स्रुवं त्रिः प्रताप्य सम्मार्जनकुशानामग्रैरंतरतो मूलैर्बाह्यतः स्रुवं संमृज्य प्रणीतोदकेनाभ्युक्ष्य पुनस्त्रिः प्रताप्य दक्षिणतो निदध्यात् आज्यस्याग्नेरवतारणं तत आज्यं प्रोक्षणीवदुत्पूयावेक्ष्य सत्यपद्रव्ये तन्निरसनं कृत्वा पुनः प्रोक्षणीमुत्पूय तत उत्थायोपयमनकुशानादाय महस्ते कृत्वा प्रजापतिं मनसा ध्यात्वा तूष्णीमग्नौ घृताक्ताः समिधस्तिस्रः क्षिपेत् ॥ उपविश्य सपवित्रप्रोक्षण्युदकेन प्रदक्षिणक्रमेणाग्निं पर्युक्ष्य प्रणीतापात्रे पवित्रे निधाय पातितदक्षिणजानुः कुशेन ब्रह्मणान्वारब्धः समिद्धतमेऽग्नौ स्रुवेणाज्याहुतीर्जुहोति ।

तत्तदाहुत्यनंतरं स्रुवावस्थितघृतशेषस्य प्रोक्षणीपात्रे प्रवेशः । अथ स्रुवपूजनम् ॥ ॐ आवाहयाम्यहं देवं स्रुवं शेवधिमुत्तमम् । स्वाहाकारस्वधाकारवषट्कार-समन्वितम् ॥ अष्टांगुलं त्यजेन्मूलमग्रे त्यक्त्वा दशांगुलम् । कर्तव्यं गोपदाकारं दंडस्याग्रे तु कंकणम् ॥ विष्णोः स्थानं प्रगृह्णीयाद्धूयते च हुताशनम् । पद्मयोनिं समादाय होता सुखमवाप्नुयात् ॥ इति स्रुवपूजनम् ॥

भा० टी०–कुशकुंडिका आगे विवाहमें स्पष्टार्थ लिखी है । इसलिये महाशयोंको उचित है कि विवाहप्रकरणमें देखे । और स्रुवको हस्तमें कंकण बंधकर पूजन करना ॥

अथ घृताहुतिः ॥ ॐ प्रजापतये स्वाहा इदं प्रजापतये इति मनसा ॥ ॐ इन्द्राय स्वाहा इदमिंद्राय० इत्याघारौ ॥ ॐ अग्नये स्वाहा इदमग्नये० ॥ ॐ सोमाय स्वाहा इदं सोमाय० । इत्याज्यभागौ ॥ ॐ भूः स्वाहा इदं भूः । ॐ भुवः स्वाहा इदं भुवः । ॐ स्वः स्वाहा इदं स्वः । एता महाव्याहृतयः ॥

यजु० अध्याय २१ मंत्र ३ ।

ॐ त्वन्नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्देव

स्यहेडोऽअवयासिसीष्ठाः । याजिष्ठो वह्नि-
तमःशोशुचानो विश्वाद्वेषांसिप्रमु-
मुग्ध्यस्मत्स्वाहा ॥ इदमग्नी वरुणाभ्यां० ॥

यजु० अध्याय २१ मंत्र ४ ।

ॐ सत्वन्नोऽअग्नेवमोभवोतीनेदि-
ष्ठोऽअस्याऽउषसोव्युष्टौ ॥ अवय-
क्ष्वनो वरुणᳬरराणोवीहिमृडीकᳬसुहवो
नएधिस्वाहा ॥ इदमग्नये० ॥

पा० गृह्यसूत्रे ।

ॐ अयाश्चाग्नेस्यनभिशस्तिपाश्चसत्वमि
त्वमयाअसि ॥ अयानोयज्ञं वहास्युयानो
धेहिभेषजᳬस्वाहा ॥ इदमग्नये० ॥

पा० गृह्यसूत्रे ।

ॐ येतेशतंवरुणयेसहस्रंयज्ञियाः पाशा
वितता महान्तः । तेभिर्नोअद्यसवितोत
विष्णुर्विश्वेमुंचन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा ।

इदं वरुणायसवित्रे विष्णवेविश्वेभ्योदेवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः० ॥

यजुर्वेद अध्याय २१ मंत्र १२।

ॐ उदुत्तमं वरुणपाशमस्मदवाधमंविमध्यम ऽ श्रथाय। अथावयमादित्यव्रते तवानागसोऽअदितयेस्यामस्वाहा

इदं वरुणाय०। एताः सर्वप्रायश्चित्तसंज्ञकाः॥ ॐ गणपतये स्वाहा इदं गणपतये०। ॐ विष्णवे स्वाहा इदं विष्णवे०। ॐ शम्भवे स्वाहा इदं शम्भवे०। ॐ लक्ष्म्यै स्वाहा इदं लक्ष्म्यै०। ॐ सरस्वत्यै स्वाहा इदं सरस्वत्यै०। ॐ भूम्यै स्वाहा इदं भूम्यै०। ॐ सूर्याय स्वाहा इदं सूर्याय०। ॐ चंद्रमसे स्वाहा इदं चंद्रमसे०। ॐ भौमाय स्वाहा इदं भौ०। ॐ बुधाय स्वाहा इदं बुधाय०। ॐ बृहस्पतये स्वाहा इदं बृहस्पतये। ॐ शुक्राय स्वाहा इदं शुक्राय०। ॐ शनैश्चराय स्वाहा इदं शनैश्चराय०। ॐ राहवे स्वाहा इदं राहवे०। ॐ

केतवे स्वाहा इदं केतवे० । ॐ व्युष्ट्यै स्वाहा इदं व्युष्ट्यै० । ॐ उग्राय स्वाहा इदमुग्राय० । ॐ शतक्रतवे स्वाहा इदं शतक्रतवे० । ॐ प्रजापतये स्वाहा इदं प्रजापतये० । इति मनसा प्राजापत्यं ॥ ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा इदमग्नये स्विष्टकृते० । स्विष्टकृद्धोमः । ततः संस्रवप्राशनं आचमनं ततो ब्रह्मणे दक्षिणादानम् ॥

भा० टी०—त्वन्नोअग्ने १, सत्वन्नो अग्ने २, ये ते शतं ३, अयाश्चाग्ने ४, उदुत्तमं ५ यह पांच मंत्रोंका विवाहकी कुशकंडिकाके अन्तमें अर्थ लिखा है इसलिये पुनः पिष्टपेषण नहीं करते । और आगेके नामोक्त मंत्र २१ हैं इनमें सूर्यादि नव हैं । और प्रजापतये स्वाहा यह मंत्र मनमें उच्चारण करना और सर्व स्पष्ट मुखसे उच्चारण करने ॥

ॐ अद्य एतस्मिन् शांतिहोमकर्मणि कृताकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्मप्रतिष्ठार्थमिदं पात्रं प्रजापतिदैवतं अमुकगोत्रायामुकशर्मणे ब्रह्मणे दक्षिणां दातुमहमुत्सृजे॥ ॐ स्वस्तीति प्रतिवचनम् । ततो ब्रह्मग्रंथिविमोकः ॥ ततः ॐ सुमित्रियानऽआपऽओषधयः संतु

इति पवित्राभ्यां जलमानीय तेन शिर सम्मृज्य ॐ दुर्म्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यञ्च वयं द्विष्मः ॥ इत्यैशान्यां प्रणीतान्युब्जीकरणम् ॥

मा० टी०—आज इस शांतिके होमरूप कर्ममें करना वा न करना इसकी परीक्षारूप ब्रह्माके कर्मकी प्रतिष्ठाके लिये यह पूर्णपात्र प्रजापतिसंबंधी अमुक गोत्र ब्राह्मणको दक्षिणा देनेके लिये देता हूं। स्वस्ति ब्राह्मण कहे । कुशनिर्मित ब्रह्माकी ग्रन्थि खोल देनी । विवाहप्रकरणमें ब्रह्मादिकोंका लक्षण लिखा है ॥ "९० पञ्चाशतो भवेद्ब्रह्मा" इत्यादि । और दुर्मित्रिया १ दुर्मित्रिया २ इन दोनों मंत्रोंका अर्थभी स्पष्ट विवाहप्रकरणमें लिखा है ॥

ततः स्तरणक्रमेण बर्हिरुत्थाप्य घृतेनाभिघार्य हस्तेनैव जुहुयात् ॥

यजु० अ० ८ । मं० २१ ।

ॐ देवांगातुविदोगातुम्वित्वागातुमिं-तुमनंसस्पतऽइमंदेवयज्ञ ᳪ स्वाहावातेधाः स्वाहा ॥

इति बर्हिर्होमः। तत आचारात् दशदिक्पालेभ्यो दधिमाषबलिर्देयः क्षेत्रपालबलिदानं च ॥ ततः स्थालीपाकादिपक्वान्नेन गणपतिप्रमुखसूर्यादिग्रहेभ्यस्तत्तन्मंत्रैर्बलिर्देयः ततो ब्राह्मणभोजनम् ॥

भा०टी०—स्तरणक्रमसे कुशा ग्रहण कर घृत लगाय हाथसे हवन करे। 'देवागातु' इस मन्त्रसे। इसका अर्थ विवाहप्रकरणमें लिखा है फिर आचारसे दश दिक्पालोंको दधियुक्त माषोंकी बलि देनी दश दिक्पाल ये हैं। इंद्र १, वह्नि २, धर्मराज ३, नैर्ऋत, ४ वरुण ५, मरुत ६, कुबेर ७, ईश ८ और पृथिवी आकाशका स्वामी २। यह १० अनंतर स्थालीपाकसे पके हुए पकान्नसे श्रीगणेशजीसे आदि सूर्यादि नवग्रह ओंकार सर्प योगिनी अर्थात् जो २ पीछे स्थापन करे हैं उन्होंके मंत्रोंसे सबको बलिदान करना ॥

ॐ अद्य करिष्यमाणब्राह्मणभोजनसांगतासिद्ध्यर्थमिदं दक्षिणाद्रव्यं तेभ्यो विभज्य दातुमहमुत्सृज ततो गुरवे दक्षिणा देया ॥ ततः छायापात्रदानं तदनंतरं पूर्णाहुतिः तद्यथा स्रुवेण पूगीफलादिकं गृहीत्वा ॥

यजु० अध्याय ७ मंत्र २४ ।

ॐ मूर्द्धानन्दिवोऽअरतिम्पृथिव्यावैश्वानरऽमृतऽआजातमग्निम् । कविᳬसम्म्राजमतिथिञ्जनानामासन्ना पात्रञ्जनयन्त देवाः स्वाहा ॥

ततः स्रुवेण भस्मानीय दक्षिणानामिकागृहीतभस्मना ॐ त्र्यायुषं जमदग्नेः । इति ललाटे । ॐ कश्यपस्य त्र्यायुषम् । इति ग्रीवायां । ॐ यद्देवेषु त्र्यायुषम् । इति दक्षिणबाहुमूले । ॐ तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् । इति हृदि ।

भा० टी०—प्रथम संकल्प ब्राह्मणोंकी दक्षिणाका है । पीछे छायापात्र दान करना अनंतर फल पुष्प स्रुवमें स्थित घृतसे 'मूर्द्धानं' इस मंत्रसे पूर्णाहुति करनी । इस मन्त्रका अर्थ विवाहप्रकरणमें लिखा है ॥

यजमानपक्षे तन्नो इत्यस्य स्थाने तत्ते इति विशेषः । ततोऽभिषेकः । तच्चाम्रपल्लवकुशादिकेन कलशस्थजलमानीय आपोहिष्ठेत्या-

दिमंत्रेण यजमानमभिषिंचेत ॥ आचार्यादीनां दक्षिणा देया । ततो भूयसीं दद्यात् । ॐ आज्येन वर्द्धते बुद्धिराज्येन वर्द्धते यशः । आज्येन वर्द्धते आयुर्दर्शनं पापनाशनम् ॥ अथ विशेषपूजा ॥ ग्रहा गावो नरेंद्राश्च ब्राह्मणाश्च विशेषतः ॥ पूजिताः प्रतिपूज्यंते सावधाना भवन्तु ते । अथ अग्निविसर्जनम् ॥ गच्छ गच्छ सुरश्रेष्ठ स्वस्थानं परमेश्वर । यत्र ब्रह्मादयो देवास्तत्र गच्छ हुताशन ॥

भा० टी०—घृतसे बुद्धि बल यश आयु वृद्धिको प्राप्त होती है और पाप नष्ट होते हैं । आयुवृद्धिमें प्रमाण भावप्रकाश चिकित्साशास्त्रमें जैसे 'स्वमाननं ने पश्येद्यदीच्छेच्चिरजीवितुम्' ग्रह गौ ब्राह्मण राजा यह पूजन किये हुए विशेष फल देते हैं । 'गच्छ' इस मंत्रसे अग्निका विसर्जन करना ॥

आगतास्तु यथान्यायं पूजितास्तु यथाविधि । कृत्वा कृपां मयि देवा यत्रासंस्तत्र गच्छत ॥ यजमानहितार्थाय पुनरागमनाय च । शत्रूणां बुद्धिनाशाय मित्राणामुदयाय च ॥ यथा शस्त्रप्रहाराणां कवचं वारणं भवेत् । तद्वदेवा-

भिघातानां शांतिर्भवति वारणम् ॥ अथ ग्रहादीनां विसर्जनम् ॥ यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय मामकीम् । यजमानहितार्थाय पुनरागमनाय च ॥

ऋ० प्र० अष्टक अ १ मं० १ ।

ॐ अग्निमीळेपुरोहितंयज्ञस्यदेवमृत्विजं । होतांरंरत्नधातमम् ॥

भा० टी०–भली भांति आये हुए और पूजन किये हुए मुझपर कृपा कर अपने २ स्थानको देवगण सिधारें यजमानकी कुशलताके लिये तथा फिर आनेके लिये। जैसे खड्गादि शस्त्रोंके प्रहारसे रक्षा करनेवाला कवच (संजोया) होता है. तद्वत् संपूर्ण विघ्नोंके दूर करनेके लिये शांति है । 'अग्निमीळे' यह मन्त्र ऋग्वेदके आदिका है ।

ॐ विष्णुस्तत्सदद्यामुकगोत्रोहममुकशर्माहं इदं सामिषं घृतपक्कं विष्णुदेवतं भगवद्विष्णुप्रीतये यथानामगोत्राय ब्राह्मणायाहं ददे । ॐ अद्य कृतैतत्समिषघृतपक्कदानप्रतिष्ठासांगतासिद्ध्यर्थं विष्णुप्रीतये यथानामगोत्रब्राह्मणाय दक्षिणां दातुमहमुत्सृजे । ॐ अद्य

तत्सद्विवाहांगत्वेनेदमिष्टघृतपक्वं विष्णुदैवत-कुलदेवताप्रीतये सौभाग्यताप्राप्तये यथाना-मगोत्राय ब्राह्मणायाहं ददे । इति कन्यापक्षे ततः सुपूजितं कंकणबंधनं ततस्तिलकं कुर्यात् । तदनंतरं सूर्यायार्घ्यदानम् ॥ इति श्रीकात्यायनीशान्तिः समाप्ता ॥

भा० टी०—अमुक गोत्र ब्राह्मणको विष्णुप्रीतिके लिये घृतपक्व अन्न देता हूं और इसकी प्रतिष्ठाके लिये दक्षिणा देता हूं । कन्यापक्षमें सौभाग्यताके लिये यह पद कहना । फिर पूजन कर कंकण बंधना तिलक करना ॥

अथ शांतिसामग्री ।

मौली, गोला, पंचरंग, आटा, चावल, गुड, केशर, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, तांबूल, सुपारी ७, पतासे, मट्टिया, घुंगनिया, दालां ७, घृत, तैल, कुशा, स्रुव, पलाश समिधा, पटडी, यव, तिल, गोमय, बटना, कंकण, रेत, पत्र, ग्रहजप । इति ॥

इति श्रीकर्पूरस्थलनिवासिगौतमगोत्र (शौरि) अन्वयालं-कृतश्री अपारमहिमा० पं० घनैयारामसत्पुत्रवैकुण्ठपीठाधिष्ठित-श्रीतुलसीरामतत्पुत्रश्रीसकलजनवंद्यदैवज्ञदुनिचन्द्रतदात्मजशौ-र्यौदार्यधैर्याद्यालंकृताधीतवेदवेदांगधर्मशास्त्रादिश्रीपाण्डितावि-ष्णुदत्तवैदिककृतकात्यायनीशांतिटीका आद्रिवेदांकभूमिते १९४७ वैक्रमे माधवे मासि कृष्णदशम्यां चंद्रवासरे समाप्तिमगात् ॥

इति तृतीयं प्रकरणं समाप्तम् ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थप्रकरणम् ।

ॐ स्वस्ति श्रीगणेशाय नमः ॥ ॐ वेदपुरुषाय नमः ॥ श्रीः ॥ अथ विवाहसामग्री लिख्यते ॥ आटा, गुड, चावल, मौली, गेला. केशर, पुष्प. नैवेद्य, मेवा, धूप, दीपअटे ७. सुपारिया ११, दूर्वा, चंदन, पुष्पमाला २, आम्रकेपत्र १००, पटडीया २, वेद १, चंदोया १, खागे २. वा चौकिया २, घृत, प्रणीतापात्र. प्रोक्षणीपात्र, कांस्यपात्र २, मधुपर्क, गौका दुग्ध, दधि, घृत. शहत. नालिकेर १, धोती, उपर्णा बालकन्. अर्घचौल, अंट्ट २ सिंधूरा. शूर्प १. लाजा अर्धशेर, जंडीके पत्र, शण, शंख, सुवर्ण, वांडे थानके २, पूर्णपात्र १, चावल अभिषेकके लिये गागर वा कुंभ वा कोरी १, समिधा पलाश वा वेरीकी १०, सेर वटना, शिलावट्टा, शर्करा, वहारी १, मालगिरा ५, पर्णा १, कुशा, समवस्त्र गज ४, स्रुवा १, आसन २, अर्धा हलपजाली, मटिया ५ इति । अथ चतुर्थ दिनमें चतुर्थीकर्मकी सामग्री लिख्यते । आटा, गुड, मौली, चावल, केसर, धूप, दीप, नैवेद्य, सुपारिया ५, दूर्वा, आम्रपत्र १०, पटडीया २, चंदोया १, घृत, प्रणीता, प्रोक्षणी, अर्धचावल, पृथूदकपात्र, कुनाली १, हलपजाली, गोदुग्ध अर्धसेर, चावलपूर्णपात्र १, वस्त्रगज २०, सिंदूडांगा ४, शण, शंख, सुवर्ण, रेत, स्रुवा, कुशा, समिधा, चरुस्थाली इति चतुर्थीकर्मसामग्री ॥

१ अथ कन्योद्वाहे यजमानकर्तृकप्रतिज्ञासंकल्पः ।

ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः अद्य ब्रह्मणो द्वितीयपरार्द्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतिमे युगे कलियुगे प्रथमचरणे अमुकसंवत्सरेऽमुकगोलेऽमुकायनेऽमुकपक्षेऽमुकमासेऽमुकतिथौ नक्षत्रकरणयोगयुक्तेऽमुकवासरे अमुकगोत्रोत्पन्नोऽहं जन्मनामतः प्रसिद्धनामतश्चामुकशर्माहं कृतकायिकवाचिकमानसिकसांसर्गिकज्ञानाज्ञातसमस्तदोषपरिहारार्थं श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तफलावाप्तिकामः श्रीयज्ञपुरुषनारायणप्रीत्यर्थं तत्प्रसादात्कायवाङ्मनोभिर्महापातकादिदोषनिवृत्तिपूर्वकैहिकामुष्मिकेश्वरप्रसादानुरूपविभवयोगक्षेमप्राप्तये च अश्वमेधपुण्यजनकताकपुत्रीविवाहात्मकदानमहं करिष्ये तन्निर्विघ्नतासिद्धये यथोपलब्धोपचारद्रव्यैः गणपत्यादिनवग्रहपूजनमहं करिष्ये इति ॥ पश्चात् गणेशादिपूजनं कुर्यात् ॥

२. अथ यजमानकर्तृकशुभ्रचौलाधौतीपर्णानां दानसंकल्पः ।

अद्येत्यादि० पुत्रीविवाहकर्म्मणि कन्यादान-प्रतिपत्त्यर्थमादाविमानि चतुष्टयवस्त्राणि प-ट्टकापांसादिसंपादितानि मांजिष्ठारिष्टादिना-नारंजितानि बृहस्पतिदेवतानि कन्यावरयो-र्वैवाहिकसमये परिधानयोग्यानि सदक्षिणानि अमुकगोत्रप्रवराया ऽमुकनामशर्मणे विष्णु-रूपिणे वराय तुभ्यमहं संप्रपदे ॥ इति शुभ्रचौलादिदानम् ॥

३ अथ कन्यापितृकर्तृकवेदीदानसंकल्पः ।

ॐ तत्सदद्येति० नानारागानुरूपयज्ञाधिष्ठा-तृपरमेश्वरादिविशेषणवतो भगवतः प्रीत्यर्थं तत्प्रसादात् याज्ञिकभूमिदानजन्यनानास्व-र्गादिफलप्राप्तये इमानि रजतमुद्रिकानि चंद्र-देवतानि सदक्षिणानि कन्यावैवाहिकचतुष्टय-वंशनिर्मितस्तंभवेदिकान्तरभूमिप्रतिनिध्या-त्मकानि यथा नामगोत्राय० इति वेदीदान-संकल्पः ॥

४ अथ यजमानकर्तृकचतुर्थीदानसंकल्पः।

ॐ अद्येत्यादि० कृतैतत्पुत्रीविवाहचतुर्थीकर्मप्रतिष्ठार्थं सांगतासिद्ध्यर्थं चेमां रजतमुद्रिकां दक्षिणां चंद्रदेवतां अमुकगोत्राय अमुकशर्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यमहं संप्रददे० स्वस्तीति प्रतिवचनं सर्वत्र० इति चतुर्थीदानम्॥

५ अथ यजमानकर्तृकउपाध्यायदक्षिणासंकल्पः।

ॐ अद्येत्यादि० कृतैतदग्निष्टोमादिकृतसमपुत्रविवाहयोगमंत्रोच्चारणादिकर्तव्यताकर्म्मप्रतिष्ठार्थं साङ्गतासिद्ध्यर्थं चेदं द्रव्यं रजतं चंद्रदैवतं अमुकगोत्रायाऽमुकशर्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यमहं संप्रददे॥

६ अथ यजमानकर्तृककन्यायज्ञान्ते अन्नदानभूरिद्रव्यदानसंकल्पः।

ॐ अद्येत्यादि० श्रीयज्ञपुरुषपरमेश्वरप्रीत्यर्थं तत्प्रसादादवगताऽनवगतसकलदुरितोपदुरितशमनपुरस्सराक्षयफलावाप्तये च वरवध्वोः पूर्णायुरादिसुखसंपत्तिसिद्धये प्राजाप-

तिकं दास्यमानान्नं तथा भूरि द्रव्य ताम्रं वा रजतं सूर्यदैवतं वा चंद्रदैवतं सदक्षिणं यथा २ नामगोत्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो विभज्य दातुमहमुत्सृजे ॥ इति कन्यापितृकर्तृकनानाद्रव्यदानसंकल्पः ॥

७ अथ बालककर्तृकविवाहप्रतिज्ञासंकल्पः ।

ॐ तत्सदद्येति० जन्मलग्नतो वर्षलग्नतश्च तथा वैवाहिकलग्नतः खेटावेदतानिष्टफलानिरसनोत्तरेष्टफलप्राप्तिपुरस्सरसकलकर्मसिद्ध्यर्थं गार्हस्थ्यनानाकर्माधिष्ठानात्मकस्वविवाहकर्माहं करिष्ये० तदंगत्वेन तन्निर्विघ्नतासिद्ध्यर्थं आदौ गणपत्यादिनवग्रहपूजनमहं करिष्ये ॥ इति ॥

८ अथ पत्नीप्रतिग्रहगोदानसंकल्पः ।

ॐ तत्सदद्येत्यादि० श्रौतस्मार्तवैदिकेतिहासपुराणोक्तफलावाप्तिकामः श्रीपरमेश्वरनारायणादिविशेषणविशिष्टभगवत्प्रीत्यर्थं तत्प्रसादात जन्मराशितो नामाराशितश्च जन्मलग्नतो वर्षलग्नतश्च जन्यजननजानि-

ष्यमाणात्मकदोष ८ त्रयनिरसनोत्तरजन्मलग्नतो विवाहलग्नतश्चानिष्टखेटावेदिताशुभदुरितकर्मनिवृत्तये पत्नीपाणिग्रहणजन्यप्रतिग्रहविशेषताकपुरस्सरभार्यात्रिवर्गकरणमित्यनेन प्रतिपादितधर्मार्थकामप्रतिपत्तये चेमां गां सुवर्ण रजतवस्त्रैः यथाशक्त्यलंकृतां कांस्यदोहोपयुक्तां सवत्सां मुक्तालांगूलभूषितां सुशीलां रुद्रदैवतां अमुकगोत्राय अमुकशर्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यमहं संप्रददे ॥ अथ दक्षिणासंकल्पः ॥ ॐ अद्य कृतैतत् गोदानप्रतिष्ठार्थमिदं द्रव्यं रजतं वा सुवर्णं चंद्रदैवतं वा अग्निदैवतं यथानामगोत्रायत्यादि ॥

९ गोदानाभावे दक्षिणादानसंकल्पः ।

ॐ अद्येत्यादि सर्वं पूर्ववत्० इमां गां इत्यस्य स्थाने गोदानप्रतिनिधिभूतमिदं द्रव्यं अमुकदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय तुभ्यमहं संप्रददे दक्षिणा पूर्ववत् ॥

१० अथ उपाध्यायदक्षिणादानसंकल्पः ।

ॐ अद्येत्यादि० गतानवगतसकलदुरितोपदुरितक्षयपुरस्सरसकलत्रस्वशरीरकल्याणोत्तरपूर्णायुरा-

दिसुखसंप्राप्तिसिद्धिकामः कृतेन जन्मादिदशसंस्का-
रांतर्गतस्वविवाहान्मकमहत्संस्कारमन्त्रोच्चारणकार-
यितव्यकर्तव्यताककर्मप्रतिष्ठार्थं च सांगतासि-
द्ध्यर्थमिमाममुकद्रव्यमयीमुपाध्यायदक्षिणां अमु-
दैवतां यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणां दातुमह-
मुत्सृजे ॥ इति ॥

११ अथ विवाहे यजमानकर्तृवस्त्रादानसंकल्पः ।

तत्र कन्यापिता सपत्नीकः कृतनित्यक्रियः कृमि-
जवस्त्रपरिधानपूर्वकोत्तराभिमुखः आदौ गोधूमचू-
र्णेन गणपत्यादीन्विधाय स्वस्तिवाचनपूर्वकं प्रतिज्ञा-
संकल्पं कुर्यात ॐ तत्सदद्येत्यादिदेशकालपूर्वकं०
श्रुतिस्मृत्याद्युक्तफलावाप्तिपुरस्सरावगतानवगतस
कलदुरितमहापातकक्षयानन्तरज्ञाताज्ञातकृतकाय-
वाङ्मनःकृतसमस्तपातकोपपातकजन्मत्रयोपार्जि-
तपापक्षयकामः राजद्वारतो व्यवहारतश्च सुप्रतिष्ठि-
तैश्वर्यसुखाप्तये च श्रीमद्भगवच्चरणारविंदप्रीतिजनक
कन्यादेहरोमसमसंख्याकल्पावच्छिन्नस्वर्गलोकवास
जनककन्योद्वाहांगभूतविचित्रवर्णवस्त्राद्याभरणरीति

कांस्यलोहपैत्तलत्रपुसीसकमाषपिष्टपक्वान्नरजतसुव र्णरूप्याद्यनेकभूषणनाम्राद्यनेकद्रव्ययुक्तखट्वादान-महं करिष्ये ॥ ततः दक्षिणाशिरसमुत्तरपादां तूल-कोपधानादिपुरस्कृतां वस्त्राभरणपात्राद्यलंकृतां खट्वां वरकन्यारोहणपूर्वकां पूर्वदिक्पार्श्वे रक्तसू-त्रोपबद्धां कन्यापिता पत्न्या सह ग्रंथिबंधनं कृत्वा खड्गातंतुगंधाक्षतपुष्पजलैःसंकल्पं कुर्यात् । १२अथ ॐतत्सदद्येत्यादि देशकालौसंकीर्त्य०श्रुति स्मृतिपुराणेतिहासेत्यादिप्रतिपादितफलावाप्तिका मोवगतानवगतसकलदुरितोपदुरितक्षयकामश्चनाना पटतंतुसंख्यासमानेककल्पावच्छिन्नवैकुंठलोकप्राप्ति कामः श्रीलक्ष्मीनारायणप्रीतिजनकबहश्वमेधयज्ञ-फलसूचकस्वीपुत्रीविवाहाङ्गभूतां इमां सतूल्योपधा-नादिसंस्कृतां खट्वां उत्तानांगिरोदैवतां बृहस्पतिदे-वताकसितरक्तपीताद्यनेकविधसुवर्णरजततंतुमिश्रि-तवस्त्रसंयुतां विश्वकर्मदैवताकैःयथापरिमितैः रीति-कांस्यलोहमयपात्रैः सपात्रतां चंद्राग्निसामुद्रदेवता-कअनेकविधविरचितरजतसुवर्णभूषणाविभूषितां

प्रजापतिदैवताकविविधपक्वान्नाद्यधिकरणकां सूर्य-
चंद्रदैवताकयथापरिमितताम्ररजतमयैः द्रव्यैस्सद-
क्षिणाममुकगोत्राय अमुकप्रवरायामुकनाम्ने वराय
तुभ्यमहं संप्रददे ॥ स्वस्तीति प्रतिवचनं वरप्रत्युक्तिः
त्वा दक्षिणाभिन्नसंकल्पः ॐ अद्य कृतैतत्खट्वाप्रति-
ष्ठार्थमिदं ताम्ररजतद्रव्यं सूर्यचंद्रदैवतं अमुक० ॥
आचारात् कन्यादाता सकलत्रः जलेन वरकन्या-
सहितखट्वां सव्येन वेष्टनं कुर्यात् ततः सपत्नीको
यजमानः खट्वापश्चिमभागे पूर्वाभिमुखःसन् कन्या-
वराक्षिप्तधान्यानि गृही गृह्णीयात् सबांधवैः ॥ अथ
धान्यप्रक्षेपे मंत्रः ॥ ॐ विश्वामित्रो जमदग्निर्वसिष्ठो
गौतमस्तथा । कश्यपोऽत्रिर्भरद्वाजो विष्णुब्रह्माद-
यश्च ये । ते सर्वे त्वां प्रयच्छंतु धनधान्यादिसंपदम्
॥ १ ॥ ॐ सनकःसनंदनाद्यश्च धेनवो मातरस्तथा ।
देवाः सर्वे प्रयच्छंतु धनधान्यं सदा गृहे ॥ २ ॥
ॐ चिरं जीवतु मे माता चिरं जीवतु मे पिता ।
चिरं जीवतु मे भ्राता चिरं जीवंतु बांधवाः ॥ ३ ॥
ॐ दिवा रक्षतु सूर्योऽयं रात्रौ रक्षतु चंद्रमाः । वंशं

रक्षतु भौमश्च धनधान्यादिसंपदाम् ॥ ४ ॥ पितृवंशं बुधो रक्षेत् मातृवंशं गुरुस्तथा । बंधुवर्गं च रक्षेत्तु भृगुर्दैत्यपुरोहितः ॥ ५ ॥ अश्विन्यादीनि ऋक्षाणि योगा विष्कंभकादयः । तिथयः प्रतिपाद्याद्याः शुभं यच्छन्तु ते सदा ॥ ६॥ ॐ तेजोवृद्धिर्यशोवृद्धिर्वंशवृद्धिस्तथैव च । लोककीर्तिर्भवेत्तात धनधान्यं सदा गृहे ॥ ७॥ ॐ गंगाद्याः सरितः सर्वाः शोणाद्याश्च नदास्तथा । कृतं पापं प्रशाम्यंतु प्रयच्छन्तु सुखं च ते ॥ ८ ॥ ततो यजमानः सूर्यायार्घ्यं दद्यात् ॥ इति खट्वादानविधिः ॥

अथ गोत्रोच्चारणम् ।

ॐ श्रीमत्पंकजविष्टरो हरिहरौ वायुर्महेन्द्रोऽनलश्चंद्रो भास्करवित्तपालवरुणाः प्रेताधिपाद्या ग्रहाः ॥ प्रद्युम्नो नलकूबरौ सुरगजश्चिंतामणिः कौस्तुभः स्वामी शक्तिधरश्च लाङ्गलधरः कुर्वंतु वो मङ्गलम् ॥ १ ॥ श्लोकान्ते गोत्रोच्चारणम् ३ । गौरी श्रीकुलदेवता च सुभगा भूमिः प्रपूर्णा शुभा सावित्री च च सरस्वती च सुरभिः सत्यव्रतारुंधती ॥ स्वाहा

जाम्बुवती च रुक्ममभगिनी दुःस्वप्नविध्वंसिनी वेला चांबुनिधेः समीनमकरा कुर्वंतु वो मङ्गलम् ॥ २ ॥ गंगा सिंधुसरस्वती च यमुना गोदावरी नर्मदा कावेरी सरयू महेंद्रतनया चर्मण्वती वेदिका ॥ क्षिप्रा वेत्रवती महासुरनदी ख्याता च या गंडकी पुण्याः पुण्यजलैः समुद्रसहिताः कुर्वंतु वो मङ्गलम् ॥ ३॥ लक्ष्मीः कौस्तुभपारिजातकसुरा धन्वंतरिश्चंद्रमा धेनुः कामदुघा सुरेश्वरगजो रंभा च देवांगना ॥ अश्वः सप्तमुखो विषं हरिधनुः शंखोऽमृतं चांबुधे रत्नानीति चतुर्दश प्रतिदिनं कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥ ॥ ४ ॥ ब्रह्मा वेदपतिः शिवः पशुपतिः सूर्यो ग्रहाणां पतिः शक्रो देवपतिर्हविर्हुतपतिः स्कंदश्च सेनापतिः ॥ विष्णुर्यज्ञपतिर्बलिः क्षितिपतिः शक्तिः पतीनां पतिः सर्वे ते पतयः सुमेरुसहिताः कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥ ५॥ इति सर्वोपयोगिगोत्रोच्चारणम् ॥

इति श्रीगौतमान्वयालंकृत (शो।रे) दैवज्ञमसार्यश्रीदुनिचंद्रसंगृहीतं संकल्पप्रकरणं समाप्तम् ।

अथ निबाहुरामटीकायां कन्यासंकल्पविधिः ।

हरिः ॐ॥ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः पुनातु अद्य तत्स-
न्ब्रह्म अथानन्तवीर्यस्य श्रीमदादिनारायणस्याऽ-
चिन्त्यापरिमिताऽनंतशक्तिसमन्वितस्य स्वकीयमू-
लप्रकृतिपरमशक्त्या प्रक्रीडमानस्य सच्चिदानन्दस-
न्दोहस्वरूपे स्वात्मनि सर्वाधिष्ठाने स्वाज्ञानकल्पि-
तानां महाजलौघमध्ये परिभ्रम्यमाणानामनेककोटि-
ब्रह्माण्डानामेकतमेऽस्मिन् ब्रह्माण्डेऽव्यक्तमहदहङ्का-
रपृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशादिभिर्दशगुणोत्तरैरावरणै-
रावृते आधारशक्तिश्रीकूर्मवराहधर्मानन्ताष्टदिग्ग-
जादिप्रतिष्ठिते ऐरावतपुण्डरीकवामनकुमुदाऽञ्जन-
पुष्पदन्तसार्वभौमसुप्रतीकाख्याष्टदिग्दंतिशुण्डाद-
ण्डोत्तण्डितैतद्ब्रह्माण्डखण्डयोरन्तर्गतभूर्लोकभुवर्लो-
कस्वर्लोकमहर्लोकजनलोकतपोलोकसत्यलोकाख्या-
नां सर्वज्ञसर्वशक्तिसमन्वितसर्वोत्तमसर्वाधिपश्रीचतु-
र्मुखप्रभृतिस्वस्वलोकाधिष्ठातृपुरुषाधिष्ठितानाम-
धोभागे फणिराजस्य शेषस्य सहस्रफणामण्डलै-
कफणोपरि सर्षपैककणायमानमहीमण्डलान्तर्गता-

नलवितलसुतलतलातलरसातलमहातलपातालानां
स्वस्वाधिष्ठात्राधिष्ठितानामुपरितने सुमेरुमंदिरमन्द-
राचलनिषधहिमगिरिशृङ्गवद्धेमकूटदुर्धरपारियात्रशै-
लमहाशैलमहेंद्रसह्याद्रिमलयाचलविंध्यर्ष्यमूकचित्र-
कूटमैनाकमानसोत्तरात्रिकूटोदयाचलास्ताचलपर्य-
न्तानेकाभिधानाद्रिगणप्रतिष्ठितायां जम्बूप्लक्षशा-
ल्मलीकुशक्रौञ्चशाकपुष्कराख्यसप्तद्वीपवत्यां लव-
णेक्षुसुरासर्पिर्दधिक्षीरशुद्धोदकाख्यसप्तसागरसमन्वि-
तायांसमस्तभूरेखायां कमलकदम्बगोलकाकारायां
वर्तमानेकुवलयकोशान्तर्गतदलवद्विराजमाने उत्तर-
कुरुहिरण्मयरम्यकभद्राश्वकेतुमालेलावृतहरिवर्ष-
किम्पुरुषभारताख्यनवखण्डवति जम्बुद्वीपे सर्वे-
भ्योऽप्यतिरिक्तसारवति देवादिभिरप्यभीष्टसुकृ-
तक्षेत्रभूतहेतुनाभिलषिततमे अङ्गवङ्गकलिङ्ग-
कालिंगकाम्बोजसौवीरसौराष्ट्रवङ्गालोत्कलमगध-
मालवनेपालकेरलचोलगौडमलयपाञ्चालसिंहलम-
त्स्यद्राविडद्राविडकर्णाटराटवशूरसेनकोङ्कणयौक-
णपाण्डचपुलिन्द्यांध्यद्रोणदशार्णविदेहविदर्भमैथि-

लकैकयकोशलकुन्तलमैन्धुवजावलसावीसिन्धुशा-
लभद्रमध्यदेशपर्वतकाश्मीरपुष्टाहारासिंधुपारसकि-
गान्धारबाह्लीक(हूण)प्रभृतिबहुविधदेशविशेषसं-
पन्ने दण्डकारण्यमहारण्याद्वैतारण्यकामुकारण्यसैं-
धवारण्यप्रभृत्यनेकारण्यवति श्रीगंगायमुनासरस्व-
तीगोदावरीनन्दालकनन्दामन्दाकिनीकौशिकीनर्म-
दासरयूकर्मनाशाचर्मण्वतीशिप्रावेत्रवतीकावेरीफ-
ल्गुमार्कण्डेयरामगंगाशतद्रुविपाशैरावतीचन्द्रभा-
गावितस्तासिन्धुदृषद्वतीप्रभृत्यनेकनदनदीवति कु-
रुक्षेत्रहरिद्वारक्षेत्रमालक्षेत्रादिबहुक्षेत्रान्विते भारतख-
ण्डे तत्रापि-मध्यरेखाकुरुक्षेत्रादमुकदिग्भागे अमु-
कनदीमध्ये श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरेऽ-
ष्टाविंशे कलौ युगे कलिप्रथमचरणे आर्य्यावर्त्ते
पुण्यबृहस्पतिक्षेत्रे शुभसंवत्सरेऽस्मिन्नमुकायन-
गतसूर्ये अमुकर्तावमुकमासेऽमुकपक्षेऽमुकति-
थावमुकवासरे यथायोगकरणमुहूर्त्ते वर्तमाने
चंद्रताराऽनुकूले पुण्येऽहनि अमुकगोत्रस्य अमु-
कसूत्रिणोऽमुकशर्मणः प्रपौत्राय ॥ १ ॥ अमु-

कगोत्रस्य यथोक्तप्रवरस्याऽमुकवेदिनोऽमुकशा- खिनोऽमुकसूत्रिणोऽमुकशर्मणः पौत्राय २ । अमुकगोत्रस्य यथोक्तप्रवरस्याऽमुकवेदिनोऽमुक- शाखिनोऽमुकसूत्रिणोऽमुकशर्मणः पुत्राय ३ । अमुकगोत्रस्य यथोक्तप्रवरस्याऽमुकवेदिनोऽमुकशा खिनोऽमुकसूत्रिणोऽमुकशर्मणः प्रपौत्रीं १। अमुक- गोत्रस्य यथोक्तप्रवरस्य अमुकवेदिनोऽमुकसूत्रिणोऽ मुकशर्मणः पौत्रीं २ । अमुकगोत्रस्यामुकवेदिनोऽ- मुकशाखिनोऽमुकसूत्रिणोऽमुकशर्मणः पुत्रीं ३ । इत्येवं गोत्रप्रवरादिनिरूपणपूर्वकप्रपितामहादिसं- ज्ञासंबंधकथनं त्रिरावर्त्य ३ अमुकगोत्राय य- थोक्तप्रवरायामुकवेदिनेऽमुकशाखिनेऽमुकसूत्रिणे अमुकशर्मणे ब्राह्मणाय वराय अमुकगोत्रां यथोक्त- प्रवराममुकनाम्नीमिमां कन्यां यथाशक्त्यलंकृतां महद्वस्त्रद्वयावृतां विवाहदीक्षितां प्रजापतिदैवताकां गङ्गावालुकाभिः सप्तर्षिमण्डलपर्यन्तराशीकृतरेणु- पुञ्जस्य मध्याद्वर्षसहस्रावसाने एकैकवालुकापकर्ष- णेन सर्ववालुकापकर्षणसम्मितकालपर्यन्तं सूर्यलो-

कनिवाससिद्ध्यर्थं यवैश्चन्द्रमण्डलपर्यंतं कृत एव राशितो वर्षसहस्रावसाने एकैकयवापकर्षणेन सर्वयवापकर्षणसम्मितकालपर्यंतं चंद्रलोकनिवाससिद्ध्यर्थं माषैर्ध्रुवमण्डलपर्यन्तराशीकृतमाषेभ्यो वर्षसहस्रावसाने एकैकमाषापकर्षणसंमितकालं यावद्विष्णुलोकरुद्रलोकध्रुवलोकनिवाससिद्ध्यर्थं गंधर्वाप्सरोगणमण्डितहंसपारावतशुकसारिकारुतनादितकिङ्किणीशतसमलंकृतदिव्यविमानेन मनोऽभिलषितदेशगमनपूर्वकगिरिनदीनदसिंधुद्वीपदिव्यदेशनंदनचैत्ररथप्रभृतिस्थानेषु स्वाभिलषितभोग्यविषयोपभोगार्थं मया सह दशपूर्वेषां दशावरेषां मद्वंश्यानामग्निष्टोमातिरात्रवाजपेयपुंडरीकाश्वमेधक्रतुशतफलजन्यब्रह्मलोकनिवासार्थं पत्नीत्वेन तुभ्यमहं संप्रददे ॥ इति शंखावस्थितद्रव्ययुतजलेन सह कन्याहस्तं (सांगुष्ठं) वरहस्ते दद्यात् ॥

इति निबाहुरामटीकाभूतकन्यासंकल्पविधानम् ।

अथ संस्कारभास्करोक्तः संक्षेपतः कन्यासंकल्पः ।

ततो दाता स्वदक्षिणे पत्न्या सह वरदक्षिणपार्श्वभागे शुभासने उदङ्मुख उपविश्य आचम्य प्राणानायम्य संवत्सरादि क्षेत्रादि देशकालौ संकीर्त्य एवंगुणविशेषेण विशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ अस्मिन्पुण्याहे अस्याः कन्याया अनेन वरेण धर्मप्रजया उभयोः वंशयोर्वंशवृद्ध्यर्थं तथा च मम समस्तपितॄणां निरतिशयसानंदब्रह्मलोकावाप्त्यादिकन्यादानकल्पोक्तफलावाप्तये अनेन वरेण अस्यां कन्यायामुत्पादयिष्यमाणसंतत्या दशपूर्वान्दशावरान् मां च एकविंशतिपुरुषानुद्धर्तुं ब्राह्मविवाहविधिना श्रीलक्ष्मीनारायणप्रीतये कन्यादानमहं करिष्ये इति ॥ अत्र सर्वसंकल्पादिषु शर्म इत्यस्य स्थाने क्षत्रियवैश्यविवाहे वर्मन् गुप्त क्रमेण कथनम् ॥ यत्र अद्येत्यादि० दृश्यते तत्र पूर्वमुक्तं सर्वं योजनीयम् ॥ गोत्रोच्चारणं श्लोकान्ते संकल्पविहितं प्रपितामहपूर्विका वंशसंख्या कथनीया इति परिभाषा ॥ अनुक्तं श्लोकतः सर्वं ज्ञातव्यम् ॥

अथ त्रैवर्णिकानां पूजनार्थं शुक्लयजुर्वेदोक्तं सुस्वरसहितं नवग्रहमन्त्रविधानं लिख्यते ।

अथ सूर्यकण्डिका ।

ॐ आकृष्णेनरजसावर्त्तमानोनिवेशयन्नमृतम्मर्त्यञ्च ॥ हिरण्ययेन सविता रथेनादेवोयाति भुवनानि पश्यन् ॥ १ ॥

अथ चंद्रमःकण्डिका ।

इमं देवाऽअसपत्नᳬसुवद्ध्वम्महतेक्षत्रायंमहतेज्यैष्ठ्याय महतेजानंराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय इममुष्यपुत्रममुष्यैपुत्रमस्यैविशऽएषवोमीराजा सोमोस्माकम्ब्राह्मणानाᳬ राजा ॥ २ ॥

अथ भौमकंडिका ।

अग्निर्म्मूर्द्धादिवः ककुत्पतिः पृथिव्याऽअयम् ॥ अपाᳬरेताᳬसिजिन्वति ॥ ३ ॥

अथ बुधकंडिका ।

उद्बुध्यस्वाग्नेप्रतिजागृहित्वमिष्टापूर्तेसᳬ

मृजेथामुयञ्चं ॥ अस्मिन्त्सुधस्थेऽध्युत्त-
रस्मिन्विश्श्वेदेवायजमानश्चसीदत ॥ ४ ॥

अथ बृहस्पतिकंडिका ।

बृहस्पतेऽअतियदुर्य्योऽअर्हाद्युमद्विभाति
क्रतुमज्जनेषु ॥ यद्दीदयुच्छवसऽऋतप्रजा
ततदस्मासु द्रविणन्धेहिचित्रम् ॥ ५ ॥

अथ शुक्रकंडिका ।

अन्नात्परिस्त्रुतो रसम्ब्रह्मणाव्यपिब
त्क्षत्रम्पयः सोमम्प्रजापतिः ऋतेनसत्यमि
न्द्रियविपानंᳪ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रिय
मिदम्पयोमृतम्मधु ॥ ६ ॥

अथ शनिकंडिका ।

शन्नोदेवीरभिष्टयऽआपोभवन्तुपीतये
शंय्योरभिस्रवंतुनः ॥ ७ ॥

अथ राहुकंडिका ।

कयानश्चित्र ऽआभुवदूतीसदावृधःस
खा । कयाशचिष्ठयावृता ॥ ८ ॥

अथ केतुकंडिका ।

केतुङ्कृण्वन्नकेतवे पेशोमर्य्याऽ अपे-
शसे ॥ समुषद्भिरजायथाः ॥ १ ॥ इति ॥

यश्च यस्य यदा तुष्टः स तं यत्नेन पूजयेत् ।
ब्रह्मणैषां वरो दत्तः पूजिताः पूजयिष्यत ॥ १ ॥
ग्रहाधीना नरेंद्राणामुच्छ्रयाः पतनानि च । भावाऽ-
भावौ च जगतस्तस्मात्पूज्यतमा ग्रहाः ॥ २ ॥ इति ।
याज्ञवल्क्यस्मृतौ प्रथमाध्याये ग्रहशांतिप्रकरणे
उक्तम् । अतः षोडशोपचारैर्गणपत्यादीन् संपूज्य
विशेषेण पूजनीयाः ॥ संतुष्टाः संतश्च ते अनिष्टान्
शमयंति ॥ ३ ॥ प्रार्थनेयं विष्णुदत्तस्य ॥

अथ षोडशोपचाराणि ज्ञानमालायामुक्तानि ।

तद्यथा अवाहनम् १, आसनम् २, पाद्यम ३,
अर्घ्यम् ४, आचमनीयम् ५, स्नानम् ६, वस्त्रम ७,
यज्ञोपवीतम् ८, गंधम् ९, पुष्पम् १०, धूपम् ११,
दीप म् १२. नैवेद्यं मध्ये पानीयं उत्तरापोशनं हस्त-
प्रक्षालनं मुखप्रक्षालनं १३, ताम्बूलम् १४, दक्षिणा
१५, नमस्कारम् १६ इति षोडशोपचाराणि एवं

गणपत्यादीन्सर्वान्पूजयेत् ॥ अभावे द्रव्यस्य यथाशक्त्योपलब्धवस्तुभिः पुष्पाक्षतादिभिः श्रद्धायुक्तः पूजयेत् ॥

अथ नवग्रहमङ्गलाष्टकानि ।

भास्वान्काश्यपगोत्रजोऽरुणरुचिर्यः सिंहराशीश्वरः षट्त्रिस्थो दशशोभनो गुरुशशी भौमेषु मित्रं सदा ॥ शुक्रो मन्दरिपुः कलिङ्गजनितश्चाग्नीश्वरौ देवते मध्ये वर्तुलपूर्वदिग्दिनकरः कुर्यात्सदा मङ्गलम् ॥ ॥ १ ॥ चन्द्रः कर्कटकप्रभुः सितनिभश्चात्रेयगोत्रोद्भवश्चाग्नेय्यांचतुरस्रवारुणमुखश्चापोऽप्युमाधीश्वरः॥ षट्सप्ताग्निदशैकशोभनफलो नोरिर्बुधार्कप्रियः स्वामी यामुनदेशजो हिमकरः कु० ॥ २ ॥ भौमो दक्षिणदिक्त्रिकोणयमदिक्विघ्नेश्वरो रक्तभः स्वामी वृश्चिकमेषयोः सुरगुरुश्चार्कः शशी सौहृदः ॥ ज्ञोऽरिः षट्त्रिफलप्रदश्च वसुधास्कन्दौ क्रमाद्देवते भारद्वाजकुलोद्भवः क्षितिसुतः कुर्या० ॥ ३ ॥ सौम्योदङ्मुखपीतवर्णमगधश्चात्रेयगोत्रोद्भवो बाणेशानदिशः सुहृच्छनिभृगुः शत्रुः सदा शीतगुः ॥ कन्या

युग्मपतिर्दशाष्टचतुरः षण्णेत्रगः शोभनो विष्णुः पौरुषदैवतं शशिसुतः कुर्यां० ॥ ४॥ जीवश्चाङ्गिरगोत्रजोत्तरमुखो दीर्घोत्तरासंस्थितः पीताश्वत्थसमिद्ध सिन्धुजनितश्चापोऽथ मीनाधिपः ॥ सूर्येन्दुक्षितिजप्रियो बुधसितौ शत्रुः समाश्चापरे ससाङ्कद्विभवः शुभः सुरगुरुः कुर्यां० ॥ ५ ॥ शुक्रो भार्गवगोत्रजः सितनिभः प्राचीमुखः पूर्वदिक् पंचाङ्गो वृषभस्तुलाधिपमहाराष्ट्राधिपोदुम्बरः ॥ इन्द्राणी मघवानुभौ बुधशनी मित्रार्कचन्द्रौरिपू षष्ठो द्विदशवर्जितो भृगुसुतः कुर्यां०॥६॥ मन्दः कृष्णनिभस्तु पश्चिममुखः सौराष्ट्रकः काश्यपः स्वामी मकरकुम्भयोर्बुधसितौ मित्रे समश्चाङ्गिराः॥ स्थानं पश्चिमदिक्प्रजापतियमौ देवौ धनुष्यासनः षट्त्रिस्थः शुभकृच्छनी रविसुतः कुर्यां० ॥ ७ ॥ राहुः सिंहलदेशजश्च निर्ऋतिः कृष्णाङ्गशूर्पासनो यः पैठीनसिसम्भवश्च समिधो दूर्वामुखो दक्षिणः ॥ यः सर्पाद्याधिदेवते च निर्ऋतिप्रत्याधिदेवः सदा षट्त्रिस्थः शुभकृच्च सिंहिकसुतः कुर्यां० ॥ ८ ॥ केतुर्जैमि-

निगोत्रजः कुशसमिद्वायव्यकोणे स्थितश्चित्राङ्गध्व-
जलाञ्छनो हिमगुहा यो दक्षिणाशामुखः ॥ ब्रह्मा
चैव सचित्रचित्रसहितःप्रत्याधिदेवः सदा षट्त्रिस्थः
शुभकृच्च बर्बरपतिः कुर्यात्सदा मंगलम् ॥ ९ ॥
इत्येतद्ग्रहमङ्गलाष्टनवकं लोकोपकारप्रदं पापौघ-
प्रशमं महच्छुभकरं सौभाग्यसंवर्द्धनम् ॥ यः प्रातः
(शुद्धः) शृणुयात्पठत्यनुदिनं श्रीकालिदासोदितं
स्तोत्रं मङ्गलदायकं शुभकरं प्राप्नोत्यभीष्टं फलम्
॥ १० ॥ इति नवग्रहमंगलाष्टकानि ॥

पारस्करगृह्यसूत्रोक्तं कुशकण्डिकासूत्रम् ।

अथातो गृह्यस्थालीपाकानां कर्मपरिसमुह्योप-
लिप्योल्लिख्योद्धृत्याभ्युक्ष्याग्निमुपसमाधाय दक्षि-
णतो ब्रह्मासनमास्तीर्य प्रणीय परिस्तीर्य्यार्थवदा-
साद्य पवित्रे कृत्वा प्रोक्षणीः संस्कृत्यार्थवत्प्रोक्ष्य
निरुप्याज्यमधिश्रित्य पर्यग्निः कुर्यात्स्रुवं प्रतप्य
संमृज्याभ्युक्ष्य पुनः प्रतप्य निदध्यादाज्यमुद्वास्यो-
त्पूयावेक्ष्य प्रोक्षणीश्च पूर्ववदुपयमनान्कुशानादाय
समिधोऽभ्याधाय पर्युक्ष्य जुहुयादेष एव विधिर्यत्र

क्वचिद्धोमः ॥ १ ॥ अर्थात् सर्वत्र होमं! एष एव विधिर्ज्ञातव्य इति ॥

सूर्यमंत्रका विनियोग ।

भा० टी०–[मंत्रार्थ आकृष्णेनेति] पुत्र गेमयं रथमे भुवनोंको देखता भया अर्थात कर्मभूमिमें स्थित मनुष्योंके पापपुण्यको साक्षी होकर देखता हुआ । कृष्ण मलीन रात्रिसे वर्तमान प्रतिदिन स्तुत्य सूर्य भगवान् देवताओंको और मनुष्योंको परस्पर व्यापारमें प्रेरता हुआ उदयको प्राप्त होता है ॥ १ ॥

सोममंत्रका विनियोग ।

भा० टी०–[मंत्रार्थ इमं देवा इति] यहां इमं शब्दसे प्रकृत होनेसे सोमका परामर्श है संपूर्ण देवतागण इस चंद्रमाको उत्पन्न करते भये। कैसेको शत्रुरहित और सौम्य सर्वप्रियको। किस प्रयोजनके लिये उत्पन्न करते भये क्षत्रके लिये अर्थात लोकपालोंको राजभावके लिये और सर्वोत्तमताके लिये और आतिशययुक्तको इस प्रत्यक्ष दृश्यको। (अमुं) नित्य ब्रह्मस्वरूप होनेसे परोक्ष दृश्यको सूर्यके पुत्रको अर्थात सूर्यकी किरणोंसे चंद्रमाकी वृद्धि होनेसे सूर्यपुत्र कहा जाता है। अमुष्य दिशाके पुत्रको अर्थात पूर्व दिशासे उत्पन्न उदय होनेसे पुत्रता है । अत्रि महर्षिजीके चक्षुसे उत्पन्न तेजको दिशाने धारण किया यह पुराणोंके अभिप्रायसे युक्तार्थ है किस लिये यह दिशाने धारण किया (अस्यै विशे) प्रजाके अनुग्रह अर्थात् अमृतरसकी उत्पत्ति कांति आनंदके लिये (और यह चंद्रमा हम ब्राह्मणजातिका राजा) है ॥ २ ॥

मंगलमंत्रका विनियोग ।

भा० टी०—(अग्निर्मूर्द्धा) इस मंत्रका विरूपांगिरस ऋषि अग्नि देवता गायत्री छंद अग्निके उपस्थानमें विनियुक्त है। (मंत्रार्थ अग्निर्मूर्धेति) यह भौम अत्यन्त तेजवाला होनेसे अग्निका मूर्द्धा (मस्तक) है वा अत्यन्त रक्तवर्ण होनेसे और आकाशका (ककुत्) चिह्न है। और वृष्टि करनेमें मुख्य हेतु होनेसे जलका वह स्वामी है । प्र०—" चलत्यंगारके वृष्टिंगति " अर्थ—मंगलके राश्यंतर होनेसे वर्षा होती है और पृथिवीका रेत बीजरूप है अर्थात अपनी शक्तिसे पृथिवीजातको प्रीणन करता है। प्रमा० बृ० जा० अ०२ " कालात्मा-दिनकृन्मनस्तु हिमगुः सत्वं कुजो ज्ञो गिरः " अर्थात जलका अधिष्ठाता मंगल है ॥ ३ ॥

बुधमंत्रका विनियोग ।

भा० टी०—बुधमंत्रका परमेष्ठी ऋषि अग्नि देवता त्रिष्टुप् छंद चितिके उपस्थानमें विनियुक्त है। (मंत्रार्थ) हे अग्ने ! उद्बुध्यस्व अर्थात् प्रकाश हो हे बुधदेव ! तुम हमारे कर क्रियमाण इस कर्ममें सावधान हो और बुध अग्नि तुम दोनों इष्टापूर्त नाम यज्ञमें यजमानके संसर्गको करो । यह ग्रहयज्ञमें ऋत्विक्की प्रार्थना है और सर्वोत्कृष्ट इस पूजा स्थानमें यह यजमान और संपूर्ण देवता स्थित हो। " महोपदेन सध-मादयोश्चयोश्चेति " इस सूत्रसे सहके स्थानमें सध आदेश भया ॥ ४ ॥

बृहस्पतिके मंत्रका विनियोग ।

भा० टी०-बृहस्पतिजीके मंत्रका गृत्समद ऋषि ब्रह्मा देवता त्रिष्टुप् छंद बार्हस्पत्य ग्रहणमें विनियुक्त है । हे बृहस्पति देव ! ऋत अर्थात् सत्य न नष्ट होनेवाली प्रजा (संतान) द्रविण (धन) हमको देवो कैसे धन कि जिस धनसे ईश्वरकी पूजा करें और जो लोकमें प्रकाश हो और दीप्तियुक्त जिससे यज्ञादि कर्म किये जांय जिसकी बलसे रक्षा की जाय ऐसा गौ वस्त्र सुवर्णादि रूप धनको दीजिये । यह प्रार्थनावाक्य है ॥ ५ ॥

शुक्रमंत्रका विनियोग ।

भा० टी०-शुक्रजीके मंत्रका प्रजापति ऋषि, अश्विसरस्वती, इंद्र देवता, जगती छंद, सौत्रामणि नाम यज्ञमें पयके ग्रहणमें विनियुक्त है । प्रजापति (ब्रह्मा) हविरूप अन्नसे परिस्रुत रसको पान करता भया । कैसेको क्षत्रको वा सोमरसको ब्रह्मा पान करता भया किस द्वारा पान करता भया (ब्रह्मणा) प्रपंचरहित मंत्ररूप वेदसे इस अन्नके सोमरूप रसको जो अन्नसे उत्पन्न भया (विपान) ब्रह्माजीका विशिष्टपान यह शुक्रबीज न नाश होनेवाला (इंद्रिय) इंद्रियोंका सार देवराज इंद्रका वीर्य्य पय क्षीर अमरमें कारण (मधु) पितृगणकी तृप्तिमें मुख्य हेतु होता भया । परिस्रुतं यह द्वितीयाके अर्थमें प्रथमाविभक्ति है ॥ ६ ॥

शनिमंत्रका विनियोग ।

भा० टी०-शनैश्चरजीके मंत्रका दध्यङ्ङाथर्व ऋषि,

गायत्री छन्द, जल देवता शांतिकरणमें विनियुक्त है ॥ याज्ञवल्क्यादि विहित आदित्य प्रभाव अपोंसे अभेदोपचारसे अपशब्दसे शनिका ग्रहण है । (आपोदेवी) हे शनैश्चर ! हमारेको कल्याण हो किस अर्थके लिये वृद्धिद्वारा तृप्ति हेतु पानके लिये और कल्याणके योग्य जल अभिमुखको प्राप्त हो अपशब्दको बहुवचनांत होनेसे बहुवचनांत विशेषण जानने ॥ ७ ॥

राहुमंत्रका विनियोग ।

भा० टी०–राहुजीके मंत्रका अग्नि ऋषि, दूर्वेष्टका देवता, अनुष्टुप छन्द, दूर्वेष्टकाके उपधानसे विनियुक्त है । हे दूर्वे ! प्रति कांड पर्वप्रति पुरुष ग्रंथियुक्त सर्वतो भावसे उत्पन्न भई तुम हमारेको शतसहस्र संख्याक पुत्र पौत्रादिसे विस्तृत करो ॥ ८ ॥

केतुमंत्रका विनियोग ।

भा० टी०–केतुजीके मंत्रका मधुछंद ऋषि, अग्नि देवता निरुक्ता गायत्री छंद केतुके अभिमंत्रणमें विनियुक्त है । हे केतुदेव ! ध्वजरूपको तुम प्राप्त हो किनसे जन्यमान गृहस्थियोंसे क्या करता भया मनुष्योंके केतु ज्ञानको करता हुआ और (पेश) सौंदर्य और सुवर्णको करता भया । निघंटु प्रमाण–" पेशकारी पेशसो मात्रामापादयेदिति " कैसे मनुष्योंका जो अज्ञानी और निर्धन कुरूप उनको सुवर्णरूप सौंदर्य देता भया ' कित ज्ञाने ' इस धातुका केतु रूप है अकेतवे अंशसे यह बहुवचनमें एकवचन है ॥ ९ ॥

अथ पारस्करगृह्यसूत्रे प्रथमकाण्डे विवाहसूत्रम्।

आवसत्थ्याधानं दारकाले दायाद्यकाल एकेषां वैश्यस्य बहुपशोर्गृहादग्निमाहृत्य चातुष्प्राश्यपचनवत्सर्वमरणिप्रदानमेके पंच महायज्ञा इति श्रुतेरग्न्याधेयदेवताभ्यः स्थालीपाकꣳश्रपयित्वाऽऽज्यभागाविष्ट्वाज्याहुतीर्जुहोति॥१॥ त्वन्नोऽअग्नेऽइमंमे वरुण तत्वायामि येते शतमयाश्चाग्नऽउदुत्तमंभवतन्न इत्यष्टौ पुरस्तादेवमुपरिष्टात्स्थालीपाकस्याग्न्याधेयदेवताभ्यो हुत्वाजुहोतिस्विष्टकृते चायास्याग्नेर्वषट्कृतं यत्कर्म्मणात्यरीरिचं देवागातुविदइति बर्हिर्हुत्वा प्राश्नाति॥ ततोब्राह्मणभोजनम्॥२॥षडर्घ्याभवन्त्याचार्यऽऋत्विग्वैवाह्योराजाप्रियः स्नातक इति प्रतिसम्वत्सरानर्हयेयुर्यक्ष्यमाणास्त्वृत्विजआसनमाहार्याह साधु भवानास्तामर्च्चयिष्यामोभवन्तमित्याहरंतिविष्टरं पाद्यं पादार्थमुदकमर्घ्यमाचमनीयंमधुपर्कंदधिमधुघृतमपिहितंकाꣳस्येकाꣳस्येनान्यस्त्रिस्त्रिःप्राहविष्टरादीनि विष्टरं प्रतिगृह्णातिवर्ष्मोस्मिसमानानामुद्यतामिवसूर्यः। इमन्तमभितिष्ठामियोमाकश्चाभिदासतीत्येनमभ्युपविशतिपादयोर-

न्यंविष्टर आसीनायसव्यंपादम्प्रक्षाल्यदक्षिणं प्रक्षा-
लयति ब्राह्मणश्चेद्दक्षिणं प्रथमं विराजोदोहोसिविराजो
दोहमशीयमयिपाद्यायैविराजोदोहऽइत्यर्घंप्रतिगृह्या-
न्यायस्थयुष्माभिः सर्वान्कामानवाप्नवानीति निन-
यन्नभिमंत्रयतेसमुद्रंवः प्राहिणोमिस्वां योनिमभिग-
च्छतअरिष्टास्माकं वीरामापरासेचिमत्पयऽइत्याचा-
मत्यामागन्यशसा सꣳसृजवर्च्चसातंमाकुरुप्रियंप्रजा-
नामधिपतिंपशूनामरिष्टिं तनूनामिति मित्रस्यत्वेति
मधुपर्कंप्रतीक्षते देवस्यत्वेति प्रतिगृह्णातिसव्येपाणौ
कृत्वादक्षिणस्यानामिकयात्रिः प्रयौतिनमः श्यावा-
स्यायान्नशने यत्तऽआविद्धंतत्तेनिष्कृन्तामीत्यनामि-
काङ्गुष्ठेनचत्रिर्निरुत्क्षिपयातितस्यत्रिः प्राश्नातियन्मधु-
नोमधव्येनपरमेणरूपेणान्नाद्येन परमोमधव्योन्नादो-
सानीतिमधुमतीभिर्वा प्रत्यृचंपुत्रायान्तेवासिनेवोत्त-
रतऽआसीनायोच्छिष्टंदद्यात्सर्वम्वाप्राश्नीयात्प्राग्वा
संचरे निनयेदाचम्यप्राणान्संमृशतिवाङ्मऽआस्ये-
नसोः प्राणोक्ष्णोश्चक्षुः कर्णयोः श्रोत्रंबाह्वोर्बलमूर्वो-
राजोरिष्टानिमेंगानितनूस्तन्वामेसहेत्याचान्तोदकाय-
शासमादायगौरिति त्रिः प्राहप्रत्याहमातारुद्राणांदु-

र्हिताबसूना ऽस्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः ॥
प्रनुवोचंचिकितुपेजनायमागामनागामदितिंवधिष्ट ॥
मम चामुष्यचपाप्माहन ऽहनोमीति यद्यालभेत
यद्युत्सिसृक्षेन्ममचामुष्यचपाप्माहतः । ओमुत्सृजत
तृणान्यत्त्विरतिब्रूयान्नत्वेवामा ऽ सोऽर्घः स्यादधियज्ञम
धिविवाहंकुरुतेत्येवब्रूयाद्यद्यप्यसकृत्संवत्सरस्य सोमे
नयजेतकृताघ्याऽएवैनंयाजयेयुर्नाकृतार्घ्याइतिश्रु-
तेः ॥ ३ ॥ चत्वारः पाकयज्ञाहुताऽहुतः प्रहुतः
प्राशितऽइतिपंचसुबहिःशालायां विवाहेचूडाकर-
णऽउपनयने केशान्तेसीमन्तोन्नयनऽइत्युपलिप्तऽ
उद्धतावोक्षितेग्निमुपसमाधाय निर्मथ्यमेकेविवाहऽ
उदगयनऽआपूर्यमाणपुण्याहे कुमार्याः पाणिंगृह्णी-
यात्त्रिषुत्रिषूत्तरादिषुस्वातौमृगशिरसिरोहिण्यांवातिस्रो
ब्राह्मणस्यवर्णानुपूर्व्येणद्वेराजन्यस्यैकावैश्यस्यस-
र्वेषा ऽशूद्राणामप्येकेमंत्रवर्ज्यमथैनां वासः परिधाप-
यतिजरांगच्छ परिधत्स्ववासोभवाकृष्टीनामाभिश-
स्तिपावा ॥ शतंचजीवशरदः सुवर्चारायिंचपुत्रान-
नुसंव्ययस्वायुष्मतीदंपरिधत्स्ववासऽइत्यथोत्तरीयं-
याऽअकृतन्नवयं याअतन्वतयंश्चादेवीस्तंतूनभितो

नतंथ तास्त्वा देवीर्जरसे संव्यय-
न्वायुष्मतीदंपरिधत्स्ववासऽइत्यथैनौ समंजयंति
समञ्जन्तुविश्वेदेवाः समापोहृदयानिनौ । सम्मातरि-
श्वासंधातासमुदेष्ट्री · दधातुनाविति पित्राप्रत्तामादाय-
गृहीत्वानिष्क्रामति यदैषिमनसदूरंदिशोनुपवमा-
नोवा ॥ हिरण्यपर्णोवैकर्णः सत्वामन्मनसां करोत्वि-
त्यसावित्यथैनौ समीक्षयत्यघोरचक्षुरपतिघ्न्येधिशि-
वापशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः ॥ वीरसूर्देवकामास्यो-
नाशन्नोभवद्विपदेशञ्चतुष्पदे ॥ सोमः प्रथमोविविदे
गंधर्वोविविदऽउत्तरः । तृतीयोऽअग्निष्टेपतिस्तुरी-
यस्तेमनुष्यजाः ॥ सोमोददद्गंधर्वायगंधर्वोददद-
ग्नये । रयिंचपुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथोइमाम् ॥ सानः
पूषाशिवतमामेरयसानऽऊरूउशतीविहर यस्यामु-
शंतः प्रहरामशेपं यस्यामुकामाबहवोनिविष्ट्या
इति ॥ ४ ॥ प्रदक्षिणमग्निं पर्य्याणीयैकेपश्चादग्नि-
स्तेजनींकटंवा दक्षिणपादेनप्रवृत्योपविशत्यन्वार-
ब्ध आघारावाज्यभागौ महाव्याहृतयः सर्वप्रायश्चित्तं
प्राजापत्यं स्विष्टकृच्चेतन्नित्यं सर्वत्रप्राङ्महा-
व्याहृतिभ्यः स्विष्टकृदन्यच्चेदाज्याद्धविः सर्वप्राय-

श्चित्तंप्राजापत्यान्तरमेनदावापस्थानं विवाहे राष्ट्र-
भृतइत्थं जयाभ्यातानांश्च जानन्येनकर्मणेच्छेदिति
वचनाच्चित्तं चचित्तिश्चाकूतञ्चाकूतिश्चविज्ञातंचवि-
ज्ञातिश्च मनश्चशक्करश्च दर्शश्चपौर्णमासंचबृहच्चरथ-
न्तरंचप्रजापतिर्जयानिंद्राय वृष्णेप्रायच्छदुग्रः पृत-
नाजयेषु। तस्मैविशः समनमंतः सर्वाः स उग्रसइ-
हव्योवभूवस्वाहेत्यग्निर्भूतानामाधिपतिः समावत्वि-
न्द्रोज्येष्ठानांयमः पृथिव्या वायुरन्तरिक्षस्य सूर्य्यो-
दिवश्चंद्रमानक्षत्राणांबृहस्पतिर्ब्रह्मणो मित्रः सत्यानां
वरुणोपाᳪसमुद्रःस्रोत्यानामन्नᳪसाम्राज्यानामधिप-
तिस्तन्मावतुसामेओषधीनाᳪसवितापसवानाᳪरुद्रः
पशूनां त्वष्टारूपाणां विष्णुः पर्वतानां मरुतोगणा-
नामधिपतयस्तेमावन्तुपितरः पितामहाःपरेवरेतत-
स्ततामहाः। इहमावन्त्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेस्यामा
शिष्यस्यांपुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳪ
स्वाहेति सर्वत्रानुसज्जत्यग्निरैतुप्रथमोदेवतानाᳪ
सोस्यैप्रजांमुञ्चतुमृत्युपाशात्॥ तदयᳪराजावरुणो
नुमन्यतांयथेयᳪस्त्रीपौत्रमघन्नरादोत्स्वा० ॥ इमा-
मग्निस्त्रायतांगार्हपत्यःप्रजामस्यैनयतुदीर्घमायुः।अ-

शून्योपस्थाजीवतामस्तु मातापौत्रमानंदमभिविबु-
ध्यतामियं स्वाहा । स्वस्ति नो अग्नेदिवापृथि-
व्याविश्वानि धेह्ययथायदत्र यदस्यांमहिदिविजातं
प्रशस्तंतदस्मासुद्रविणंधेहिचित्रं स्वाहा ॥ सुगन्नु-
पन्थांप्रदिशन्नएहिज्योतिष्मद्ध्यजरन्न आयुः । अपै-
तुमृत्युरमृतंम आगाद्वैवस्वतोनोअभयंकृणोतुस्वा-
हेति परंमृत्यवितिचैकेप्राशनान्ते ॥ ८ ॥ कुमार्या
भ्राता शमीपलाशमिश्राँल्लाजानंजलिनाञ्जलावावप-
तितां जुहोतिस ह्नेनर्तिष्ठन्त्यर्यमणंदेवंकन्या अग्नि-
मयक्षत मनोअर्यमा देवःप्रेतोमुञ्चतुमापतेस्वाहा ॥
इयन्नार्युपब्रूतेलाजानावपंतिका । आयुष्मानस्तुमे
पतिरेधन्तां ज्ञातयोममस्वाहा ॥ इमाँल्लाजानावपा-
म्यग्नौसमृद्धिकरणं तव । ममतुभ्यञ्चसंवननंतदग्निर-
नुमन्यतामियं स्वाहा ॥ इत्यथास्येदक्षिणं हस्तंगृ-
ह्णातिसांगुष्ठंगृभ्णामितेसौभगत्वायहस्तं मयापत्या
जरदष्टिर्यथासः । भगोअर्यमासवितापुरंधिर्मह्यन्त्वा-
दुर्गार्हपत्यायदेवाः । अमोहमस्मिसात्वं सात्वमस्य-
मोऽअहं । सामाहमस्मिऋक्त्वंद्यौरहंपृथिवीत्वं ।
तावेहिविवहावहैसहरेतोदधावहै । प्रजांप्रजनयावहै

पुत्रान्विंदावहैबहून् । तेसन्तुजरदष्टयः संप्रियौरो-
चिष्णूसुमनस्यमानौ ॥ पश्येमशरदः शतंजीवेमश-
रदः शतꣳशृणुयामशरदः शतमिति ॥ ६ ॥ अथै-
नामश्मानमारोहयत्युत्तरतोग्नेर्दक्षिणपादेनारोहेमम
श्मानमश्मेवत्वꣳस्थिराभव । अभितिष्ठ पृतन्यतो-
ऽवबाधस्वपृतनायतऽइत्यथगाथांगायति सरस्वतिप्रे-
दमवसुभगेवाजिनीवति । यांत्वाविश्वस्यभूतस्यप्रजा
यामस्याग्रतः । यस्यांभूतꣳसमभवद्यस्यांविश्वमिदं
जगत् तामद्यगाथांगास्यामियास्त्रीणामुत्तमंयश इत्य-
थपरिक्रामतस्तुभ्यमग्रेपर्यवहन्त्सूर्यांवहतुनासह ॥
पुनः पतिभ्योजायांदाग्नेप्रजयासहेत्येवंद्विरपरं ला-
जादिचतुर्थꣳशूर्पकुष्टया सर्वांल्लाजानावपतिभगाय
स्वाहेतित्रिः परिणीतांप्राजापत्यꣳहुत्वा ॥ ७ ॥
अथैनामुदीचीꣳसप्तपदानिप्रक्रामयत्येकमिषे द्वेऊर्ज्जे
त्रीणिरायस्पोषायचत्वारिमायोभवायपंच पशुभ्यः
षडृतुभ्यः सखे सप्तपदाभवसामामनुव्रताभवविष्णु
स्त्वा नयत्वितिसर्वत्रानुषजति निष्क्रमणप्रभृत्युद-
कुंभꣳस्कंधे कृत्वादक्षिणतोग्नेर्वाग्यतः स्थितोभव-
त्युत्तरत एकेषां तत एनांमूर्द्धन्यभिषिंचत्यापःशिवाः
शिवतमाःशान्ताः शान्ततमास्तास्तेकृण्वन्तुभेषज-

मित्यापोहिष्ठेतिचतिसृभिरथैनाᳪ सूर्यमुदीक्षयति तच्चक्षुरित्यथास्यैदक्षिणाᳪ समाधि हृदयमालभते ममव्रतेतेहृदयंदधामिममचित्तमनुचित्तं ते अस्तु । ममवाचमेकमनाजुषस्व प्रजापतिष्ट्वानियुनक्तुमह्य मित्यथैनामभिमंत्रयते सुमङ्गलीरियंवधूरिमा ᳪ स मेत पश्यत । सौभाग्यमस्यैदत्त्वायाथास्तांनिपरेत नेतितांहृढ पुरुषउन्मथ्यप्राग्वादग्वानुगुप्तागार आन डुहेरोहिते चर्मण्युपवेशयतीहगावोनिषीदंत्विहाश्वा इहपुरुषाः । इहो सहस्रदक्षिणोयज्ञ इहपूषानिषीदंत्वि तिग्रामवचनंच कुर्युर्विवाहश्मशानयोर्ग्रामं प्रविश तादिति वचनात्तस्मात्तयोर्ग्रामप्रमाणमितिश्रुतेराचा र्यायवरंददातिगौर्ब्राह्मणस्य वरो ग्रामोराजन्यस्या श्वो वैश्यस्याथिरथᳪशतं दुहितृमतेस्तमितंध्रुवंदर्श याति ध्रुवमसिध्रुवंत्वापश्यामिध्रुवैधिपोष्येमयिमह्यं त्वादाद्बृहस्पतिर्मयापत्याप्रजावतीसंजीवशरदᳪशत मितिसायदिनपश्येत्पश्यामीत्येवब्रूयात्त्रिरात्रमक्षारा लवणाशिनौस्यातामधः शयीयाताᳪ संवत्सरन्नमि थुनमुपेयातां द्वादशरात्रᳪषड्रात्रंत्रिरात्रमन्ततः ॥ ८ ॥

उपयमनप्रभृत्यौपासनस्य परिचरणमस्तमितानु दितयोर्दध्नातण्डुलैरक्षतैर्वाग्नयेस्वाहाप्रजापतये स्वा-

हेति सायꣳसूर्यायस्वाहाप्रजापतये स्वाहेति प्रातःपु-
माꣳसौमित्रावरुणौ पुमाꣳसाश्विनावुभौ। पुमानिन्द्र-
श्चसूर्यश्च पुमा ꣳसंवर्त्ततांमायिपुनः स्वाहेति पूर्वांगर्भ-
कामा ॥९॥राज्ञोक्ष भेदेनद्धविमोक्ष्ये यानविपर्यासे
न्यस्यांवान्यापत्तौस्त्रियाश्चाद्रहने तमेवाग्निमुपसमाधा
य आज्यꣳसंस्कृत्येहगतिरिति जुहोति नानामंत्रा-
भ्यामन्ययानमुपकल्प्यतत्रोपवेशयद्राजानꣳस्त्रियंवा
प्रातेक्षत्रे ऽइतियज्ञांतेनान्याहार्यमिति चैतयाध्रुवौ
दक्षिणाप्रायश्चित्तिस्ततो ब्राह्मणभोजनम् ॥ १० ॥

अथ चातुर्थ्यकर्मणि पारस्करसूत्रम्.

तद्यथा–चतुर्थ्यामपररात्रेभ्यन्तरतोग्निमुपसमाधा-
यदक्षिणतोब्रह्माणमुपवेश्योत्तरत ऽउदपात्रंप्रतिष्ठाप्य
स्थालीपाकं श्रपयित्वाऽऽज्यभागाविष्ट्वाज्याहुतीर्जुहो-
त्यग्नेप्रायश्चित्तेत्वंदेवानांप्रायश्चित्तिरसिब्राह्मणस्त्वा-
नाथकाम उपधावामियास्यैपातिघ्नीतनूस्तामस्यैना-
शयस्वाहा ॥ वायोप्रायश्चित्ते त्वंदेवानां०यास्यैप्र-
जाघ्नीतनूस्तामस्यैनाशयस्वाहा ॥ सूर्यप्रायश्चित्ते-
त्वंदेवानां०यास्यैपशुघ्नीतनूस्तामस्यैनाशयस्वाहा॥
चंद्रप्रायश्चित्ते० यास्यैगृहघ्नीतनूस्तामस्यैनाशयस्वा-

हा ॥ गंधर्वप्रा॰ यास्येयशोघ्नीतनूस्तामस्यै नाशय स्वाहेतिस्थालीपाकस्यजुहोतिप्रजापतये स्वाहेति हुत्वाहुत्वैतासामाहुतीनामुदपात्रे सꣳस्रवान्त्समवनीयत तऽएनांमूर्द्धन्याभिषेचतियातेपतिघ्नीप्रजाघ्नी पशुघ्नी गृहघ्नीयशोघ्नीनिन्दितातनूजारघ्नी ततऽएनां करोमिसाजीर्यत्वंमयासहासावित्यथैनाꣳस्थालीपाकं प्राशयातिप्राणैस्तेप्राणान्त्संदधाम्यस्थिभिरस्थीनिमाꣳसैर्मांसानि त्वचात्वचामितितस्मादेवंविच्छ्रोत्रियस्य दारेणनोपहसमिच्छेदुत ह्येवंवित्परोभवतितामुदुह्य यथर्तुप्रवेशनंयथा कामीवा काममाविजनितो संभवामेतिवचनादथास्यदक्षिणाꣳसमधिहृदयमालभते यत्तेसुशीमेहृदयंदिविचंद्रमासिश्रियं । वेदाहंतन्मांतद्विद्यात्पश्येमशरदः शतंजीवेमशरदः शतꣳशृणुयामशरदःशतमित्येवमतऊर्ध्वम् ॥ ११ ॥

इति श्रीकर्पूरस्थलनिवासिगौतमगोत्र (शौरि)
अन्वयालङ्कृतदैवज्ञदुनिचन्द्रात्मजपाण्डि-
तविष्णुदत्तवैदिकसंगृहीतं चतुर्थं
प्रकरणं समाप्तम् ॥ ४ ॥

अथ पंचमं प्रकरणम् ।

अथ विवाहपद्धतिर्लिख्यते.

तत्रादौ युग्मकेन मङ्गलाचरणम् ।

संधिविग्रहमन्त्रेन्द्रो रुद्रदेवतनूद्भवः ॥
भूमिपालशिरोरत्नराजितांघ्रिसरोरुहः ॥ १ ॥

ॐ स्वस्ति श्रीगणेशाय नमः । अथ विवाहपद्धतिकी व्याख्या भाषामें करते हैं । प्रथम (मङ्गलाचरणं शिष्टाचारात्फलदर्शनात् श्रुतितश्चेति) श्रुत्यादिविहित मङ्गलाचरणको होनेसे विघ्नविनाशनके लिये लिखते हैं ॥ गणेशं गुरुं पद्मनाभं महेशं कुमारं महेन्द्रं रमां शारदां च । ग्रहांस्तुङ्गगान्वीर्ययुक्तांस्तथैव नमस्कृत्य सर्वान्सुटीकां करोमि ॥ १ ॥ या कृता रामदत्तेन निवासूरामशर्म्मणा । तां विलोक्योपकाराय सर्वेषां क्रियते मया ॥ २ ॥ व्याख्या नृगिरया सैव धर्मकामार्थसिद्धिदा । प्रहत्य रागद्वेषौ च द्रष्टव्या सुविचक्षणैः ॥ ३ ॥ यदशुद्धमसम्बद्धमज्ञानाच्च कृतं मया । विद्वद्भिः क्षम्यतां सर्वं बालत्वादयमञ्जलिः ॥ ४ ॥ विवाहपद्धतेर्व्याख्याकृता यत्नाद्विलोक्यताम् । उल्लसिष्यन्ति दुष्यन्ति सन्तोऽसन्तश्च भूतले ॥ ५ ॥

भा० टी०—सन्धिविग्रह इति । सन्धि जो परस्पर मिलावट अर्थात् मेल विग्रह अर्थात् युद्ध इनका जो मन्त्र सम्यक् विचार

१ पद्धति । २ टीका इति शेषः ।

तिसमें इन्द्र ईश्वर अर्थात् तीक्ष्ण बुद्धिद्वारा संधिविग्रहके यथार्थ ज्ञानमें समर्थ रुद्रदेव जो महादेव तिसका पुत्र । प्रमाण जैसे अथर्ववे०—" नमस्तेऽस्तु लम्बोदराय एकदन्ताय विघ्ननाशिने शिवसुताय वरदमूर्तये नमः " इति यहां यद्यपि तनूद्भवसे औरस पुत्र लिया जाता है तथापि रूढि (प्रसिद्धि) से क्षेत्रज पुत्रमेंभी वर्तता है सरसिज (कमल) वत् भाव यह है कि सरोवरमें जो उत्पन्न हो वह पाटलि अर्थात् गुलाब जो पृथ्वीपर पैदा होता है इसकोभी कहते हैं सरसिज (कमल) अक्षरार्थसे कहा जाता है तथापि प्रसिद्धिसे प्रमाण जैसे (स्थलारविन्दाश्रियम्) फिर कैसे है भूमिपाल राजालोक इनके प्रति दिन राजकार्य तिनमें विघ्नका संदेह उसके निवृत्त करनेके लिये प्रणाम कर रहे राजाओंकेसे मुकुट रत्नोंसे विचित्रित हुए हैं चरणकमल जिनके ॥ १ ॥

सन्धिविग्रहकृच्छ्रीमद्वीरेश्वरसहोदरः ।
महन्महत्तरः श्रीमान्विराजाति गणेश्वरः॥२॥

भ० टी०—संधि इति । तारक दैत्यके वधमें संधि विग्रह करनेवाला श्रीमान् वीरेश्वर अर्थात् वीरपुरुषोंका स्वामी और युद्धमें लगानेवाला जो स्वामी कार्तिकजी इनके भाई और महान् जो व्यास वसिष्ठादि उनमें जो बडे ब्रह्मादिक उनका पूज्य और गणोंका स्वामी श्रीगणेश भगवान् विराजमान अर्थात् शोभता है । युग्मका लक्षण साहित्यदर्पणमें लिखा है—" द्वाभ्यां तु युग्मकं ज्ञेयं " अर्थ—दो श्लोकोंसे एकार्थ कहनेसे युग्म होता है ॥ २ ॥

श्रीमता रामदत्तेन मन्त्रिणा तस्य सूनुना ।
पद्धतिः क्रियते रम्या धर्म्या वाजसनेयिनाम् २ ॥

भा० टी०–श्रीमान शोभायुक्त संहिता पद क्रम जटा घन और वेदार्थमें चतुर श्रीगणेशनामकर स्वपिताके पुत्र रामदत्तजी शुक्ल यजुर्वेद माध्यंदिनी शाखा वाजसनेयी संहिता कात्यायन सूत्रवाले जो त्रैवर्णिक अर्थात् ब्राह्मण क्षत्री वैश्य इनकी धर्म-युक्त मनोहरतासे शोभित विवाहकी पद्धति प्रगट करते हैं इससे शूद्रका विवाह वेदोक्त मंत्रोंसे नहीं चाहिये । प्रमाण याज्ञवल्क्यस्मृति–" ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रा वर्णास्त्वाद्यास्त्रयो द्विजाः । निषेकादिश्मशानांतास्तेषां वै मंत्रतः क्रियाः ॥ न तु शूद्रस्य ॥ स्त्री शूद्रोऽनुपनीतश्च वेदमंत्रान् विवर्जयेत् " ॥ २ ॥

तत्र क्रमः । तावत्पूगीफलोपवीतदानम् ।
तत्र कन्याभ्राता पुरोधा अन्यो ब्राह्मणो वा कश्चित् ॥

भा० टी०–(तत्र क्रमः) तिस पद्धतिमें जो शास्त्रक्रम अर्थात् मंत्रपूर्वक ब्राह्मणसूत्रविहित मर्यादा वही मुख्य है, नहीं तो अपने मुखसे रचन वा न्यून अधिक अन्यथा वेदविरुद्ध होनेसे प्रत्यवाय होता है । अथ कन्यादानका फल लिखते हैं । "भूमिदानं वृषोत्सर्गो दानं गजसुवर्णयोः । उभयतोवदना गौश्च तुलाया दानमुत्तमम् ॥ कन्यादानं जीवदानं शरणागतपालनम् । वेददानं महाराज महादानानि वै दश ॥ तत्रापि च महाबाहो कन्यादानमनुत्तमम् । कन्यादानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति ॥ " यह मार्तण्डमें लिखा है । अर्थ–भूमी १,

वृषोत्सर्ग २, हस्ती ३, सुवर्ण ४, उभयतोमुखी गौ ५, तुला ६, कन्या ७, शरणागतकी रक्षा ८, जीवदान ९, वेददान १०, यह महादान हैं तिनमेंभी कन्यादान अधिक है । अन्यच्च " विधिवत्कन्यकादानं अश्वमेधसमं कलौ । " गोविंदराज ऐसे कहते हैं । अर्थ—अन्ययुगोंमें अश्वमेध और कलियुगमें कन्यादान यह दो सदृश हैं । अन्यच्च—" तिस्रः कोटचोऽर्धकोटी च तीर्थानां वायुरब्रवीत् । दिवि भुव्यंतरिक्षे च कलौ ते सन्ति जाह्नवी ॥ वेदतंत्रप्रणीता या यानि मन्त्राणि सर्वशः । वेदमातुर्जपे तेषां फलं प्रोक्तं कलौ युगे ॥ " पद्मपुराणमें यह लिखा है । अर्थ सुगम है । " चिंतामणीनां गिरयः कल्पवृक्षाः सहस्रशः । व्रजाश्च कामधेनूनां तत्र गच्छेद्दुहितृदः ॥ कांचनानि च हर्म्याणि नद्यः पायसकर्दमाः । फलान्यमृतकल्पानि तत्र गच्छेद्दुहितृदः ॥ " यह मार्कंडेयका वचन है । ऐसा महाफलका दाता कन्यादान तीन प्रकारका है प्रथम वाग्दान अर्थात् मगाई वा कुडमाई, द्वितीय कन्यादान अर्थात् पाणिग्रहण वा विवाह, तृतीय खट्वादि पारिबर्हदान । प्रमाणभी जैसे वृद्धमनुजी " वरं संपूज्य खार्जूरं फलं दत्त्वा मुखे तथा । तस्मिन्कालेऽग्निसान्निध्ये पिता तुभ्यं प्रदास्यति ॥ इति प्रतिज्ञया यच्च कन्याभ्रात्रादिना च सा । वाचा यद्दीयते तुल्ये वाग्दानं प्रथमं स्मृतम् ॥ वरं संपूज्य विधिना वेद्यामग्निं विधाय च । दात्रा प्रदीयते यच्च कन्यां संकल्प्य वाग्यतः ॥ द्वितीयं कन्यकादानं तत्र प्रोक्तं मनीषिभिः । वधूवरौ च खट्वायां मण्डपे संनिवेश्य च ॥ पारिबर्हं महद्दत्त्वा जलेन च विसर्जनम् ।

तृतीयं कन्यकादानं व्यासाद्या मुनयो जगुः ॥ " अर्थ सुगम है ॥ [तत्र कन्याभ्रातेति] कन्याका भाई वा पुरोहित अथवा अन्य ब्राह्मण सगाई करे । मनुजीभी लिखते हैं–" ऋत्विक् पुरोहितः पुत्रो भार्या भृत्यः सखा तथा । एतद्द्वारा कृतं यच्च तत्कृतं स्वयमेव हि ॥ " अर्थ–इनके द्वारा जो किया जाय वह आपभी किया होता है ॥

उदङ्मुखः प्रत्यङ्मुखो वा उपविश्य प्राङ्मुखस्य वरस्य गन्धाक्षतैरर्चितस्य मुखदत्तखार्जूरादिफलस्य स्वयं पूगीफलयज्ञोपवीतमादाय ॥

भा० टी०–उत्तराभिमुख वा पश्चिमाभिमुख स्थित होकर पूजन करे इसमें प्रमाण मनुजीका लिखते हैं–" पूज्यश्च प्राङ्मुखो यत्रोदङ्मुखः पूजको भवेत् । अर्चयेद्देवमभित इति प्रत्यङ्मुखश्च सः ॥ " यह वाक्य जो है कि–" प्रत्यङ्मुखं स्थापयेत्तु देवं पूज्यं तथैव च । पूजकः सन्मुखस्तत्र इति धर्मानुशासनम् ॥" कहते हैं कि यद्यपि पूज्य होनेसे वरको प्रत्यङ्मुख होना उचित है तथापि " प्रत्यङ्मुखं स्थापयेत्तु देवं पूज्यं वरं विना । वरस्तु प्राङ्मुखः पूज्यः पूजकः स्यादुदङ्मुखः ॥ " इस व्यासस्मृतिप्रमाणसे तथा " प्रत्यङ्मुखान्पूजनीयदेवांस्तत्संमुखस्थितः । अर्चयेन्नित्यमेवेत्थं विधिरित्येव सम्मतः ॥ स्थित्वा चाभिमुखं नार्चेच्छ्वश्रुं जामातरं तथा । इंद्रं चोदङ्-

मुखं स्थाप्य स्वयं प्राङ्मुखसंस्थितः ॥ उदङ्मुखोऽर्चयेद्दाता वेदिस्थं प्राङ्मुखं वरम् ॥" यह पराशरजीके वचनसे वरको प्राङ्मुख बैठाय गंधाक्षतसे पूजन कर मुखमें खर्जूर (छुहारे) का फल देवे " नारिकेलफलं चैव तदन्तभक्ष्यमुत्तमम् । खर्जूरादि फलं राजन् विवाहे मंगलप्रदम् ॥" इस भृगुजीके वचनसे विवाहादिक सब मंगल कार्यमें खर्जूरादिफल देना सिद्ध होता है । (स्वयमिति) आप पूगीफल (सुपारी) यज्ञोपवीतको लेकर कन्याका भ्राता वा पुरोहितादि मान्य पुरुष जो आगे लिखेंगे वह कहकर वरण करे अर्थात् सगाई वा कुडमाई करे वर कैसा चाहिये वह लिखते हैं-" ययोरेव समं वित्तं ययोरेव समं कुलम् । तयोर्विवाहो मैत्री च न तु पुष्टविपुष्टयोः ॥" यह महाभारतमें लिखा है। अर्थ—जिनका धन कुल आचरणादि सम हो उनका विवाह करना चाहिये लक्षण वरके जैसे गोविंदराजजीने कहे हैं-" सुशीलश्चारुबुद्धिश्च व्यवहारपटुः क्षमी । उदारो वाक्पटुर्वाग्मी गुणयुक्तो वरो मतः ॥ परस्परासंबंधकुलजातो महाकविः । कान्तः सुलक्षणः श्रीमान् मातृपितृयुतो वरः ॥" इत्यादि लक्षणसंपन्न वर चाहिये ॥

तस्मिन्कालेऽग्निसांनिध्ये स्नातः स्नाते ह्यरोगिणि । अव्यङ्गे पतिते क्लीबे पिता तुभ्यं प्रदास्यतीति पठित्वा हस्ते दद्यात् ॥

भा० टी०—[तस्मिन्कालेति] तिस प्रसिद्धकाल विवाहसमयमें अग्निके समीप साक्षिद्वारा वाताश्मरी कुष्ठ मेह महो-

दर भगन्दर इत्यादि रोगरहित यथा " वाताश्मरीकुष्ठमेहमहो-दरभगंदराः । अर्शश्च ग्रहणी चैव महारोगाः सुदुस्तराः ॥ " इनके भेद चिकित्साशास्त्रमें लिखे हैं मूलविरुद्ध होनेसे नहीं लिखे जाते हैं । इनके रहित और व्यंग जो योनिज और जातिज दो प्रकारका उससे रहित अर्थात् धृता (धरेल), विवाहिता, दासी यह तीन स्त्री निषिद्ध होती हैं । इनके लक्षण जो विधवा स्त्री प्रीतिपूर्वक सुंदर वाणी और पुष्कल भोजनद्वारा घरमें स्त्रीभाव-नासे रक्षित हो उसको धृता (धरेल) कहते हैं । और जो पूर्वविवाही हो अनन्तर पतिके मर जाने पर फिर कन्या-भावसे जो विवाही जाय उसको विवाहिता स्त्री कहते हैं । अर्थात् पुनर्भू । दासी उसको कहते हैं कि प्रथम घरमें भृति (नौकरी) करती हो फिर यौवन सुंदरतासे कामवश होकर जो स्वीकार की जावे इन स्त्रियोंसे उत्पन्न संततिको अपने कुलमें जो मिलाना वह योनिव्यंग कहाता है । और अपनी जातिका हीन जातिसे सम्बन्धको जातिव्यङ्ग कहते हैं । इनसे रहित तुमको और चक्षु चरण कटि इनका भंग और अंधता पंगु प्रभृति देहव्यङ्ग उनसे रहित और अपतितको–" ब्रह्महा मद्यपः स्तेनस्तथैव गुरुतल्पगः । एते महापातकिनो यश्च तैः सह संवसेत् ॥ ब्रह्महत्यादिके पापे जातिभ्रंशकरे तथा । वृष-लीगमनेऽत्यर्थं सावित्रीविरहेऽपि च ॥ अभक्ष्यभक्षणे चैव पतितो भवति ध्रुवम् ॥ " इत्यादि कालादर्शादि निरूपित पतनादिसे रहित और क्लीब अर्थात् नपुंसकतासे रहितको प्र०–"भस्माने होमकरणात्षंढे कन्याप्रदानतः । कुलधर्मपरित्यागान्नरके नि-

यतं वसेत ॥ " याज्ञवल्क्यजी वरके लक्षणमेंभी लिखते हैं-- " एतैरेव गुणैर्युक्तः सवर्णः श्रोत्रियो वरः । यत्नात्परीक्षितः पुंस्त्वे युवा धीमान् जनप्रियः ॥ " इति प्रथमाध्याये । अर्थ पूर्वोक्त गुणोंसे युक्त सवर्णी अर्थात् ब्राह्मणीमें ब्राह्मण, क्षत्रियाणीसे क्षत्री इत्यादि वेदके जाननेवाला और यत्नसे पुंस्त्वमें परीक्षा किया हो । युवान् और सर्वप्रिय हो । इत्यादि दोषसे रहित तुमारेको पिता कन्या दान देवेगा यह प्रतिज्ञाको उच्च स्वरसे कहकर वरके हाथ पूगीफल यज्ञोपवीत कन्याका भ्राता अथवा पुरोहित वा ब्राह्मणद्वारा देवे । इति वाग्दानविधिः समाप्तः ॥ भाव यह है कि कन्याका भाई आप वा पुरोहितसे अर्थात् जिसपर अपना दृढ विश्वास हो उसके द्वारा सगाई करे । और कन्यासे वर दुगुणा अथवा डेढा अर्थात् कन्या ८ वरसकी बालक १६ वरसका होना चाहिये न मिलनेपर ऐसा तो कन्या ८ वर्षकी बालक १२ वर्षसे कम (न्यून) न होना चाहिये । अन्यथा जो लोभमोहादिके वशमें वा धनी देखकर आठ वर्षके बालकके गलेमें १६ वर्षकी कन्याको चमेड देवे उसकोभी प्रत्यक्ष फल मालूम होना चाहिये कि बालक पुष्ट नहीं होता और शुष्कवदन बलरहित प्रजोत्पादनमें असमर्थ होता है । उसकी संतान उससे निर्बल होती है इत्यादि बहुत दोष हैं जिन महाशयोंके देखनेकी इच्छा हो वह मैंने एक चिकित्साशास्त्रकी दिनरात्री ऋतुचर्यादि बहुत प्रकारसे युक्त स्वस्थपुरुष नामकर ग्रंथ बनाया है उसको देख लें । प्रार्थनेयं वैदिकविष्णुदत्तस्य ॥

यजु० अध्याय १७ मंत्र ३ ।

ॐ ऋतवंस्थाऽऋतावृधां ऋजुष्यस्थां ऋतावृधां । घृतश्च्युतांमधश्च्युतां विराजोनामंकामदुघाऽअक्षीयमाणाः ॥

इति पठित्वा शिरस्यक्षतादिकं दद्याद्वरः ।
भ्रातृव्यतिरिक्तपक्षे पितेत्यत्र दातेत्युच्चारयेत् ॥

भा० टी०-[ऋतवस्था इति] भो कन्याके देनेवाले तुम ऋत नाम सत्यमें प्रतिष्ठित होनेवाले हो अर्थात् सत्य प्रतिज्ञा-युक्त रहे ' ऋजुष्ये सन्मार्गे तिष्ठन्तीति ऋजुष्यस्थाः ' अर्थात् सन्मार्गमें स्थित हो ' ऋता सत्या अवधयो मर्य्यादाः समया वा येषां ते ' अर्थात मर्यादापालक हो । [घृतश्च्युतः] बहुत होनेसे जिसके घरमें घृत गिरता है । [मधुश्च्युतः] ' मधूनि मधुराणि गुलशर्कराणि च्यावयन्ति ' अर्थात् बहुत मधुर रसवाले तुम होवो ' विशेषेण राजन्ते इति विराजः ' सुशो-भित हो । [कामदुघा] कामनाके पूर्ण करनेवाले हो (नाम) प्रसिद्ध हो । अक्षीयमाणा नहीं नष्ट भये धनादि जिनके ऐसे आप होवे । इस मंत्रसे वर आशीर्वाद देकर जो वाग्दान करे उसके शिरपर अक्षताको धर दे ॥

अथ सर्वेभ्यो वेदाध्ययनश्रवणाक्रियाव्यतिरि-क्तक्रियानिवृत्तयेऽक्षतानि दत्त्वा सहस्तस्व-

रेणाभावे तारस्वरेण वेदोच्चारणं कुर्य्यात् ॥

भा० टी०-[अथ सर्वेभ्य इति] ग्रंथके आदिमें मंगल करना चाहिये इस शिष्टाचारसे अथशब्दका मंगल और निषेकादि संस्कारोंसे अनंतर यह दो अर्थ हैं। प्रमाण- "अथ मंगलानन्तरारम्भप्रतिज्ञाधिकारसमुच्चयेषु" विवाहके आरम्भमें हस्तस्वरसहित वेद उच्चारण करे प्रमाण "याज्ञवल्क्यशिक्षामें "हस्तस्वरेण योऽधीते स्वरवर्णार्थसंयुतम्" इत्यादि बहुत लिखाहै अभावमें ऊंचे स्वरसे कंठस्वर वा हस्तस्वरसे यथाबुद्धि करना चाहिये। तारस्वरसे उच्चारण करनेमेंभी प्रमाण याज्ञवल्कमें यथा-"स्वरस्तु द्विविधः प्रोक्तो वेदोच्चारणकर्मणि। कण्ठस्वरो हस्तस्वरो गौणमुख्यप्रभेदतः॥ तारस्वरेण तावेव भवेतामिति निश्चयः। वेदस्योच्चारणं कुर्यात् यथाविधि च वेदवित॥ सर्वविघ्नविनाशाय सर्वारम्भेषु सिद्धये॥" अर्थ-हस्तस्वर और कण्ठस्वर गौण मुख्य न्यायसे दो भेद है वह दोनोंही ऊंचे स्वरसे कहे जाते हैं विघ्नके नाश और सर्वसिद्धिके लिये आदिमें वेदोच्चारण करना चाहिये। अक्षत देकर अन्यकार्यसे निवृत्त हो वेद भगवान्‌का उच्चारण और श्रवण करना सर्व पुरुषको चाहिये॥

शुक्लयजुर्वेदसंहिता वाजसनेयी अध्याय २३ मंत्र १९.

गुणानान्त्वा गुणपतिꣳहवामहे प्प्रियाणान्त्वाप्प्रियपतिꣳहवामहे निधीनान्त्वा नि-

धिपतिᳬहवामहे वसोमम । आहमजा-
निगर्ब्भधमात्वमजासिगर्ब्भधम् ॥

भा० टी०—। गणानान्त्वेति । (हे मम वसो) मेरे धन श्रीगणेशदेव ! (गणानां पतिं) गणके स्वामी (त्वां) तुमको (हवामहे) बुलाते हैं (प्रियाणां) इंद्रादिदेवताका जो (प्रिय-पतिं) तारकादि दैत्योंके वधसे प्रिय कार्तिकेयादि उनके वि-घ्नके नाश करनेमें समर्थ (त्वां) तुमको (हवामहे) बुलाते हैं (निधीनां निधिपतिं) निधि जो धनादि उनमें जो निधि अर्थात् अनंतफल देनेवाली योगसिद्धि उनके स्वामी तुमको बुलाते हैं हे गणपते ! (अहं त्वया अजानि) हे गणेशदेव ! मुझको तुमने उत्पन्न किया । कैसा मैं हूं (गर्भधं) माताके गर्भसे पैदा हुआ (अज) हे अनादि । (त्वं) तुम (गर्भध-माऽसि) गर्भसे नहीं भये हो भाव गर्भद्वारा परतंत्रतासे मैं जीव और आप गर्भादिरहित स्वतन्त्रतासे प्रकाश हुए ईश्वर हैं इस लिये सर्व जगत् बनानेमें समर्थ हो इति ॥

शु० अध्याय १६ मंत्र २५ ।

ॐ नमोगणेभ्योगणपतिभ्यश्चवोनमोन
मोव्रातेभ्यो व्रातपतिभ्य श्चवो नमोनमो
गृत्सेभ्योगृत्सपतिभ्यश्चवो नमोनमो
विरूपेभ्योविश्वरूपेभ्यश्चवोनमः ॥

भा० टी०–[नमो गणेभ्यो] तुम गणनाम समूहोंको और गणोंके स्वामियोंको नमस्कार है (व्रातेभ्यो) व्रात नाम राशीभूत तुमको और (व्रातपतिभ्यो) राशीभूतोंके स्वामी तुमको प्रणाम है ।(नमा गृत्सेभ्यो) नमस्कार है विघ्नके करनेवालेको वा विषयमें लंपटको वा बुद्धिवाले तुमको (गृत्स-पतिभ्यो नमः) और उनके पालनेवाले तुमको प्रणाम है (नमो विरूपेभ्यो) प्रणाम है अनेकरूपवाले वा कुत्सित रूपवालेवा विशिष्ट रूपवालेको (विश्वरूपेभ्यश्च वो नमः) संपूर्णरूपवाले तुमको प्रणाम है । इति गणेशस्तुतिः ॥

शुक्लयजु० अध्याय ३४ मंत्र ४९ ।

सहस्तोमाः सहछन्दसऽआवृतः सहप्रमाऽऋषयः सप्तदैव्याः । पूर्वेषाम्पन्थामनु दृश्यधीराऽअन्वालेभिरेरथ्योनरश्मीन् ॥

भा० टी०–[सहस्तोमा] (सप्तऋषयः) अर्थात् भरद्वाज १ कश्यप २ गौतम ३ अत्रि ४ विश्वामित्र ५ जमदग्नि ६ वसिष्ठ ७ यह सात ऋषि (पूर्वेषां) प्राचीनोंके (पन्थानं) मार्गको (अदृश्य) देखकर (अन्वालेभिरे) सृष्टिको उत्पन्न करते भये कैसे ऋषि (सहस्तोमाः) सृष्टि करनेकी इच्छावाले (सह-च्छन्दसः) छन्द अर्थात् वेदसहित ज्ञानवान् (आवृतः)

आशब्दसे कर्म उससे युक्त अथवा अपने जो कर्म श्रद्धा सत्य प्रधान उनसे युक्त अर्थात् तपरूप कर्मोंके अनुष्ठान करनेवाले (सहप्रमाः) यथार्थ ज्ञानयुक्त प्रमाण " यथार्थज्ञानं प्रमा " (दैव्याः) जो ब्रह्माकी प्रथम दैवीसृष्टि है और ईश्वरतासे सृष्टि करनेमें समर्थ (धीराः) ज्ञानसृष्टियुक्त (कथं) कैसे (अन्वालेभिरे) सृष्टि करते भये (रथ्योनरश्मीन्) रथ्य जो सारथि जैसे रश्मियोंसे । भाव यह है कि उत्तम साराथि वांछित देशकी प्राप्तिके लिये और घोड़ोंके बांधनेके लिये रश्मियोंको बनाता है । तैसे वह ऋषि कारणोंसे सृष्टि रचते भये । इति मङ्गलस्तुतिः॥

यजु० अध्याय ३४ मंत्र ५ ।

यज्जाग्ग्रंतोदूरमुदैति दैवं तदुसुप्तस्य तथैवैति । दूरङ्गमञ्ज्योतिषाञ्ज्योतिरेकन्तन्मेमनः॑शिवसङ्कल्पमस्तु ॥

भा० टी०–[यज्जाग्रतः] जो जाग्रत अवस्थामें इन्द्रियोंसे (दूरमुदैति) दूरको जाता है कैसा है (दैवं) देवस्वरूप (तदुसुप्तस्य तथैवैति) स्वप्नावस्थामेंभी सूक्ष्मेंद्रियोंसे स्वरचित विषयोंमें भ्रमता है (दूरंगमं) दूरगामी (ज्योतिषां एकं) इंद्रियोंमें प्रधान (ज्योतिः) प्रकाश करनेवाला प्रमाण भगवद्गीताका " इंद्रियाणां मनश्चास्मि " (तन्मे मनः) ऐसा मेरा मन (शिवसंकल्पमस्तु) सत्त्वप्रधान वृत्तिवाला अथवा ब्रह्मलोकादिकोंमें बसनेवाला होवे ॥

यजु० अध्याय ३४ मंत्र ६ ।

येनुकर्माण्यपसो मनीषिणोयज्ञेकृण्वन्तिविदथेषुधीराः । यदपूर्वंयक्षमन्तः प्रजानान्तन्मेमनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥

भा० टी०—[येन कर्माणि] (येन) जिस मनकरके (अपसो मनीषिणः) अप अर्थात् कर्ममें कुशल प्रमाण निघंटु । २ । १ । " अप इति कर्मनाम " (यज्ञ कर्माणि कृण्वन्ति) यज्ञमें कर्मोंको विस्तृत करते हैं कैसे हैं (विदथेषु धीराः) यज्ञादिकोंमें जो पण्डित हैं वा यज्ञसाधन ज्ञानमें (यदपूर्वं) जो अपूर्व अर्थात नित्य वा अद्भुत (यक्षं) पूजने योग्य (प्रजानामंतः) देहोंके अन्तर वर्तनेवाला वह मन शिव संकल्पयुक्त हो ॥

यजु० अध्याय ३४ मंत्र ७ ।

यत्प्रज्ञानमुतचेतोधृतिश्चयज्ज्योतिरन्तरमृतम्प्रजासु । यस्मान्नऽऋतेकिञ्चनकर्मक्रियते तन्मेमनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥

भा० टी०—[यत्प्रज्ञानमिति] (यत्प्रज्ञानं) जो मन बुद्धिरूप (उत) समुच्चयसे (चेतः) चेतनतासे स्मरणात्मक ज्ञान (धृतिश्च) धैर्यरूप (ज्योतिरन्तः) इंद्रियोंके प्रकाश करनेवाला प्र०— " सुखं दुःखं धृतिरधृतिः संशयं विपर्यकामः

सर्वं मन एवेति श्रुतिः "प्रजासु (अमृतं) विनाशि शरीरोंमें जो अमृत अर्थात् नित्य (यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते) जिसके विना कोई काम नहीं किया जाता वह मेरा मन शिवसंकल्पवाला होवे ॥

शुक्ल यजुर्वेद अध्याय ३४ मंत्र ८ ।

येनेदम्भूतं भुवनम्भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम् । येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥

भा० टी०—[येनेदमिति] (येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतं) जिसने वर्तमान भूत भविष्यत् तीन कालोंमें संपूर्ण भुवनकोश जाना है कैसेने (अमृतेन) नित्यने (येन सप्तहोता यज्ञस्तायते) जिस मनने सप्त हैं होता जिसमें ऐसा अग्निष्टोम नाम यज्ञ विस्तृत करा वह मेरा मन शिवसङ्कल्पवाला होवे ॥

यजु० अध्याय ३४ मंत्र ९ ।

यस्मिन्नृचः साम यजूᳬषि यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः । यस्मिँश्चित्तᳬ सर्वमोतम्प्रजानान्तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥

भा० टी०—[यस्मिन्नृचः] (सामयजूंषि) अर्थात् जिसमें ऋक् यजु सामवेद (प्रतिष्ठिता) आश्रित है (रथनाभौ आरा इव) रथके चक्रकी नाभिमें आरकी नाईं (यस्मिन् सर्वं प्रजानां चित्तं ओतं) जिसमें संपूर्ण प्रजाका चित्त सम्बद्ध है ऐसा मेरा मन शिवसंकल्पयुक्त हो ॥

यजुर्वेद शु० अध्याय ३४ मंत्र १० ।

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिनऽइव । हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥

भा० टी०—(यन्मनुष्यान्नेनीयते) जो मन मनुष्यलोकसे लेकर सर्व देव दानव ऋषि इत्यादि स्थूल सूक्ष्म जीवोंको श्रेष्ठ और निषिद्ध कर्ममें लगाता है । किसकी तरह (सुषारथिरभीशुभिर्वाजिनः अश्वान इव) श्रेष्ठसारथी रश्मिसे वेगवाले अश्वोंको मार्गमें निवृत्त और जैसे प्रवृत्त करे (यत् हृत्प्रतिष्ठं) जो मन हृदयगत है (अजिरं) नित्य है (जविष्ठं) अतिशय वेगवाला वह मेरा मन शिवसंकल्पयुक्त होवे ॥ १० ॥

इति शिवसङ्कल्पव्याख्या सम्पूर्णा ॥

अथ स्वस्तिवाचनम् ।

यजु० अध्याय २५ कं० १८ ।

स्वस्ति नऽइन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ॥ स्वस्ति नस्तार्क्ष्योऽ

रिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ १ ॥

भा० टी०—बडी कीर्तिवाला इन्द्र हमारे अविनाशी शुभको देवे और सर्व धनोंका स्वामी पूषा हमको स्वस्ति देवे नहीं नष्ट भई चक्रधारा वा पक्ष जिसके ऐसा रथ वा गरुड हमको स्वस्ति देवे और देवताओंका गुरु बृहस्पतिजी हमको स्वस्ति अर्थात् कल्याणको देवे ॥ १ ॥

यजुर्वेद अध्याय ३६ कंडिका ३६ ।

पयः पृथिव्याम्पय ऽओषधीषु पयो दिव्य न्तरिक्षे पयो धाः । पयस्वतीः प्प्रदिशः सन्तु मह्यम् ॥ २ ॥

भा० टी०—हे अग्निदेव ! तुम पृथिवीमें पय नाम रसको धारण करो और औषधि अन्नादिमेंभी रसको दे " औषध्यः फलपाकान्ता " इति । इस प्रकार स्वर्गमें और अंतरिक्ष आकाशमें रसको स्थित कर परंतु मेरे लिये दिशा और बिदिशा पयस्वती नाम रसयुक्त होवें यह प्रार्थना करता हूं ॥ २ ॥

यजु० अध्याय ५ कंडिका २१ ।

विष्णो रराटमसि विष्णोः श्नप्त्रे स्थो विष्णोः स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवोसि वैष्णवमसि विष्णवे त्वा ॥ ३ ॥

भा० टी०—हे दर्भरूप विष्णु ! तुम हविर्धान मण्डपके ललाटस्थान हो, हे रराटचन्त ! तुम विष्णु नाम हविर्धान मण्डपके (श्नप्त्रेस्थः) ओष्ठकी सन्धिरूप हो, हे लस्यूजनि अर्थात् बृहत्सूची ! तुम विष्णुनाम हविर्धान मण्डपकी सूची हो, हे रज्जुग्रन्थि ! तुम हविर्धानकी ध्रुवनाम ग्रंथि हो, हे हविर्धान ! तुम विष्णुसंबंधी हो इसलिये अर्थात् विष्णुसंबंधी होनेसे आपकी स्तुति करता हुआ स्पर्श करता हूं ॥ ३ ॥

यजु० अध्याय १४ कंडिका २० ।

अग्निर्देवता वातो देवता सूर्य्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवतादित्या देवता मरुतो देवता विश्वेदेवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता ॥ ४ ॥

भा० टी०—हे हविर्धान ! और जो तुम अग्नि वायु सूर्य चंद्रमा वसु ८ रुद्र ११ आदित्य १२ मरुत ४९ विश्वेदेवा १३ बृहस्पति इन्द्र वरुण इत्यादि देवतास्वरूप हो इसलिये आपकी स्तुति वा स्पर्श करता हूं ॥ ४ ॥

यजु० अध्याय ३६ कंडिका १७ ।

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः

वनुस्पतंयुःशान्तिर्विश्श्वेदेवाःशांतिर्ब्रह्म शान्तिःसर्वःशान्तिःशान्तिरेवशान्तिः सामाशांतिरेधि ॥ ५ ॥

भा० टी०—स्वर्गरूप जो शांति और आकाशरूप जो शांति पृथिवीरूप जो शांति जलरूप जो शांति औषधीरूप जो शांति वृक्षरूप तथा सर्वदेवरूप और शांतिस्वरूप जो शांति वह मेरेको हे गणेशदेव ! आपकी प्रसन्नतासे होवे ॥ ५ ॥

यजुर्वेद अध्याय ३० अनु० १ मंत्र ३ ।

विश्श्वानिदेवसवितर्दुरितानिपरासुव ॥ यद्भद्रन्तन्नऽआसुव ॥ ६ ॥

भा० टी०—हे अंतर्यामी सूर्यदेव ! तुम मेरे संपूर्ण पापको दूर ले जाओ अर्थात् नष्ट करो और जो कल्याण है वह मुझको देवो । सूर्यभगवानको अन्तर्यामी होनेमें प्रमाण— " आदित्यचन्द्रावनिलोऽनिलश्च द्यौर्भूमिरापो हृदयं यमश्च । अहश्च रात्रिश्च उभे च सन्ध्ये धर्मोऽपि जानाति नरस्य वृत्तम् ॥" इति नीतौ । "सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च" इति श्रुतिः ॥ ६ ॥

यजुर्वेद अध्याय १६ अनु० ७ मंत्र ४८ ।

इमारुद्रायतवसेकपर्दिनेक्षयद्वीरायप्रभरामहेमतीः ॥ यथाशमसद्विपदेचतुष्पदे विश्श्वंपुष्टङ्ग्रामेऽअस्मिन्ननातुरम् ॥ ७ ॥

भा० टी०—(तवसे) बलवान् (कपर्दिने) जटिल (क्षयद्वीराय) शूरवीरों युक्त वा शूरवीरोंके नाश करनेवाले और (द्विपदे) पुत्रोंके देनेवाले (चतुष्पदे) चौपाये नाम पशुओंके देनेवाले जो महादेव उनसे जैसे इस ग्राममें सुख और संपूर्ण लोक सुखी नीरोग होवें तैसे मतिको समर्पण करते हैं अर्थात् प्रार्थना करते हैं ॥ ७ ॥

यजु० अध्याय २ मंत्र १२ ।

एतन्तेदेवसवितर्य्यज्ञम्प्राहुर्ब्बृहस्पतयेब्ब्रह्मणे ॥ तेनयज्ञमवतेनयज्ञपतिन्तेनमामव ॥ ८ ॥

भा० टी०—हे सर्वान्तर्यामी सूर्यदेव ! यह किया हुआ यज्ञ तुमारे लिये यजमान लोक कहते हैं किञ्च तुमारेसे प्रेरित देवोंके यज्ञमें जो ब्रह्मा बृहस्पति उसके लियेभी कहते हैं और अपना जान यज्ञरक्षा करो और ब्रह्मारूप जो मैं मुझकोभी रक्षा करो ॥ ८ ॥

सुप्रतिष्ठितावरदा भवन्तु देवाः ॥ १० ॥
इति स्वस्तिवाचनम् ॥

भा० टी०—सत्कार किये हुए देवतालोकभी वरके दाता होवें ॥ १० ॥ इति श्रीस्वस्तिवाचनम् ॥ " ॐकारपूर्वं हि

योगोपासनं यानि नित्यानि कर्माणि . " इत्यादि श्रुतिसे ॐपूर्वक सर्व मंत्रोंका उच्चारण करना चाहिये ॥

इति श्रीकर्पूरस्थलनिवासिदैवज्ञदुर्गानचंद्रात्मज (शौरि) पंडित-विष्णुदत्तकृतटीकायां पंचमं प्रकरणं समाप्तिमगात् ॥ ५ ॥

अथ विवाहविधौ षष्ठं प्रकरणम्.

ॐ स्वस्ति श्रीगणेशाय नमः । अथ विवाहः ॥ तत्र कन्याहस्तेन षोडशहस्तपरिमितं मण्डपं विधाय तद्दक्षिणस्यां दिशि पश्चिमां दिशमाश्रित्य मण्डपसंलग्नमुत्तराभिमुखं कौतुकागारं च मण्डपाद्बहिरैशान्यां जामातृचतुर्हस्तपरिमितां सिकतादिपरिष्कृतां वेदींश्च कारयेत् ॥

भा० टी०–स्वस्तिवाचनके अनन्तर विवाहविधि लिखते हैं कि कन्याहस्तपरिमाणके सदृश १६ हाथका मण्डप बनाकर उसकी दक्षिणकोणमें पश्चिमदिशाको ले अर्थात् निर्ऋतिकोणमें उत्तराभिमुख जाने आनेके लिये और कुलरीति करनेके लिये कौतुकागार बनावे और मण्डपके बाहर साथ मिलना ईशानकोणमें जामातृ (जवाई) के चार हस्त परिमिता तृष (तुह) केश (रोम) शर्करादि निषिद्ध वस्तुओंसे रहित अर्थात् शुद्ध

अग्निस्थापनके लिये चार थंभोंवाली वेदीको बनवावे और विवाहमें तिलकनाम मण्डल रचना । " विवाहादौ लिखेन्नित्यं तिलकं नाम मण्डलम् । " इस कात्यायनजीके प्रमाणसे तिलकमण्डलका लक्षण लिखते हैं-" सूर्यादयो ग्रहा यत्र राजन्ते मध्यसंस्थिताः । इन्द्रादयः प्रतिदिशं स्वस्वभावेष्ववस्थिताः ॥ बहिः शिवसुताद्याश्च सर्वतोभद्रमुच्यते । विघ्नराजो भवेद्यत्र मध्ये नान्यस्तु कश्चन ॥ सुमहत्सुन्दरञ्चैव तिलकं नाम मंडलम् । गृहारामप्रतिष्ठायां दुर्गाहोमे नवग्रहे । सर्वतोभद्रकं कुर्यान्मण्डपे तिलकं लिखेत ॥ " इत्यादि वेदी बनानेकेभी बहुत प्रमाण हैं परंतु विस्तारके भयसे लिखे नहीं जाते ॥

विवाहदिने कृतनित्यक्रियेण जामातृपित्रा मातृपूजापूर्वकं आभ्युदयिकश्राद्धं कर्तव्यम् ॥ कन्यापिता स्नातः शुचिः शुक्लांबरधरः कृतनित्यक्रियो मातृपूजाभ्युदयिके कृत्वा अर्हणवेलायां[१] मण्डपे प्रत्यङ्मुखः प्राङ्मुखं वरमूर्ध्वजानुं तिष्ठंतं संबोध्य ॥ ततः स्वस्तिवाचनं गणेशकलशादिपूजनं च कृत्वा ॥

भा० टी०-विवाहके दिन वरके पिताने नित्यक्रिया संध्यो-

१ अर्हणवेलाका समय ज्योतिःशास्त्रोक्त जानना ।

पासन पंचमहायज्ञादि मातृपूजापूर्वक आभ्युदयिक नांदि-श्राद्ध करना चाहिये । कन्याका पितामी स्नान कर पवित्र हो नित्यक्रिया कर धौतवस्त्र धार षोडशमातृपूजा नांदीमुखश्राद्ध कर पूजनकालमें मण्डपमें पश्चिमाभिमुख हो ऊर्ध्वजानु प्राङ्-मुख बैठे वरको संबोधन कर स्वस्तिवाचन कलशपूजन गणे-शादिपूजन करे । विवाहमें अवश्य नांदीमुखश्राद्धके करनेमें प्रमाण–" कन्यापुत्रविवाहेषु प्रवेशे नववेश्मनि । चूडाकर्मणि बालानां नामकर्मादिके तथा ॥ सीमन्तोन्नयने चैव पुत्रादिमुख-दर्शने ।" इत्यादि बहुत प्रमाण हैं । "सर्ववृद्धौ हि पितरः पूज-नीयाः प्रयत्नतः ।" इति शातातपः । इसकी प्रक्रिया श्राद्धविवे-कमें लिखी है । याज्ञवल्क्यजी सूक्ष्मतासे लिखते हैं–" एवं प्रदक्षिणावृत्को वृद्धौ नान्दीमुखान्पितॄन् । यजेत दधिकर्कन्धु-मिश्रान्पिण्डान्यवैः क्रियेति ॥" प्रथमाध्याये श्राद्धप्रकरणे ॥

साधु भवानास्तामिति प्रजापतिर्ऋषिर्ब्रह्मा देवता यजुश्छंदो वरार्चने विनियोगः । ॐ साधुभवानास्तामर्चयिष्यामो भवंतमिति ब्रूयात् । ॐ अर्चयेति वरेणोक्ते वरोपवेश-नार्थे शुद्धमासनं दत्त्वा विष्टरमादाय ॐ विष्टरो विष्टरो विष्टर इत्यनेनोक्ते ॐ विष्टरः प्रतिगृह्यतामिति दाता वदेत् । ॐ विष्टरं प्रतिगृह्णामीत्यभिदाय वरो विष्टरं गृहीत्वा ॥

भा० टी०—'साधुभवान्' इस मंत्रका प्रजापति ऋषि ब्रह्मा देवता यजु छंद वरके पूजनमें विनियोग है । विनियोग विना मंत्रोच्चारणमें दोष लिखते हैं—" विनियोगं विना मंत्रः पङ्के गौरिव सीदति । " इसलिये मंत्रोच्चारणके प्रथम विनियोग करना चाहिये इसका लक्षण जैसे " ऋषिच्छंदो देवता च कर्मणि विनियोजनम् । विनियोगः स आदिष्टो मंत्रे मंत्रे प्रयुज्यते ॥ " (मंत्रार्थ) आप साधु श्रेष्ठ वृत्तिवाले होवें हम तुमारेको पूजन करते हैं । पूजनीय षट् ६ पुरुष होते हैं जैसे पारस्करजी लिखते हैं—" षडर्घ्या भवन्त्याचार्य ऋत्विग्वैवाह्यो राजा प्रियः स्नातक इति, प्रतिसंवत्सरानर्हयेयुर्यक्ष्यमाणास्त्वृत्विजः " इति । याज्ञवल्क्यस्मृतिमें जैसे—" प्रतिसंवत्सरं त्वर्घ्याः स्नातकाऽऽचार्यपार्थिवाः । मित्रः प्रियो विवाह्यश्च यज्ञं प्रत्यार्त्विजः पुनः ॥ " अर्थात् स्नातक १ गुरु २ राजा ३ मित्र ४ वर ५ ऋत्विक् ६ ये पूज्य होते हैं । पूजन करें ऐसे वर कहनेके अनंतर बैठनेके लिये वरको शुद्ध आसन देकर विष्टरको हाथमें ले ' विष्टरो विष्टरो विष्टरः ' ऐसे कहकर विष्टर ग्रहण कीजिये यह दाता वरको कहै । विष्टर ग्रहण करता हूं ऐसे वर कहे विष्टर हाथमें ले आगेका मंत्र पढे । विष्टरका लक्षण लिखते हैं—" पंचाशता भवेद्ब्रह्मा तदर्धेन तु विष्टरः । ऊर्ध्वकेशो भवेद्ब्रह्मा लम्बकेशस्तु विष्टरः ॥ दक्षिणावर्तको ब्रह्मा वामावर्तस्तु विष्टरः । विष्टरं सर्वयज्ञेषु लक्षणं परिकीर्तितम् ॥ "

वर्ष्मोऽस्मीत्याथर्वणऋषिर्विष्टरो देवताऽनुष्टुप्छंदः

उपवेशने विनियोगः ॥ ॐ वर्ष्मोऽस्मि समानाना- मुद्यतामिवसूर्यः । इमंतमभितिष्ठामियोमाकश्चाभि- दासति ॥ इत्यनेन आसने उत्तराग्रविष्टरोपरि वर उपविशति ॥

भा० टी०—(वर्ष्मोऽस्मि) इस मंत्रका अथर्वण ऋषि अनुष्टुप् छन्द विष्टर देवता वरके बैठनेमें विनियोग है । (मंत्रार्थ) जैसे नक्षत्रतारागणके मध्यसे सूर्य भगवान् श्रेष्ठ है । तद्वत् अपनी जातिमे हम श्रेष्ठ हैं जो मेरा तिरस्कार करनेके यत्न करता है उसको और इस विष्टरको पादमें रखकर स्थित है इस मंत्रसे उत्तराभिमुख विष्टरपर बैठ जावे ॥

ॐ पाद्यं पाद्यं पाद्यमित्यनेनोक्ते पाद्यं प्रति- गृह्यतामिति दाता वदेत् । पाद्यं प्रतिगृह्ण- मीत्याभिधाय वरः । ॐ विराजोदोहोसि विराजोदोहमशीयमयिमाद्यायै विराजोदोहः इति दक्षिणं चरणं प्रक्ष्याल्यानेनैव क्रमेण वामचरणप्रक्षालनम् ॥

भा० टी०—'पाद्यं पाद्यं पाद्यं' ऐसे अन्यपुरुषके कहनेके अनंतर पाद्यग्रहण कीजियो यह दाता कहे पश्चात् पाद्यको ग्रहण करता हूं यह वर कहे । 'विराजो दोहोसि' इस मंत्रका प्रजापति ऋषि अनुष्टुप् छन्द जलदेवता पादके प्रक्षालनमें विनियोग

है (मंत्रार्थ) हे जल ! तुम विशिष्टदीप्ति परमात्माका दोह नाम रसमारूप हो इसलिये हे जल ! आपको ग्रहण करते हैं किञ्च हे विराजोदोह अर्थात् मंत्रसंस्कृत जल मेरे चरणके प्रक्षालनके योग्य हो । मंत्रपाठसहित दक्षिणपाद धोवे अनंतर वामपाद धोवे । यहां मत्रके अंतमें विधान नहीं । और ब्राह्मणवरका प्रथम दक्षिणपाद प्रक्षालन करना (धोना) और क्षत्री वैश्योंका प्रथम वामचरण प्रक्षालन करनाचाहिये, प्रमाणगृह्यसूत्रे 'सव्यं पादं प्रक्षाल्य दक्षिणं प्रक्षालयति ब्राह्मणश्चेद्दक्षिणं प्रथमम्' औरभी " ब्राह्मणो दक्षिणं पादं पूर्वं प्रक्षालयेत सदा । क्षत्रादिः प्रथमं वाममिति धर्मानुशासनम् ॥ " यह पद्मपुराणमें लिखाहै॥

ततः पूर्ववद्विष्टरान्तरं गृहीत्वा चरणयोरधस्तात उत्तराग्रं वरः कुर्यात । ततो दूर्वाक्षतफलपुष्पचंदनयुतार्घपात्रं गृहीत्वा यजमानः ॥ ॐ अर्घ इत्यादिविष्णुर्ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो विष्णुर्देवता अर्घदाने विनियोगः ॐ अर्घोऽर्घोऽर्घ इत्युक्तेऽन्येनार्घः प्रतिगृह्यतामिति दाता वदेत् । ॐ अर्घं प्रतिगृह्णामीत्यभिधाय । वरो यजमानहस्तादर्घं गृहीत्वा । आपः स्थ इत्यादिमंत्रस्य सिन्धुद्वीपऋषिरनुष्टुप्छन्दोऽर्घोक्षतादिधारणे विनियोगः ॥

ॐ आपःस्थयुष्माभिः सर्वान्कामानवाप्नु-
वानिति शिरसि किञ्चिदक्षतादिकं धृत्वा ॥

भा० टी०-पूर्वोक्तवत् और विष्टरको उत्तराग्र चरणके नीचे रखकर इसके अनंतर दूर्वा (नवीन तृण) अक्षत तण्डुल चंदन पुष्पयुक्त यजमान अर्घपात्रको लेकर ॐ अर्घ इस मंत्रका विष्णु ऋषि त्रिष्टुप् छंद विष्णु देवता अर्घके दानमें विनियोग है। यथार्थ ज्ञान होनेसे उत्तम ज्ञान होता है इस-लिये विष्टर पाद्य अर्घ्य आचमनीय आदिका तीन तीन वार उच्चारण करना चाहिये प्रमाणभी गृह्यसूत्रमें लिखा है जैसे- " अन्यास्त्रिस्त्रिः प्राह विष्टरादीनि " अर्घ ३ हैं यजमानवाक्यके अनंतर अर्घको स्वीकार कर यजमानके हाथसे लेकर आपःस्थ इस मंत्रका सिंधुद्वीप ऋषि अनुष्टुप् छंद अर्घअक्षताधारणमें विनियोग है [मंत्रार्थ] हे जलदेवता! जिस हेतुसे तुम अमृत दुग्ध दधि मधु फल पुष्प पत्र यव अन्नादि सर्ववस्तुमें व्याप्त है इसलिये तुमारे आश्रय हो हम संपूर्ण कामनाको प्राप्त होवें इस मंत्रसे किंचित् शिरमें अक्षत धारण करे ॥

समुद्रं वं इत्यादिमंत्रस्याथर्वणऋषिर्बृहती-
छन्दो वरुणो देवताऽर्घजलप्रवाहे विनियोगः
ॐसमुद्रं वःप्रहिणोमिस्वांयोनिमभिगच्छत।
अरिष्टास्माकं वीरामापरासेचिमत्पयः ॥
इत्यर्घपात्रस्थजलमैशान्यां त्यजन् पठेत् ।

तत आचमनीयमादाय यजमान आचमनीयमाचमनीयमाचमनीयमित्यन्येनोक्ते आचमनीयं प्रतिगृह्यतामिति दाता वदेत् ॥ आचमनीयं प्रतिगृह्णामीत्यभिधाय वरो यजमानहस्तादाचमनीयं गृहीत्वा ॥

भा० टी०–(समुद्रं व) इस मंत्रका अथवर्ण ऋषि बृहती छंद वरुण देवता अर्घजलके गेरनेमें विनियुक्त है (मंत्रार्थ) हे जलदेवता ! सिद्ध किया अर्थ जिन्होंने ऐसे तुमको समुद्रमें प्राप्त करता हूं ! अर्थात् कारणताको प्राप्त करता हूं इसलिये मेरे कर प्रेरित तुम (स्वां योनिं) अर्थात् समुद्रको प्राप्त होवे किञ्च तुमारे प्रसन्नतासे हमारे भाई शूरवीर और हमारे पुत्र (अरिष्टा) अर्थात् आरोग्य रहें और मेरी पूजाके योग्य जल मत नष्ट हो अर्थात् सदा रहे और मैंभी पूजाको प्राप्त होवे । इस मंत्रको ईशानदिशामें जलको त्यागन करता जलको पढे इसके अनन्तर आचमनीयको यजमान लेकर आचमनीय इस मंत्रका आपस्तम्ब ऋषि उष्णिक् छंद जल देवता आचमनीयके देनेमें विनियोग है । यह आचमनीय है ३ ऐसे अन्य पुरुषके वचनसे आचमनीय ग्रहण करो यह दाता वरको कहे । पश्चात् वर आचमनीय ग्रहण करता हूं यह कहकर यजमानके हाथसे आचमनीय लेकर ॥

आमागन्निति परमेष्ठी ऋषिर्बृहती छन्द आपो

देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः ॥ ॐ आमागन्यशसास२ँसृजवर्च्चसातम्माकुरुप्रियं प्रजानामधिपतिंपशूनामरिष्टंतनूनां ॥ इत्यनेन सकृदाचामेत् द्विस्तूष्णीं आचामेत्। ततो यजमानःकांस्यपात्रस्थदधिमधुघृतानि समादायान्येन कांस्यपात्रेण पिधाय कराभ्यामादाय। मधुपर्कोति मधुच्छन्द ऋषिर्बृहती छन्दो मधुभुक् देवता मधुपर्कदाने विनियोगः ॥ ॐ मधुपर्को मधुपर्को मधुपर्क इत्यनेनोक्ते ॐ मधुपर्कः प्रतिगृह्यतामिति वदेत् ॐ मधुपर्कं प्रतिगृह्णामीत्यभिधायैव वरः। ॐ मित्रस्येति प्रजापतिर्ऋषिः पंक्तिच्छन्दो मित्रो देवता मधुपर्कदर्शने विनियोगः ॥ ॐ मित्रस्यत्वा चक्षुषा प्रतीक्ष्य इति दातृकरस्थमेव मधुपर्कं निरीक्ष्य देवस्यत्वेति ब्रह्माऋषिर्गायत्री छन्दः सविता देवता मधुपर्कग्रहणे विनियोगः ॥

ॐ देवस्यंत्वासवितुःप्रंसुवेऽश्विनोर्ब्बा

तुभ्यम्पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि। इत्यभिधाय वरो मधुपर्कं गृहीत्वा वामहस्ते कृत्वा ॥

भा० टी०—आमागन् इस मंत्रका परमेष्ठी ऋषि बृहती छंद जल देवता जलके स्पर्शन करनेमें विनियोग है। (मंत्रार्थ) हे वरुणदेव! तुमारे आश्रित मुझको आप यशस्वी अर्थात् यशसंयुक्त करो किञ्च ब्रह्मतेजसे युक्त करो अर्थात् क्षत्री वैश्यकोभी स्वतेजसे युक्त करो। और महात्मापुरुषोंकी मित्रतासे तथा पशुओंका मालिक और सुखी करो इस मंत्रसे वर एक आचमन करे फिर दो चुपचाप (तूष्णींसे) आचमन करे अनंतर यजमान कांस्यपात्रमें दधि मधु घृतको पाकर ऊपरसे अन्य कांस्यपात्रसे बंद कर हाथमें लेवे मधुपर्क इस मंत्रका मधुच्छंद ऋषि बृहती छंद मधुभुग्देवता मधुपर्कके देनेमें विनियोग है। मधुपर्कके बनानेमें पराशरजी लिखते हैं कि "सर्पिरेकगुणं प्रोक्तं शोधितं द्विगुणं मधु। मधुपर्कविधौ प्रोक्तं सर्पिषा च समं दधि॥" अर्थात् घृत एकगुणा शहत दो गुणा दधि एकगुणा होना चाहिये। मधुपर्क ग्रहण करे, अनंतर ग्रहण करता हूं यह वर यजमानसे कहे। मित्रस्य इस मंत्रका प्रजापति ऋषि पंक्ति छंद मित्र देवता मधुपर्कदर्शनमें विनियुक्त है। (मंत्रार्थ) हे मधुपर्क! तुमारेको मित्रदेवके नेत्रोंसे देखता हूं। इस मंत्रसे दाताके हाथमेंही स्थित

मधुपर्कको देखे । देवस्य त्वा इस मंत्रका ब्रह्मा ऋषि गायत्री छन्द सूर्य देवता मधुपर्कके ग्रहण करनेमें विनियुक्त है । (मन्त्रार्थ) हे मधुपर्क ! सवितानाम देवताकी आज्ञासे हम तुमारेको अश्विनीकुमारकी बाहु तथा पूष्णः अर्थात् सूर्यदेवके हाथोंसे ग्रहण करते हैं । आशय यह है कि सूर्यदेवकी कृपासे अश्विनीकुमारने दिया है बल जिनको ऐसे बाहुओंसे तद्वत् सूर्यके हाथोंसे ग्रहण करता हूं । इस मंत्रको पढकर वर मधुपर्क ग्रहण कर वाम हाथमें रखकर ॥

ॐनमः श्यावेति प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्रीछन्दः सविता देवता मधुपर्कालोडने विनियोगः ॥ ॐ नमः श्यावास्यायान्नशनेयत्तआविद्धं तत्तेनिष्कृन्तामीति अनामिकयात्रिः प्रदक्षिणमालोड्य अनामिकाङ्गुष्ठाभ्यां भूमौ किञ्चिन्निक्षिप्य पुनस्तथैव द्विः प्रत्येकं निक्षिपेत् । तत आचारान्मधुपर्कं किञ्चित्कन्यायै द्रष्टुं दद्यात् ॥ ॐयन्मधुन इत्यस्य कौत्सऋषिर्जगतीछन्दः मधुपर्को देवता मधुपर्कप्राशने विनियोगः ॥ ॐयन्मधुनो मधव्यंपरमꣳरूपमनाद्यं ॥ तेनाऽहंमधुनो मधव्येनपरमेणरूपेणान्नाद्येनपरमोमधव्यो-

आदोसानि ॥ २ इत्यनेन वारत्रयं मधुपर्क-प्राशनं प्रतिप्राशनान्ते चैतन्मंत्रपाठः ॥ ततो मधुपर्कशेषमसंचरे देशे धारयेत् ॥

भा० टी०—। नमःश्यावेति इस मंत्रका प्रजापति ऋषि गायत्री छंद सविता देवता मधुपर्कके आलोडनमें विनियोग है। (मन्त्रार्थ) हे जठराग्नि ! कपिश अर्थात् धूम्रवर्ण है जिसका और अन्नके पचानेवाले तुमको प्रणाम करते हैं और जो मैंने भोजनकालमें निषिद्ध पदार्थ भक्षण किया वह निकालता हूं। इस मंत्रको पढ अनामिकासे तीन वार प्रदक्षिणा क्रमसे आलोडन कर और अनामिका अंगुष्ठसे पृथिवीपर किंचित २ तीन बार मधुपर्क गेरे अनन्तर लोकाचारसे मधुपर्क किंचित् कन्याके लिये देखनेको भेजे। यन्मधुन इस मंत्रका कौत्स ऋषि जगती छंद मधुपर्क देवता प्राशन करनेमें विनियुक्त है। (मन्त्रार्थ। हे देवगणो ! जो मकरंदका परम उत्कृष्टरूप (अन्नाद्यं) अर्थात् अन्नादिवत् प्राणधारक तिसपर उत्कृष्ट अर्थात् शरीरमें व्याप्तसर्वरूपको प्राप्त हुए रसकरके मैं सबसे श्रेष्ठ मधुपर्कके योग्य अन्नके भोगनेवाला होगा। इस मंत्रको पढ तीन बार मधुपर्क प्राशन करे मंत्रपाठके अनंतर प्राशन करना। शेष रहा मधुपर्क शुद्धभूमि जिसपर पाद न आवे वहां गेर देवे। यह स्थान सूत्रकारके बहुत मत हैं कि शेष मधुपर्क जो पूर्व स्त्रीका पुत्र हो उसको देना वा पूर्वदिशा असंचर स्थानमें गेर देना वा संपूर्ण आप पीना अथवा शेष अपने विद्यार्थीको

देना यथा सूत्रं–" मधुमतीभिर्वा प्रत्यृचं पुत्रायान्तेवासिने उच्छिष्टं दद्यात्सर्वं वा प्राश्नीयात्प्राग्वासंचरे निनयेदिति॥"

ततस्त्रिराचामेद्वरः वाङ्म आस्ये ॥ अस्तु नसोर्मे प्राणोऽस्तु अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु बाह्वोर्मे बलमस्तु ऊर्वोर्मे ओजोऽस्तु अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सन्तु ॥ इति प्रत्येकं सर्वगात्राणि संस्पृशेत् ॥

भा०टी०–सजल हाथसे अंगन्यास करे ।(मंत्रार्थ) वाक् (वाणी) देवता मेरे मुखमें हो और नासिकामें प्राण हो नेत्रोंमें चक्षुरिंद्रिय हो कर्णोंमें श्रोत्रेंद्रिय हो बाहुमें बल हो और ऊरुओंमें ओज हो तथा मेरे संपूर्ण अंग अरिष्ट अर्थात् आरोग्य हों । इस मंत्रसे एक २ अंगको क्रमसे स्पर्श करना । अब जैसे अंगुलीसे चाहिये वह क्रम लिखते हैं । कराग्र अंगुली तीन १, तर्जनी अंगुष्ठ २, मध्यमा अंगुष्ठ ३, अनामिकांगुष्ठ ४, अंगुष्ठकनिष्ठिका ५, सर्वांगुली निमीलन ६ यह क्रमपूर्वक रीति है ॥

ततो यजमानद्वारा गौर्गौर्गौरिति पाठः ॥ अत्र वरयजमानाभ्यां तृणच्छेदनमाचारो न तु विधिः ॥ अत एव पद्धतिषु ॥ ततो वरस्तृणं यजमानेन सह गृहीत्वाऽग्रिममंत्रं पठेत् ॥ माता रुद्राणामिति मंत्रस्य ब्रह्मा

ऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दः सौरिर्देवताऽभिमन्त्रणे विनियोगः ॥ ॐ माता रुद्राणां दुहिता वसूनाᳬ स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः ॥ प्रनुवोचं चिकितुषे जनाय मागामनागामदितिं वधिष्टममचाऽमुष्य च पाप्माहनः ॥ ॐ उत्सृजततृणान्यत्त्वित्युद्धृत्योत्सृजेत् इति ब्रूयात् ॥ उत्सृजेत्तृतामिति तृणं छिन्द्यादित्युत्सृजेत् त्यजेत् ॥

भा०टी०—तदनंतर यजमानद्वारा 'गौर्गौर्गौः' यह तीन बार कहाना यहां वर यजमानका तृणछेदन आचार है विधि नहीं इस लिये पद्धतियोंमें वर यजमानके साथ अग्रिम मंत्र पढे । मातारुद्राणां इस मंत्रका ब्रह्मा ऋषि त्रिष्टुप् छंद सौरि देवता अभिमंत्रणमें विनियोग है । (मंत्रार्थ) श्रीमहारुद्रजी नन्दिकेश्वर रूप कर ऋषियोंसे भयभीत हुए गौके गर्भद्वारा प्रकट भये इसलिये रुद्रोंकी माता है । देवदानवोंको समुद्रमंथनसे श्रांत हुए देखकर विष्णुने समुद्रमंथनद्वारा उत्पन्न की । इसलिये विष्णु और विष्णुके अंश होनेसे वसुओंकी पुत्री है । इसलिये वैष्णवी सुरभी माता यह कहते हैं और नारायणके पुत्र होनेसे आदित्यनाम देवोंकी भगिनी है " नारायणाद्द्वादशादित्याः " इति श्रुतेः । अमृत दुग्धकी नाभी अर्थात् उत्पत्ति स्थान है । और मेरे कर अवश्य गौ है परंतु मेरे और यजमानके पापही

नष्ट हो हिंसा करनेमें प्रायश्चित्त लिखा है । " ब्राह्मणं गां तथा कन्यां हन्यादज्ञानतोऽपि यः । निरये मुच्यते तावद्याव-दिन्द्राश्चतुर्दश ॥ " इसलिये त्याग देनी चाहिये । ॐ मनमें कहकर " उत्सृजत तृणान्यत्तु " यह ऊंचे स्वरसे कहे शंका करते हैं कि गवालम्भभी गौणपक्ष है तो कैसी व्यवस्था चाहिये । इसपर उत्तर, कि गवालम्भनको अस्वर्ग्य और लोक विरुद्ध होनेमें यह वार्ता नाममात्र कहनेसेभी प्रायश्चित्ती होनेसे निषेध है । प्रमाण याज्ञवल्क्य स्मृति अ० १" अस्वर्ग्यं लोक-विद्विष्टं धर्ममप्याचरेन्न तु । " अर्थ-अंतमें दुःखदायक और लोकविरुद्ध धर्मकोभी न करे और यह महापातक है जैसे मनुजी लिखते हैं-" न परं पातकं घोरं कलौ गोहत्यया समम् । " नाममात्रसे प्रायश्चित्त पाराशरजी कहते हैं " कलौ वाङ्मात्रगोमेधो निरयं प्राप्नुयान्नरम् । पितृभिः सह धर्मात्मा नैव कुर्याद्‌नश्वतम् ॥ " और कलियुगमें यह वर्जित है । " गोमेधो नरमेधश्च विवाह गोवधस्तथा । परक्षेत्रे सुतोत्पत्तिः कलावेतानि वर्जयेत् ॥ " इसलिये गौको त्याग दो यह तृणको भक्षण करे और हमारेको पुष्टि हो ॥

ततोवेदिकायांतुषकेशशर्करा भस्मादिरहि-तां चतुरस्रभूमिं कुशैःपरिसमुह्य तानैशान्यां परित्यज्य गोमयोदकेनोपलिप्य स्फ्येन-स्रुवेण वा प्रागग्रप्रादेशमितमुत्तरोत्तरक्रमेण

त्रिरुल्लिख्योल्लेखनक्रमेणाऽनामिकांगुष्ठाभ्यां मृदमुद्धृत्य जलेनाभ्युक्ष्य तत्र तूष्णीं कांस्यपात्रस्थं विहितं वह्निं प्राङ्मुखः प्रत्यङ्मुखमुपसमाधाय तद्रक्षार्थं कांश्चिन्नियुज्य कौतुकागाद्वरः कन्यामानीय मण्डप उपवेश्य अथैनां वासः परिधापयति ॥

भा० टी०—गोरुत्सर्गानन्तर कुशकण्डिका लिखते हैं । तृण केश शर्करा (रेत) भस्मादि निषिद्ध वस्तुसे रहित चारों कोणसे हस्तपरिमाण वेदी बना उसको सवत्सा गौके गोबरसे लेपन कर खड्ग वा स्रुवेसे पूर्वाभिमुख प्रादेश मात्र दक्षिणसे उत्तरकी तरफ तीन वार लिख और रेखा क्रमसे तीन बार अनामिका अंगुष्ठसे मृत्तिका निकाल शुद्ध जलसे अभ्युक्षण कर अनंतर कांस्यपात्रमें अग्नि रखकर ऊपरसे ढक कर तूष्णीं हो प्रत्यङ्मुख बैठ प्राङ्मुख अग्निस्थापन कर उसकी रक्षाके लिये सामिधा रखे । और कौतुकागारसे वर कन्याको लेकर मण्डपमें बैठाय कन्याको वस्त्र पहनावे आगेके मंत्रसे ॥

ॐ जरांगच्छेति मंत्रस्य प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दस्त्वंतवो देवता वस्त्रपरिधाने विनियोगः ॥ ॐ जरां गच्छ परिधत्स्व वासो भवा कृष्टीनामभिशस्ति पावा शतंचजीवशरदः सुवर्चारयिंश्चपुत्राननुसंव्ययस्वायुष्मतीदं प-

रिधत्स्ववासः ॥ इति मंत्रेण परिधानवस्त्रं परिधापयेत् वरः । अथोत्तरीयं वासः समादाय वरोऽग्रिममंत्रेण परिधापयेत् । याऽअकृन्तन्नवयन्याअतन्वतयाश्च देवीइ-त्यादिमंत्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्जगतीछंदोवि-श्वाद्यो देवतावस्त्रधारणेविनियोगः ॥ ॐ याअकृन्तन्नवयन्याअतन्वतयाश्च देव्यस्त-न्तूनभितस्ततंथ । तास्त्वादेवीर्जरसेसंव्यय-स्वायुष्मतीदंपरिधत्स्ववासः ॥ इति मंत्रेण अहतवासो धौतं वा सौत्रंणाच्छादयीनेति श्रुत्यनुसारेण वरोऽप्येतादृशवाससी अत्र परिधत्ते परिधास्यै इत्यादिमंत्राभ्याम् ॥

भा० टी०-[जरां गच्छ] इस मंत्रका प्रजापति ऋषि त्रिष्टुप छन्द तन्तु देवता वस्त्रके पहनानेमें विनियुक्त है (मंत्रार्थ) हे आयुष्मति अर्थात् संपूर्णायुयुक्त ! तुम हमारे साथ निर्दोष जरा अर्थात् बुढापनको प्राप्त हो और मेरे मनको अच्छी प्रतीत होनेवाली हो और क्रूरता कपटताको त्याग श्वशुरादि संबंधियोंसे संकुचित होकर सौम्यस्वभाववाली हो वा स्त्रियोंके मध्यमें तुम श्रेष्ठ हो। और शतवर्ष अर्थात् पूर्णायुपर्यन्त मेरे साथ प्राण धारण करो यह पूर्वोक्तमे जानना चाहिये । और

पतिव्रता हो श्रमसे बडे तेजवाली होकर धन और पुत्रोंको प्राप्त हो । यह मेरे करके दिया हुआ वस्त्र धारण कर । यहां परिधत्स्वपद प्रथम आशंसामें दूसरा प्रेरणामें होनेसे पुनरुक्ति दोष नहीं । इस मंत्रसे वर कन्याको अधोवस्त्र पहनावे या अकृन्तन्न इस मंत्रका प्रजापति ऋषि जगती छंद विधात्री देवता वस्त्रके धारणमें विनियुक्त है । । मंत्रार्थ । जो देवी इस वस्त्रको कातती भई और जो वयाति अर्थात बुनती भई और जो २ देवी सूत्रको तनुती भई तुरी वेमादिसे उस २ माम व्यके देनेवाली देवीलोग निर्दोष दीर्घकाल जीवनके लिये तुमनंको वस्त्र पहनाती है । इस हेतुसे हे आयुष्मति ! इस वस्त्रको उत्तरीय होनेसे धारण करो । इस मंत्रसे नवीन वस्त्र आप धोया हुआ धारण करावे न कि रजकादिसे धौत होवे । इस श्रुति अनुसार वरभी अधोवस्त्र उत्तरीय वस्त्रको धारण करे परिधास्यै इत्यादि मंत्रोंसे ॥

परिधास्यै इत्यादिमंत्रस्याथर्वण ऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दः तन्तवो देवता वासःपरिधाने विनियोगः । ॐ परिधास्यैयशोधास्यैदीर्घायुत्त्वायजरदष्टिरस्मि । शतञ्चजीवामिशरदः पुरूचीरायस्पोषमभिसंव्ययिष्ये इति पठित्वा वरः परिधत्ते (अथोत्तरीयमाच्छादयतीति सूत्रं) ॐ यशसे इत्यादिमंत्रस्य प्रजापति-

ऋषिर्जगती छन्दो विधात्र्यो देवता वासो-
धारणे विनियोगः ॥ ॐ यशसामाद्यावापृ-
थिवीयशसेन्द्रायबृहस्पतिः यशो भगश्चमा-
विदद्यशोभाप्रतिपद्यतामिति पठित्वोत्तरीयं
परिधत्ते॥ततः कन्याया वरस्य च द्विराचमनम्॥

भा० टी०—[परिधास्यै] इस मंत्रका अथर्वण ऋषि त्रिष्टुप् छन्द तन्तु देवता वस्त्रके धारणमें विनियोग है। (मंत्रार्थ) हे वस्त्रदेवता ! तुमारेको अनेक श्रेष्ठ वस्त्र धारणके लिये तथा यशकीर्तिके लिये और निर्दुष्ट चिरकाल जीवनके लिये तुमारी कृपासे पूर्णायुके भोगनेवाला मैं बहुपुत्र धनादियुक्त धनके देनेवाले तुमको धारण करता हूं और तुमारे संबंधसे शतवर्ष जीवित रहा। इस मंत्रको पढकर अधोवस्त्र धारण करे। आगेके मंत्रसे उत्तरीय। जैसे यशसा इस मंत्रका प्रजापति ऋषि जगती छन्द विधात्री देवता वस्त्रधारणमें विनियोग है। (मंत्रार्थ) हे वस्त्रदेवता ! यशसे युक्त आकाश पृथिवी तथा यशयुक्त इंद्र बृहस्पति तद्वत् यशयुक्त सूर्य मुझको जाने और उन्हका सम्पादन किया यश मुझको प्राप्त हो इस मंत्रसे उत्तरीय धारण करे अनन्तर कन्याः और वरको दो वार आचमन करना चाहिये एक अधोवस्त्र धारण कर द्वितीय उत्तरीय धारण कर प्रमाण जैसे याज्ञवल्क्यस्मृति अध्याय १८। "आचान्तः पुनराचामेद्वासो विपरिधाय च।" अर्थ—आचमन किया हुआ फिर आचमन करे वस्त्रको धारण करकेभी इति॥

ततः कन्याप्रदेन परस्परं समञ्जेथामिति प्रेषितयोः परस्परं सम्मुखीकरणम् ॥ समञ्जन्त्विति मंत्रस्य अथर्वण ऋषिरनुष्टुप् छन्दो विश्वेदेवा देवता मैत्रीकरणे विनियोगः । ॐ समञ्जन्तु विश्वेदेवाःसमापोहृदयानिनौ॥ सम्मातरिश्वासंधातासमुदेष्ट्री दधातुनः ॥ इति वरः पठन् ॥ ततः कन्याप्रदकर्तृकग्रन्थिबन्धनम् ॥ हस्तलेपनं शाखोच्चारणम् ॥

भा० टी०—अनंतर यजमानद्वारा कन्यावरकी मैत्री करावें। समंजंतु इस मंत्रका अथर्वण ऋषि अनुष्टुप् छन्द विश्वेदेवा देवता मैत्री करनेमें विनियुक्त है । (मंत्रार्थ) हे कन्ये ! संपूर्ण देवता तथा शुद्ध जलसे तुम्हारे हमारे मनको गुणातिशय द्वारा संस्कार करे अर्थात् दुष्टवासनासे रहित शुद्ध करे तद्वत् अनुकूल प्रजापति और उपदेशके करनेवाली सावित्री (गायत्री) देवताभी हमारी तुम्हारी बुद्धि धर्म अर्थ काम मोक्षमें लगावे इस मंत्रको वर पढे । शंका करते हैं कि वरको कन्या इस शब्दसे कहना उचित नहीं कि उनकी जो पुरुष स्त्रीको माता का भगिनी वा कन्या कहे उसको प्रायश्चित्त करना लिखा है । उत्तर—यद्यपि तुमारा कथन सत्य है तथा इस कालपर्यंत और स्त्रियोंके समान यहभी कन्याही थी वरकाभी कुछ संबंध नहीं

था और वाग्दानके अनंतरभी कन्याही कही जाती है तथा प्रमाण "वरदानोचिता कन्या" फिर पाणिग्रहणके अनंतर यह वधूशब्दसे कही जावेगी " स्वसत्वनिवृत्तपरसत्वोपादानात् " इस न्यायसे हम प्रमाण सूत्रकारकाभी देते हैं—"सुमङ्गलीरियं वधूरिमा समेत पश्यत सौभाग्यमस्यै दत्त्वा याथास्तं विपरेत नेति" और नारदस्मृतिकाभी प्रमाण जैसे—"दशवर्षा भवेत्कन्या सम्प्रदाने वधूर्भवेत । सांगुष्ठग्रहणे भार्या पत्नी चातुर्थकर्मणि ॥" अनंतर यजमानद्वारा द्रव्य पुष्प अक्षतादि कन्याके वस्त्रमें रखकर बांध कन्याके वस्त्रको वरके वस्त्रसे बांधे जिसको लोक गठजोरन कहते हैं प्रमाणभी जैसे योगियाज्ञवल्क्यजीका "कन्यकामुदशे पार्श्वे द्रव्यपुष्पाक्षतानि च । निक्षिप्य नवीन संबध्वा वरवस्त्रेण संयुजेत् ॥ वस्त्रैः संयोज्य तौ पूर्वं कन्यादानं समाचरेत । दानेन युक्तयोः पश्चाद्दद्यात्पाणिपीडनम् ॥" इति । अनंतर कन्याके हाथोंमें उद्वर्तन (उबटना) लगाना ॥

दाता शंखस्थदूर्वाक्षतफलपुष्पचन्दनजलान्यादाय ॥ अथ कन्याप्रदः जामातृदक्षिणकरोपरिकन्यादक्षिणकरं निधाय ॥ दाताऽहं वरुणो राजा द्रव्यमादित्यदैवतम् ॥ विप्रोऽसौ विष्णुरूपेण प्रतिगृह्णात्वयं विधिः ॥ इति दाता पठेत् ॥ गोत्रोच्चारणं च कुर्यात् ॥ विप्रातिरिक्तपक्षे विप्रोऽसावित्यत्र वरोऽसा-

तानि पठेत् ॥ ॐ स्वस्तीति वचनमुक्त्वा द्यौस्त्वा ददातु पृथिवी त्वा प्रतिगृह्णात्विति मंत्रेण कन्याहस्तं वरः प्रतिगृह्णीयात् ॥ ततः कन्याप्रदः अद्य कृतैतत्कन्यादानयथोचितफलावाप्तये कन्यादानप्रतिष्ठार्थमिदं हिरण्यमग्निदैवतममुकगोत्रायाऽमुकशर्मणेब्राह्मणाय वराय दक्षिणां तुभ्यमहं सम्प्रददे इति दक्षिणां गोमिथुनं वा दद्यात् ॥ ततः स्वस्तीति वरः प्रतिब्रूयात् ॥

भा०टी०—वस्त्रग्रंथि बंधनके अनंतर कन्यादान लिखते हैं यजमान अंजलिमें दूर्वाक्षता फल पुष्प चंदन जल लेकर दाता वरके दक्षिण हाथपर कन्याका दक्षिण हाथ रखे पूर्वोक्त (मंत्रार्थ) ब्रह्मणरूप मैं यजमान और मेरे संकल्परूप यह द्रव्य विष्णुरूप वर यह विधि ग्रहण करे इस मंत्रको दाता पढे स्वस्ति हो ऐसे वर कहे । (मंत्रार्थ) आकाश तुमारेको देता है और पृथिवी ग्रहण करती है इस मंत्रसे कन्याका हाथ वर ग्रहण करे अनंतर आज किये कन्यादानकी शास्त्रविहित स्वर्गादि प्राप्तिके लिये यह सुवर्ण अग्निदेवसंबंधि अमुकशर्मादि वरको दक्षिणासे देता हूं वा गौ दो वत्ससहित देता हूं। इसके अनंतर तुमको कल्याण हो ऐसे वर कहे । और संकल्पकी विधि

बृहत्पाराशरजी लिखते हैं–"कन्यादानसमारकमें दाता अंजलिं समाददेत् । दूर्वाक्षतफलं पुष्पं चंदनं जलमेव च ॥" इत्यादि संपूर्ण विधानको विस्तृतके भयसे नहीं लिखते । और जगह संकल्पपूर्वकं कन्यादान लिखा हुआ है । स्वस्तीति इस स्थान आचारसे और संबंधी पुरुषभी सुवर्ण कर रजत ताम्र गौ महिषी ग्राम पृथिवी यौतुक होनेसे कन्याको यथाशक्ति देते हैं । कहीं होमके अनंतर कहीं २ वधू वरके विसर्जन अनंतर वस्त्रादि दान करते हैं। यह सब अपने २ देशाचारसे व्यवस्था जाननी जिस देशमें जैसे हो तैसेही करना इससे मुनियोंके मतभी बहुत लिखते हैं–"कन्याप्रदानं तु विधाय तानस्तद्दक्षिणां गोमिथुनं सुवर्णम् । दत्त्वा प्रदद्याद्धरणं वरार्थं वस्त्राणि पात्राणि विभूषणानि । तत्रैव देयानि बहुश्रुता जगुर्वाल्मीकिजाबालिपराशराद्याः । होमान्त आहुर्भृगुनारदाद्या विसर्जने व्यासमरीचिकौत्साः ॥" इत्यादि । और देशाचारमें प्रमाण–"ग्रामवचनं च कुर्युर्विवाहश्मशानयोर्ग्रामं प्राविशतादिति वचनात्तस्मात्तयोर्ग्रामप्रमाणम्" इति श्रुतेः । अर्थ–विवाहकी कर्तव्यतामें और श्मशान अर्थात् प्रेतक्रियामें ग्राममें प्रवेश कर ग्राम वचन करे इस श्रुतिसे अपने २ देशरीति और कुलरीति और ग्रामरीति परंतु जो धर्मविरुद्ध नहीं होवे उनको करे ॥

यजुर्वेद अध्याय ७ मूल मंत्र ४८ ।

ॐ कोऽदात्कस्मा॑ऽअदात्कामो॑ऽदात् का-

मायादात् ॥ कामोदाताकामं÷प्रतिगृही-
ताकामैतत्तें ॥ इति वरः पठेत् ॥

ततस्तां पाणौ गृहीत्वा। ॐ यदैषि मनसा दूरं दिशोनुपवमानो वा। हिरण्यपर्णोवैकर्णः। सत्वा मनमनसांकरोतु ॥ श्रीअमुकदेवी इति पठन्निष्कामती। ततो वेदिदक्षिणस्यां दिशि वारिपूर्णदृढकलशं ऊर्ध्वं तिष्ठतो मौनिनः पुरुषस्य स्कन्धे अभिषेकपर्यन्तं धारयेत्। ततः परस्परं समीक्षेथां इति कन्याप्रेषानंतरम् ॥

ॐ अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधिशिवापशुभ्यः÷सुमनाःसुवर्चाः÷ ॥ वीरसूर्देवकामास्योनाशन्नोभवद्विपदेशं चतुष्पदे ॥
सोमः प्रथमोविविदेगंधर्वोविविदउत्तरः।
तृतीयोअग्निष्टेपतिस्तुरीयस्तेमनुष्यजाः।

---

१ अघोरचक्षु यह मंत्र अथर्ववेद काण्ड १४ अनु० १ मंत्र १८ लिखा है।
२ यह मंत्र ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त ८५ मंत्र ४० है।

सोमोददद्गन्धर्वायगन्धर्वोददद्ग्नये । रयिंचपुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम् ॥ सानः पूषाशिवतमामेरयमानऊरूउशतीविहार । यस्यामुशन्तः प्रहरामशेपं यस्यामुकामाबहवोनिविष्ट्यै । इतिवरपठितमन्त्रान्ते परस्परंनिरीक्षणम् ॥

भा०टी०—[कोदातेति मंत्रार्थ] प्रश्न—कौन देता है ? उत्तर—काम अर्थात इच्छाही देती है । जिसमें कामही देता और कामही लेनेवाला इसलिये यह पत्नीप्रतिग्रह उस काम (संकल्प) के लिये है । सबसे बली है और धन्य है कि जो क्षत्रियादि दान मरणपर्यंतभी नहीं लेते अधिकारके न होनेसे यह उनकोभी दान महाकन्यारूपी देती है यह इच्छाकी स्तुतिपर मंत्र है । इस मंत्रको प्रथम वर पढे पीछेसे वधूका हस्तसे ग्रहण कर यदेषि इस मंत्रको पढे (मंत्रार्थ) प्राच्यादिसे लक्षित वायुकी नाईं तुमरेको पिता गृहसे दूर ले जाता है वह वायु और हिरण्यवर्ण सूर्य वैकर्ण अग्नि अर्थात् दिक्पालु सूर्य अग्न्यादि देव मुझमें लगा है हृदय जिसका ऐसी तुमको करे । इस मंत्रके अंतमें वर कन्याका नाम लेवे । ' आत्मनाम—गुरोर्नामे ' ति आगे नाम कभी न ग्रहण करे अनंतर

१ ऋग्वेद मं० १० सूक्त ८५ मन्त्र ३७ ।

दक्षिण दिशामें जलपूर्ण कलश स्कंध (कांधे) पर रखकर अभिषेकपर्यन्त दृढ पुरुष स्थित रहे उठकर तुम आपसमें देखे यह यजमान कहे । (मंत्रार्थ) हे कन्ये ! तुम सौम्यदृष्टिवाली हो और (अपतिघ्नी) अर्थात् पतिके अर्थके नाश करनेवाली मत हो इस विवाहसंस्कारके अनंतर पशुवत् जो आश्रित पुरुष उनमें हित करनेवाली हो और प्रसन्न चित्तवाली सुंदर प्रतापवाली सत्पुत्र और वीरपुत्रोंको पैदा करनेवाली देवकामा ' देवान् अग्न्यादीन् पूजार्थं कामयति इच्छतीति ' अर्थात् देवताओंमें तथा पितरोंमें श्रद्धावाली हो (स्योना) सुखी हमारेको कल्याण देनेवाली हो । सिद्धान्त यह है कि तुमारेसे हमको सर्वदा लाभ हो । (मंत्रार्थ कन्यास्तुतिका) हे कन्ये ! प्रथम रक्षा करनेवाला चंद्रमा जन्मदिनसे सार्द्धद्वय वर्ष अर्थात् (२॥) अढाई वर्षपर्यंत तुमारी पुष्टि करता हुआ तिसके अनंतर गंधर्व अर्थात् सूर्य पांच वर्षपर्यंत तुमारेको पढाता हुआ इस लिये सूर्य तुमारा दूसरा पति ' पाति रक्षतीति ' पति अर्थात् रक्षा करनेवाला अनन्तर पांच वर्षसे लेकर सात वर्षतक अग्नि तुमारेको शुद्धता सर्व काममें देता हुआ इससे अग्नि तीसरा पति रक्षा करनेवाला यथा प्रमाण जैसे " पूर्वं स्त्रियः सुरैर्भुक्ताः सोमगन्धर्ववह्निभिः । भुञ्जते मानुषाः पश्चात् नैता दुष्यन्ति कर्हिचित् ॥ " प्रपोष्याव्याप्य संशोध्य परित्यक्तां नरो व्रजेत् ॥ " अर्थ—जन्मदिनसे ले साढे सात वर्षमें अढाई (२॥) वर्ष क्रमसे सोम (चंद्रमा) सूर्य अग्निदेवने क्रमसे ' भुक्ताः ' रक्षा की । ' भुज पालनाभ्यवहारयोः ' इस धातुसे क्तप्रत्ययके आनेसे बहुवचनान्त होनेसे भुक्ता यह शब्द सिद्ध होता

है। और क्रममें पुष्ट कर तथा पढाकर और शुद्ध करके त्यागी हुई स्त्रियोंको नर भजते हैं अर्थात् सेवन करते हैं " भज सेवायां " इस धातुसे लिङ्लकारके आनेसे यासके स्थानमें इय तिप आदि आनेसे रूप भजेत् बनता है । इसलिये साढे सात वर्षके भीतर ज्योतिशास्त्रमें विवाह करनेका दोष लिखा है। [मंत्रार्थ] चंद्रमा ३० मासमें पुष्ट कर सूर्यको देता भया सूर्यभी ३० महीनेके अनन्तर दक्षता पांडित्यको देकर अग्निको समर्पण करता भया वह अग्निदेव इस स्त्रीको साथ पुत्रोंके धनके धर्मके शुद्ध कर मुझे देता है प्रमाणभी जैसे याज्ञवल्क्य-स्मृति अध्याय १ " सोमः शौचं ददावासां गन्धर्वश्च शुभां गिरम् । पावकः सर्वमेध्यत्वं मेध्या वै योषितः स्मृताः ॥ " इत्यादि अथ पूर्वोक्तही हैं इसलियेही सर्व स्त्रीको विना पढाये स्त्रियोंको ऐसी चातुर्यता होती है कि जो विद्वान् लोक हैं उनकीभी बुद्धि नष्ट कर अपने आधीन कर लेती है और नृत्यादि कलामें ऐसी कुशल होती कि जो नहीं कही जाती यह विना सूर्यके अंतःकरणमें उपदेश करनेके कैसे हो सक्ता है अब चन्द्रमाका कार्य देखे कि जो पुरुष गांधर्वविद्यामें दिनरात्र अभ्यास करते हैं वेही स्त्रीका स्वाभाविक राग श्रवण कर संकुचित हो जाते हैं तो कहिये वह किस गन्धर्वकी शिष्य बनकर शिक्षाको प्राप्त होती है इत्यादि बहुत गुण हैं जो पुरुषको जन्मभरमेंभी न आवें बुद्धिवान् पुरुष सर्व जानते हैं। इस अपनी तर्कके सिद्ध करनेके लिये शास्त्रके प्रमाण देते हैं—
"आहारो द्विगुणः स्त्रीणां बुद्धिस्तासां चतुर्गुणा। षड्गुणो व्यव-

सायश्च कामश्चाष्टगुणः स्मृतः ॥ स्त्रियश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं देवो न जानाति कथं मनुष्यः॥ स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीषु संदृश्यते किमुत याः परिबोधवत्यः॥ प्रागंतरिक्षगमनात् स्वम-पन्यजातमन्यैर्द्विजैः परभृताः खलु पोषयन्ति ॥" अर्थ—दुष्यंत राजा कहता है कि विना शिक्षाके चातुर्यता जो पशु पक्षियोंकी स्त्री हैं उनमें देखते हैं जैसे कोकिल अपने पुत्रोंको कागादिसे पुष्ट करातो है तो हम मनुष्योंकी स्त्रीमें क्या कहे यह प्रसंग शकुंतलानाटकमें विस्तारमें है ॥

[मंत्रार्थ—मान इति] जगत्का चक्षु सूर्यदेव कल्याणयुक्त इसको हमारेमें अनुरक्त करे । यह स्त्री हमारेमें सुख और पुत्रोंको इच्छा करती भई ऊरु अर्थात् जंघाको पसारे और हम स्त्रीकी योनिमें सुख और पुत्रोंकी इच्छा करते भये शेप अर्थात् लिंगको प्रवेशन करे । जिसमें धर्म पुत्र रतिसुखादिरूप बहुत गुण होते हैं (निविष्ट्यै) अर्थात् अग्निहोत्रादि कर्मद्वारा अंतःकरण शुद्ध होनेसे मुक्तिके लिये । भाव यह है कि धर्म अर्थ काम मोक्षका साधन पतिव्रता स्त्री है । प्रमाण याज्ञवल्क्य-स्मृति अ० १ " लोकानंत्यं दिवः प्राप्तिः पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः । यस्मात्तस्मात्स्त्रियः सेव्याः कर्तव्याश्च सुरक्षिताः ॥ " इति ॥

विशेपद्रष्टव्य—जिनको अर्थमें कुछ भ्रांति हो वह ऋग्वेदके चिह्नसे भाष्य देखे और सूत्र ब्राह्मण मिलावे तो उनका हमारे पर अत्युपकार होगा और " दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेका-दशं कृधि " इनकोभी देखे तो अच्छाही है अन्यथा हम गप्पा-ष्टक नहीं मानते और विस्तारके भयसे बहुत लिखते नहीं ॥

क्षेपक ऋग्वेद मंडल १० सू० ८५ मंत्र २५ ।

इमांत्वमिन्द्रमीढ्ः सुपुत्रां सुभगांकृणु ।
दशास्यांपुत्रानाधेहिपतिमेकादशंकृधि ॥

भा० टी–हे परमेश्वर ! इसकी सौभाग्य युक्त पुत्रोंके साथ वृद्धि करे और इसमें दश पुत्र उत्पन्न हो उनको और १० पुत्रोंके सहित ११ वें पतिकी धनादिसे वृद्धि करो। इस अर्थमें जिनको संदेह पडे वह ऊपर लिखित चिह्नसे ऋग्वेदमें देखे ॥

ततोऽग्निं प्रदक्षिणीकृत्य पश्चादग्नेरहतवस्त्रवेष्टितं तृणपूलकं कटं वा निवेश्य तदुपरि दक्षिणचरणं दत्त्वा वधूं दक्षिणतः कृत्वा तामुपवेश्य पुष्पचंदनताम्बूलान्यादाय ॐ तत्सदद्यकर्तव्यविवाहहोमकर्मणि कृताऽकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्मकर्तुममुकगोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणमेभिः पुष्पचंदनताम्बूलवासोभिः ब्रह्मत्वेन त्वामहं वृणे इति ब्रह्माणं वृणुयात् । वृतोऽस्मीति प्रतिवचनं। यथाविहितं कर्म्म कुर्विति वरेणोक्ते करवाणीति ब्रह्मा ब्रूयात् । ततो वरोऽग्नेर्दक्षिणतः ब्रह्माणमग्निप्रदक्षिणक्रमेणानीय तत्र

त्वं मे ब्रह्मा भवेत्यभिधाय कल्पितासने-समुपवेशयेत् ॥

भा० टी०—परस्पर निरीक्षणके अनंतर अग्निको प्रदक्षिणा कर अग्निके पश्चिम भागमें अहत (अदग्ध) वस्त्र वेष्टन कर तृणपूलक वा कट (सक) रखकर उसके ऊपर दक्षिण पाद देकर अर्थात् उल्लंघन न कर वधूको दक्षिण भागमें लेकर उसका वाम पाद रखकर बिठाय पुष्प चंदन तांबूल (पान) हाथमें ले आज कर्तव्यविवाहके होमकर्ममें कर्मकी शुद्धि अशुद्धिकी परीक्षा इत्यादि ब्रह्माका जो कर्म उसके लिये अमुक गोत्र अमुक ब्राह्मण ब्रह्मा समझकर आपको वरण करता हूं । हमने वर्णी ली यह ब्रह्मा कहे । तुम यथावत् कर्म करो ऐसे वरंकथनके अनन्तर करता हूं ऐसे ब्रह्माजी कहे अनंतर अग्निप्रदक्षिणक्रमसे ब्रह्माको ले जाय तुम कर्मसाक्षी मेरा ब्रह्मा हो ऐसे कह अग्निसे दक्षिण भागमें आसनपर बिठलावे अर्थात् वरुणवृक्षके बने हुए काष्ठके पीठपर कुशा बिछाय पूर्वोत्तर क्रमसे उसपर कर्मके तत्वको जाननेवाले श्रेष्ठ ब्राह्मणको बैठावे यदि ऐसा न मिले तो पचास कुशोंका ब्रह्मा रचकर बिठावे ॥

ततः प्रणीतापात्रं पुरतः कृत्वा वारिणा परिपूर्य कुशैराच्छाद्य ब्रह्मणो मुखमवलोक्य अग्नेरुत्तरतः कुशोपरि निदध्यात् ॥ ततः

परिस्तरणं बर्हिषश्चतुर्थंभागमादाय आग्नेया-दीशानांतं ब्रह्मणोऽग्निपर्यंतं नैर्ऋत्याद्वायव्या-न्तमग्नितः प्रणीतापर्यन्तं ततोऽग्नेरुत्तरतः पश्चिमदिशि पवित्रच्छेदनार्थं कुशत्रयं पवित्र-करणार्थं साग्रमनंतगर्भकुशपत्रद्वयं प्रोक्षणी-पात्रं आज्यस्थालीसंमार्जनार्थं कुशत्रयं समि-धस्तिस्रः स्रुव आज्यं षट्पञ्चाशदुत्तरमु-ष्टिद्वयावच्छिन्नतण्डुलपूर्णपात्रं पूर्वपूर्वदिशि क्रमेणासादनीयम् ॥

भा० टी०—ब्रह्माजीकी वर्णोंके अनंतर प्रणीतापात्रको मुखके बराबर आगे कर जल पूर्ण कुशासे आच्छादन कर साक्षी होनेसे ब्रह्माजीको देख अग्निकी उत्तरकोणमें कुशापर स्थित कर दे । अनंतर कुशमुष्टिका चौथा भाग ले अग्निको-णसे ईशानकोणपर्यंत ब्रह्मासे अग्निपर्यन्त नैर्ऋतिकोणसे वायुकोणपर्यंत पूर्वाग्र उत्तराग्र कुशा बिछावे । अनंतर अग्निकी उत्तर तरफ पश्चिममें पवित्र छेदनके लिये तीन कुशा पवित्र करनेके लिये अग्रके साथ और मध्यपत्रसे रहित दो कुशपत्र प्रोक्षणीपात्र आज्यस्थाली संमार्जनके लिये तीन कुशा उपयमनके लिये वेणीरूप तीन कुशा तीन समिधा स्रुवा घृत पुष्ट ब्राह्मण तृप्तिकारक वा २५६ मुष्टिप्रमाण तंडुलपूर्ण-

पात्र आगे २ पूर्वदिशामें क्रमसे रखने चाहिये । नीचे लिखे लक्षण पात्रोंके सर्व जानने ॥

१ प्रणीताका लक्षण.

वरणवृक्षका १२ अंगुल दीर्घ ४ अंगुल विस्तार और खोदा हुआ प्रणीतापात्र होता है ॥

२ प्रोक्षणीपात्रका लक्षण.

देवलोक॰प्रणीता नैर्ऋते भागे तद्वायव्यगोचरे । वारणं संविजानीयात्सर्वकर्मसु कारयेत् ॥ सर्वसंशोधनार्थोदपात्रं वारणमिष्यते ॥ द्वादशाङ्गुलिदीर्घं च करतलोन्मितखातकम् ॥ पद्मपत्रसमाकारं मुकुलाकारमेव वा ॥

३ आज्यस्थालीका लक्षण.

तैजसी मृण्मयी वापि आज्यस्थाली प्रकीर्तिता । द्वादशाङ्गुलविस्तीर्णा प्रादेशोच्चा प्रमाणतः ॥

४ चरुस्थालीका लक्षण.

चरुस्थाली तथैवापि दीर्घोच्चा तु प्रमाणतः । नानयोरन्तरं यस्माद् द्रव्यसंस्कारणार्थक इति ॥

५ संमार्जनकुशोंका प्रमाण.

स्रुवसम्मार्जनार्थन्तु कुशत्रयमुदीरितम् । इति व्यासस्मृतौ ॥

६ उपयमनकुशोंका प्रमाण.

उपयमनार्थमाख्यातास्त्रिषण्णवमिताः कुशाः।
वेणीरूपानिरोधार्थां निरोधे बहुभिः सुखम् ॥
इति भृगुवचनात् ॥

७ समिधा ३ में प्रमाण.

पालाशजं प्रादेशमात्रं दैर्घ्येण स्थूलता कनिष्ठिकासमं ध्यात्वा विधिमग्नौ क्षिपेच्च तन् इति पराशरः ॥

८ स्रुव वा ब्रह्महस्तलक्षण.

स्रुवस्तु ब्रह्महस्ताख्यः स्कन्धान्तो बाहुरुच्यते । स्वाहाकारस्वधाकारवषट्कारसमन्वितः॥दण्डाकारो भवेन्मूले स्यादरत्न्यां तु तत्समः । सकङ्कणस्तु दण्डाग्रे हस्ताकारस्ततो बहिः ॥ अष्टाङ्गुलिपरीमाणं मूलाभ्यंतरतस्त्यजेत्॥दशाङ्गुलिपरीमाणं मूलाभ्यंतरतस्त्यजेत् ॥ दशांगुलिपरीमाणमारभ्याकङ्कणावधि । हस्तमात्रं भवेद्धस्तः स्रुव इत्याभिधीयते ॥ खादिरः शैंशिपो वापि

श्चान्यो वा पुण्यवृक्षजः । धावकोऽपि समा-
ख्यातो होमार्थं मुनिभिः कृतः ॥ इति
कात्यायनः ॥

९. घृतलक्षण.

तथा च स्मृतिः । गव्यमाज्यं जुहुयात् तदभावे
माहिषं स्मृतम् ॥ तथा च श्रुतिः । गव्य-
माज्यं जुहुयात्तदभावे माहिषेयमिति ॥

१० चरुलक्षण.

व्रीहितंदुलसंसिद्धो मुख्यः प्रोक्तः सुरर्षिभिः ।
इत्याचारचंद्रोदये ॥

११ पर्यग्निके लक्षणमें श्रुति.

पर्यग्निं कुर्वन् ज्वलदुल्मुकमादाय प्रदक्षिण-
माज्यचर्वोः समंताद् भ्रामयेत् इति ॥

१२ समिधालक्षण.

पलाशखदिराश्वत्थशम्युदुम्बरजा समित् ।
अपामार्गकदूर्वाग्निं कुशाश्चेत्यपरे विदुः ॥
सत्वचः समिधः स्थाप्या ऋजुश्लक्ष्णाः समा-
स्तथा । शस्ता दशाङ्गुलास्तास्तु द्वादशा-
ङ्गुलिकास्तु ताः ॥ आर्द्राः पक्काः समच्छे-

दास्तर्जन्यंगुलिवर्तुलाः । अपाटिताश्च विविस्ताः क्रमिदोषविवर्जिताः ॥ ईदृशीं होमयेत्प्राज्ञाः प्राप्नोति विपुलां श्रियम् ॥ इति व्यासकात्यायनवसिष्ठगौतमभरद्वाजाः ॥

अथ तस्यामेव दिशि असाधारणवस्तून्युपकल्पनीयानि तत्र शमीपलाशमिश्रा लाजाः दृषदुपलं कुमारीभ्राता सूर्यः दृढपुरुषः अन्यदपि तदुपयुक्तमालेपनादिद्रव्यं । ततः पवित्रछेदनकुशैः पवित्रे छित्त्वा ततः सपवित्रकरेण प्रणीतोदकं त्रिः प्रोक्षणीपात्रे निधाय अनामिकांगुष्ठाभ्यां उत्तराग्रे पवित्रे गृहीत्वा त्रिरुद्दिंगनं प्रणीतोदकेन प्रोक्षणीजलेन यथासादितवस्तुसेचनम् । ततोऽग्निप्रणीतयोर्मध्ये प्रोक्षणीपात्रनिधानम् । आज्यस्थाल्यामाज्यनिर्वापः । ततोऽधिश्रयणं । ततो ज्वलत्तृणादिना हविर्वेष्टयित्वा प्रदक्षिणक्रमेण वह्नौ तत्प्रक्षेपः पर्यग्निकरणं । ततः स्रुवप्रतपनं कृत्वा सम्मार्जनकुशानामग्रैरंतरतो

मूलेर्बाह्यतः स्रुवं संमृज्य प्रणीतोदकेनाभ्युक्ष्य पुनः प्रताप्य स्रुवं दक्षिणतो निदध्यात् । ततः आज्यस्याग्नेरवतारणं तत आज्ये प्रोक्षणीवदुत्पवनम् । अवेक्ष्य सत्यपद्रव्ये तन्निरसनं । पुनः प्रोक्षणीवदुत्पवनम् ॥

भा० टी०—अनंतर तिस दिशामें और सर्व वस्तु स्थापन करनी जैसे शमी जडी पलाशसे युक्त लाजा (फलिया) शिला वट्टा कन्याका भाई देखनेके लिये सूर्य मजबूत पुरुष औरभी जो कामकी वस्तु हो वहभी पास रख ले पवित्र कुशासे पवित्रको छेदनकर फिर पवित्रकेसाथ हाथसे प्रणीताके जलको तीन वार प्रोक्षणीपात्रमें रखकर अनामिका और अंगुष्ठसे उत्तराग्र पवित्र ग्रहण कर तीन वार ऊपरको जल फेंकना प्रणीता और प्रोक्षणीका जल मिलाकर सर्व वस्तुको सिञ्चन करना अनंतर अग्नि प्रणीताके मध्यमें प्रोक्षणीपात्र रखना आज्यस्थालीमें आज्य पाना और अग्निपर रखनी जलते तृणसे हविर्वेष्टन कर प्रदक्षिणक्रमसे घृत तृणको अग्निमें गेर देना जलती चमातीसे प्रदक्षिणक्रमसे घृत चरुके चारों पार्श्वमें फेरनी । अनंतर स्रुव तथा संमार्जनकुशाके अग्रभागसे अनंतर मूलसे बाहिरसे स्रुवको पोछ प्रणीतोदकसे अभ्युक्षण (सिंचन) कर फिर तपाय दक्षिण भागमें राखे । पुनः घृत अग्निसे उतार आज्यका प्रोक्षणीवत् उत्पवन करना यदि निषिद्ध वस्तु हो तो निकाल देनी पुनः प्रोक्षणीवत् उत्पवन करना ॥

ततः उपयमनकुशानादाय उत्तिष्ठन्प्रजापतिं मनसा ध्यात्वा तूष्णीमग्नौ घृताक्तास्तिस्रः समिधः क्षिपेत् ॥ तत उपविश्य सपवित्रप्रोक्षणीउदकेन प्रदक्षिणक्रमेणाग्निपर्युक्षणं कृत्वा प्रणीतापात्रे पवित्रे निधाय पातितदक्षिणजानुः कुशेन ब्रह्मणान्वारब्धः समिद्धतमेऽग्नौ स्रुवेणाज्याहुतीर्जुहोति । तत्राघारादारभ्य द्वादशाहुतिषु तत्तदाहुत्यनंतरं स्रुवावस्थितहुतशेषघृतस्य प्रोक्षणीपात्रे प्रक्षेपः ॥ ॐ प्रजापतये स्वाहा इति मनसा इदं प्रजापतये० । ओमिन्द्राय स्वाहा इदमिंद्रा०। इत्याघारौ। ॐ अग्नये स्वाहा इदमग्नये० । ॐ सोमाय स्वाहा इदं सोमाय०। इत्याज्यभागौ ॥ ॐ भूः स्वाहा इदमग्नये० । ॐ भुवः स्वाहा इदं वायवे० । ॐ स्वः स्वाहा इदं सूर्याय० । एता महाव्याहृतयः ॥

भा० टी०—अनंतर उपयमन कुशाको ले उठकर सामने प्रजापतिका ध्यान करता हुआ चुपचापसे घृतयुक्त पूर्वोक्त तीन समिधा अग्निमें गेर देवे । अनंतर बैठकर साथ पवित्र

प्रोक्षणीजलसे प्रदक्षिणाक्रमसे अग्निको पर्युक्षण कर प्रणीतापात्रमें पवित्रे रख दक्षिणजानु नमाय कुशाद्वारा ब्रह्मासे संयुक्त हो बडी जलती अग्निमें स्रुवसे घृतको आहुति हवन करता है स्रुवसे लगे हुए घृतको प्रोक्षणीपात्रमें फेकना । प्रजापतये० इदं प्र० । यह मनमें कहकर आहुति देनी । ॐ इंद्राय० इदमिंद्राय० । यह आघारसंज्ञक है । ॐ अग्न०इदम० । ॐ सोमा० इदं सो० । यह आज्यभागसंज्ञक है । ॐ भूः इदं अ० । ॐ भुवः इदं वा० । ॐ स्वः इदं सूर्या० । यह महाव्याहुति है ॥

शु० यजु० अध्याय २१ मंत्र ३ ।

ॐ त्वन्नोऽअग्ने वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेडोअवयासिसीष्ठाः ॥ यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वाद्वेषांᳬसि प्रमुमुग्ध्यस्मत्स्वाहा ॥ इदमग्नीवरुणाभ्याम् ॥

ॐ सत्वन्नोऽअग्नेवमो भवोतीनेदिष्ठोऽअस्याउषसो व्युष्टौ । अवयक्ष्व नो वरुणᳬरराणो वीहिमृडीकᳬसुहवोन एधिस्वाहा । इदमग्नीवरुणाभ्यां० ॥

ॐ अयाश्चाग्नेस्यनभिशस्तिपा (वा) श्च

सत्यमित्व मयाअसि । अयानोयज्ञंवहास्य-
यानोभेषजᳪस्वाहा इदमग्नये० ॥
ॐ येतेशतंवरुणयेसहस्रंयज्ञियाः पाशावित-
तामहान्तः । तेभिर्नोऽअद्यसवितोतविष्णुर्वि-
श्वेमुञ्चन्तुमरुतः स्वर्काः स्वाहा ॥ इदं वरु-
णाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो मरुद्भ्यः
स्वर्केभ्यः० ॥

भा०टी०-त्वन्नो और सत्वन्नो इन मंत्रोंका वामदेव ऋषि त्रिष्टुप् छंद अग्नि और वरुण देवता सर्वप्रायश्चितमें विनियोग है। (अयाश्चाग्ने) इस मंत्रका वामदेव ऋषि त्रिष्टुप् छंद अग्नि देवता प्रायश्चित्तहवनमें विनियोग है । (येतेशत) इस मंत्रका शुनःशेप ऋषि त्रिष्टुप् छंद वरुण देवता वरुणसंबंधि शापके मोचनमें विनियोग है । अब इनके अर्थ क्रमसे लिखते हैं । (त्वन्न इति) हे अग्ने ! तुम इस कर्ममें वैगुण होनेसे वरुणदेवके क्रोधको हरण करो कैसे तुम सर्व कर्ममें साक्षी चतुर हो और सबसे उत्तम हो और सब देवताओंको यज्ञका भाग देनेवाले हो प्रकाशमान हो इसलिये मंदबुद्धिवाले हमको जान हमारी की हुई अवज्ञा (अनादर) को क्षमा कर सर्व प्रकारसे कल्याण देवो ॥ १ ॥

भा०टी०-(मंत्रार्थ-सत्वन्न इति) हे अग्ने ! तुम सबको पालना करनेवाले हैं । इसलिये आज दिनके प्रातःकालसे

होकर मेरी रक्षा करो। नहीं केवल रक्षा किंतु हमारे कर बुला-ये तुम सुखपूर्वक आकर सुख देनेवाला चरु यज्ञके मालिक वरुणदेवताको देकर पूजन करो । जिससे वरुणदेवभी प्रसन्न हो हमारेको सुख दे ॥ २ ॥

(मंत्रार्थ–अयाश्चाग्न इति) हे अग्ने ! तुम सर्वांतर्यामी और प्रायश्चित्तद्वारा सर्व प्राणीको शुद्ध करनेवाले और शुभके दाता हमारी किये हुये यज्ञको कृपालु होनेसे इंद्रादि देवताओंको देनेवाले इसलिये हमकोभी भेषज अर्थात सुखके देनेवाला दुःख विनाशक अपूर्व सुख देवो ॥ ३ ॥

(मंत्रार्थ–येतेशतमिति) हे वरुण! यज्ञके विघ्नसे पैदा हुए बडे २ भारी महान् कठिन जो तुमारे शतसंख्याक और सह-स्रसंख्याक पाश हैं वह पापरूप पाश हैं हमारे सविता सूर्य विष्णुरूप इंद्र और सर्व देवता और वायु सुंदर हृदयवाले आदित्य हमारे पापोंको नष्ट करें ॥ ४ ॥

शुक्ल यजु० अध्याय १२ मूल मंत्र १२ ।

उत्तुदुमं वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यमꣳ श्रथाय । अथावयमा दित्यव्रतेतवानागसोऽअदितये स्याम स्वाहा । इदं वरुणाय० ॥

एताः सर्वप्रायश्चित्तसंज्ञकाः ॥ ९ ॥

ततोऽन्वारब्धं विना ॐ प्रजापतये स्वाहा इदं प्रजापतये० । ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा इदमग्नये स्विष्टकृते० । उदकोपस्पर्शनम् । अथ राष्ट्रभृत्यः ॥

भा०टी०—उत्तम मध्यम अधम यह तीन वरुणके पाश हैं (मंत्रार्थ) हे वरुण ! जो तुमारा उत्तम पाश है उससे हमारी रक्षा करो । जो मध्यम पाश है उससेभी हमारी रक्षा करो पाशको शिथिल करो । हे वरुण ! हम ब्रह्मचर्यसे तुमारेसे निरपराध होकर दीनतासे रहित होते हैं । "दीनतायां दितिः प्रोक्ता दितिः स्याद्दैत्यमातरि" इस वचनसे दिति नाम दीनताकाभी है । अनंतर अन्वारब्ध विना । प्रजापतये० इदं प्र० । अग्नये स्विष्टकृते० इदम० स्विष्टकृते० । यह दो आहुति दे जलको हाथ लगावे । इसके अनंतर राष्ट्रभृत्यनाम आहुति लिखते हैं ॥

तत्र द्वादश मन्त्रा यथा ।

शुक्लयजु० अध्याय १८ मंत्र ३८ ।

ॐ ऋताषाडृतधामाग्निर्गन्धर्वः स नऽ इदम्ब्रह्मक्षत्रम्पातु तस्मै स्वाहा वाट् ॥ इदमृतासाहे ऋतधाम्नेऽग्नये गंधर्वाय० ॥

ॐ ऋताषाडृतधामाग्निर्गन्धर्वस्तस्यौ-

षधयोऽप्सरसोमुदो नाम ताभ्यः स्वाहा ।
इदमोषधिभ्योऽप्सरोभ्योमुद्भ्यः० ॥

यजु० अध्याय १८ मंत्र ३९ ।

सुᳬंहितोविश्वसामासूर्य्यो गन्धर्वः सनःऽइदम्ब्रह्मक्षत्रम्पातुतस्मै स्वाहा वाट् ॥ इदᳬंसᳬंहिताय विश्वसाम्ने सूर्यायगन्धर्वाय० ॥

यजु० अध्याय १८ मंत्र ३९ ।

सुᳬहितोविश्वसामासूर्य्यो गन्धर्व-स्तस्य मरीचयोऽप्सरसऽआयुवो नामताभ्यः स्वाहा ॥ इदं मरीचिभ्योऽप्सरोभ्य आयुवोभ्यः० ॥

यजु० अध्याय १८ मंत्र ४० ।

ॐ सुषुम्णः सूर्य्यरश्मिश्चन्द्रमागन्धर्वः सनःऽइदंब्रह्मक्षत्रंपातुतस्मैस्वाहा वाट् ॥

इदंसुषुम्णाय सूर्य्यरश्मये चंद्रमसे गंध-
र्वाय० ॥

यजु० अध्याय १८ मंत्र ४० ।

ॐ सुषुम्म्णः सूर्य्यरश्मिश्चन्द्रमागन्धर्व-
स्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसोभेकुरयोनामता-
भ्यः स्वाहा ॥ इदं नक्षत्रेभ्योऽप्सरोभ्यो
भेकुरिभ्यः ० ॥

यजु० अध्याय १८ मंत्र ४१ ।

ॐ इषिरोविश्वव्यचावातोगन्धर्वःसनऽ-
इदम्ब्रह्मक्षत्रम्पातुतस्मै स्वाहावाट् ॥ इद-
मिषिराय विश्वव्यचसे वाताय०॥

यजु० अध्याय १८ मंत्र ४१ ।

ॐ इषिरोविश्वव्यचावातोगन्धर्वस्तस्या-
पोऽप्सरस ऊर्ज्जोनामताभ्यः स्वाहा ॥
इदमद्भ्योऽप्सरोभ्यः ऊर्भ्य० ॥

यजु० अध्याय १८ मंत्र ४१ ।

ॐ भुज्युःसुपर्णोयज्ञोगन्धर्वःसनइद-

म्ब्रह्मंक्षुत्रंपातुतस्मैस्वाहा वाट् ॥ इदं भुज्यवे सुपर्णाय यज्ञाय गन्धर्वाय० ॥

यजु० अध्याय १८ मंत्र ४१ ।

ॐ भुज्युःसुपुर्णोयुज्ञोगन्धुर्वस्तस्युदक्षिणाअप्सुरसंस्तावानामताभ्यः स्वाहा ॥ इदं दक्षिणाभ्योऽप्सरोभ्यस्तावाभ्य० ॥

यजु० अध्याय १८ मंत्र ४२ ।

ॐ प्रजापतिर्विश्वकर्मामनोगन्धुर्वः सनं इदंब्रह्मंक्षुत्रंपातु तस्मै स्वाहावाट् । इदं प्रजापतये विश्वकर्मणेमनसे गंधर्वाय० ॥ ॐ प्रजापतिर्विश्वकर्म्मामनोगन्धुर्वस्तस्य ऽऋक्सामान्यप्सुरसुऽएष्टयोनाम ताभ्यः स्वाहा ॥ इदं ऋक्सामभ्योऽप्सरोभ्यएषिभ्यः० ॥ इति राष्ट्रभृत् ॥

भा० टी०—इन द्वादश मंत्रोंके अर्थ यथाक्रमसे जानने यह (+) चिह्न होगा वहां पूर्वोक्त अर्थ समझे । (मंत्रार्थ १) जो सत्यके ग्रहनेवाला सत्यका स्थान मंत्रवरूप जो अमि

उसको दी हुई आहुति सुहुत हो वह अग्नि हमारा ब्रह्मज्ञान और क्षत्र (वीर्य) बलको रक्षा करे ॥

२—जो सत्यका स्थान सत्यशील गंधर्वरूप अग्नि तिसकी औषधी अर्थात् यवगोधूममाषव्रीहिमुद्गादि सर्व प्राणियोंको आनंददायक अप्सरा हैं तिस अग्नि और अप्सराके लिये सुहुत हो (+) इत्यादि ॥

३—दिनरात्रिका स्वामी गंधर्वरूप जो सूर्यभगवान् संपूर्ण सामवेदके जाननेवाले उनके लिये सुहुत हो (+) इत्यादि ॥

४—रात्रिदिनपति गंधर्वरूपी सूर्यजीकी मिश्रित होनेवाली मरीचियां (किरण) रूप अप्सरा हैं सो (+) इत्यादि ॥

५—निरंतर सदैव आनंदके देनेवाले गंधर्वरूपी सूर्यकिरणोंसे वृद्धिको प्राप्त भये जो चंद्रमा भगवान्‌जी (+) इत्यादि ॥

६—तिस गंधर्वरूपी चंद्रमाजीकी (ईकुरी) अर्थात् जो एक पिताकी द्विकन्यका एकही पति हो उनको ईकुरी कहते है प्रमाणभी जैसे गंगाधरजी लिखते हैं—" सपितृका एकपातिका ईकुर्यस्ता उदीरिताः । " ऐसे जो नक्षत्र तारका अप्सरा है उसके पति जो (+) इत्यादि ॥

७—जो वायु गमनस्वभाव और सर्वगत गंधर्वरूप है (+) इत्यादि ॥

८—जो वायुरूप गन्धर्व उनका सर्व वस्तुके देनेवाला जल अप्सरा है (+) इत्यादि ॥

९—जो यज्ञरूप गंधर्व है पालन करनेवाला और शोभन

गतिवाला उसकी जलरूप अप्सरा है उसके (+) इत्यादि ॥

१०–जो यज्ञरूप गंधर्व है स्तवनरूप उसकी दक्षिणा नाम अप्सरा है उसके (+) इत्यादि ॥

११–प्रजाका ईश्वर कि जिसके आश्रय विश्व बनती है ऐसा मनरूप जो गंधर्व है (+) इत्यादि ॥

१२–जो मनरूप गंधर्व उसकी धर्म अर्थ काम मोक्ष (पुत्रादि) की देनेवाली ऋग्वेद सामवेदरूपी अप्सरा है उसके लिये सुहुत हो वह मन हमारा व्रत ज्ञान वीर्य बल वृद्धि करे इत्यादि क्रमसे अर्थ जानना । यह राष्ट्रभृतनामसे हवन है ॥

अथ जयाहोमः ॥ ॐ चित्तं च स्वाहा इदं चित्ताय० १ । ॐ चित्तिश्च स्वाहा इदं चित्त्यै० २। ॐ आकूतं च स्वाहा इदमाकूताय० ३ । ॐ आकूतिश्च स्वाहा इदमाकूत्यै० ४ । ॐ विज्ञातञ्च स्वाहा इदं विज्ञाताय० ५ । ॐ विज्ञातिश्च स्वाहा इदं विज्ञात्यै० ६ । ॐ मनश्च स्वाहा इदं मनसे० ७। ॐ शक्वर्यश्च स्वाहा० इदं शक्वरीभ्यो० ८ । ॐ दर्शश्च स्वाहा इदं दर्शाय० । ॐ पौर्णमासश्च स्वाहा इदं पौर्णमासाय० १० । ॐ बृहच्च स्वाहा इदं बृहते० ११।ॐ रथंतरं च स्वाहा इदं रथंतराय० १२। ॐ प्रजापतिर्जयानिन्द्राय वृष्णेप्रायच्छदुग्रः पृतना-

जयेषु ॥ तस्मै विशः समनमंतसर्वाः सउग्रः सहि इहव्यो बभूवस्वाहा १३। इति जयाहोमः ॥

भा० टी०—यह १३ त्रयोदशमंत्र जयानाम होम है इनमें द्वादश (१२) सुगम है। [मंत्रार्थ १३] (प्रजापति) प्रजा का स्वामी शत्रुओंकी सेनाका नाश करनेमें उग्र परमेश्वरजीने इंद्रको जयानाम मंत्रोंका उपदेश करते भये। जिन मंत्रोंके प्रभावसे इंद्र सर्वका राजा और वर्षाका करनेवाला सर्वसे मुख्य (अग्रणी) होता भया तद्वत् ऐसा कृपाशील परमेश्वर मुझको भी जय देवे और हमारेसे दी हुई आहुति सुहुत हो। भाव यह है कि जिन मंत्रोंके उपदेशद्वारा इंद्र ऐश्वर्यसे युक्त सर्वसे मुख्य भया इसलिये इनका जया नाम है। इति ॥ १३ ॥

अथाभ्यातानानामहोमः ॥ ॐ अग्निर्भूतानामधिपतिः स मावत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेस्यामाशिष्यस्यांपुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यांदेवहूत्याᳬस्वाहा। इदमग्नयेभूतानामधिपतये० ॥ १ ॥ ॐ इन्द्रोज्येष्ठानामधिपतिःसमावत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यांदेवहूत्याᳬस्वाहा। इदमिन्द्रायज्येष्ठानामधिपये० ॥ २ ॥ ॐ यमः पृथिव्याऽअधिपतिःसमावत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्मण्य-

स्यां देवहूत्या-स्वाहा । इदंयमाय पृथिव्याअधिप-
तये० ॥ ३ ॥ अत्र प्रणीतोदकस्पर्शः ॥ ॐ वायु-
रन्तरिक्षस्याधिपतिः समावत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रे
स्यामाशिष्यस्यांपुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहू-
त्याऽस्वाहा । इदंवायवेऽन्तरिक्षस्याधिपतये० ॥४॥
ॐसूर्यो दिवा अधिपतिः समावत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मि-
न्क्षत्रेस्यामाशिष्यस्यांपुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यांदे
वहूत्याऽस्वाहा ।इदंसूर्यायदिवाअधिपतये० ॥५॥
ॐ चंद्रमानक्षत्राणामधिपतिः समावत्वस्मिन्ब्रह्मण्य-
स्मिन्क्षत्रस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्म-
ण्यस्यांदेवहूत्याऽस्वाहा ।इदंचंद्रमसेनक्षत्राणामधि-
पतये० ॥ ६ ॥ ॐ बृहस्पतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिःसमा-
वत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेस्यामाशिष्यस्यांपुरोधाया
मस्मिकर्मण्यस्यांदेवहूत्याऽस्वाहा । इदंबृहस्पतयेब्र-
ह्मणोऽधिपतये० ॥ ७ ॥ ॐ मित्रः सत्यानामधिप-
तिः समावत्वस्मिनब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेस्यामाशिष्य-
स्यांपुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यांदेवहूत्याऽस्वाहा ।
इदंमित्रायसत्यानामधिपतये० ॥ ८ ॥ ॐ वरुणोऽ

पामधिपतिः समावत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यांदेवहूत्याᳪस्वाहा । इदंवरुणायअपामधिपतये० ॥ ९ ॥ ॐ समुद्रः स्रोत्यानामधिपतिः समावत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यांदेवहूत्याᳪस्वाहा । इदंसमुद्रायस्रोत्यानामधिपतये० ॥ १० ॥ ॐ अन्नᳪसाम्राज्यानामधिपतिः समावत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यांदेवहूत्याᳪस्वाहा । इदमन्नायसाम्राज्यानामधिपतये० ॥ ११ ॥ ॐ सोमओषधीनामधिपतिः समावत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेस्यामाशिष्यस्यांपुरोधायामस्मिन् कर्म्मण्यस्यांदेवहूत्याᳪस्वाहा । इदंसोमायओषधीनामधिपतये० ॥ १२ ॥ ॐ सविताप्रसवानामधिपतिः समावत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्म्मण्यस्यां देवहूत्याᳪस्वाहा । इदंसवित्रेप्रसवानामधिपतये० ॥ १३ ॥ ॐ रुद्रः पशूनामधिपतिः समावत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रे स्यामाशिष्यस्यां

पुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यांदेवहूत्याᳪंस्वाहा ।
इदंरुद्रायपशूनामधिपतये० ॥ १४ ॥ अत्र प्रणी-
तोदकस्पर्शः ॐ त्वष्टारूपाणामधिपतिः समा-
वत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेस्यामाशिष्यस्यांपुरोधा-
यामस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳪंस्वाहा । इदं त्वष्ट्रे
रूपाणामधिपतये० ॥ १५ ॥ ॐ विष्णुः पर्वता-
नामधिपतिः समावत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रे
स्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यां
देवहूत्याᳪंस्वाहा ॥ इदंविष्णवेप्रजानामधिपतये० ॥
॥ १६ ॥ ॐमरुतोगणानामधिपतयः स्तोमावंत्व-
स्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायाम-
स्मिन्कर्मण्यस्यांदेवहूत्याᳪंस्वाहा । इदंमरुद्भ्यो
गणानामधिपतिभ्यः ॥ १७॥ ॐ पितरः पितामहाः
परेवरेततास्ततामहाइहमावंत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रे
स्यामाशिष्यस्यांपुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यांदेवहू-
त्याᳪंस्वाहा । इदंपितृभ्यःपितामहेभ्यः परेभ्योवरे-
भ्यस्ततेभ्यस्ततामहेभ्यः ॥ ॥ १८ ॥ अत्र प्रणी-
तोदकस्पर्शः इन्त्यभ्यातानमहोमः ॥

इन अष्टादश (१८) मंत्रोंका प्रजापति ऋषि पंक्ति छंद मंत्रोक्त देवता अभ्यातानानाम होममें विनियोग है। इनका अर्थ यथाक्रमसे जानना ॥

१–(मंत्रार्थ) सर्वका स्वामी अग्निदेव मुझको वेदादि अध्ययन कर्ममें और बलवीर्य वर्तमान इस विवाहमें तथा आगे होनेवाली वृद्धिमें तथा देवपूजनादिक कर्ममें मेरी रक्षा करे यह आहुति अग्निके लिये सुहुत हो ॥

२–सबसे बडे जो बृहस्पतिजी उनका जो अधिपति राजा होनेसे इंद्र सो मुझको + इत्यादि पूर्वोक्त अर्थ १७ मंत्रोंमेंही जानना ॥

३–मर्त्यलोकके प्राणियोंको दण्ड देनेवाला इसलिये पृथिवीका स्वामी जो धर्मराजजी वह मुझको इत्यादि + यहां आहुति देकर हाथ प्रक्षालन करने ॥

४–आकाशगामी होनेसे आकाशका स्वामी श्रीवायुदेवताजी मुझको + इत्यादि ॥

५–संपूर्ण अंधकार नाश करनेसे दिनके स्वामी सूर्यनारायण वह मुझको + इत्यादि ॥

६–अश्विनीसे आदि और दाक्षायण्यादि तारका चंद्रमाकी स्त्री हैं इसलिये नक्षत्रोंके स्वामी चंद्रमाजी मुझको + इत्यादि ॥

७–महादेवजीके शिष्य बन अपार व्याकरणादि ज्ञान और अत्युत्तम संस्कृत उच्चारणादिसे बृहस्पतिजीको वेदोंका पतित्व उचित है वह मुझको + इत्यादि ॥

८–सत्यपदार्थका स्वामी जो मित्रदेवताजी वह मुझको + इत्यादि ॥ प्रमाण जैसे–" मित्रत्वं जायते सत्यात्सत्यादेव प्रवर्द्धते । सत्यात्प्रफलते नित्यं सत्यहेतुर्हि मित्रता ॥ "

९–जलोंका स्वामी वरुणदेवजी मुझको + इत्यादि प्रमाण जैसे–" जलानां जलजन्तूनां पाशी धात्राधिपः कृतः । " इति ॥

१०–स्रोत्यनाम जो नद नदी नाले वहनेवाले और गंभीर दुर्वगाह उनका मालिक समुद्रजी मुझको + इत्यादि ॥

११–' अद्यते अत्ति च भूतानि इति अन्नं ' अर्थात् जिसको मनुष्यादि भक्षण करे और जो मनुष्यादिको भक्षण करे और उत्पन्न करे तथा पालन करे ऐसा जो अन्न परमेश्वर हस्ती, हय (घोडा), गृह, बाग, बगीचा इत्यादि सर्व वस्तुका स्वामी वह मुझको + इत्यादि ॥

१२–औषधियोंके स्वामी सोमदेवजी मुझको + इत्यादि ॥

१३ सर्वके उत्पन्न करनेमें समर्थ सविता देवताजी मुझको + इत्यादि ॥

१४–कामधेनुके गर्भद्वारा नंदिकेश्वरका अवतार होनेसे महादेवजीको पशुओंका स्वामी कहा जाता है वह मुझको + इत्यादि ॥

१५–रूपोंका स्वामी त्वष्टादेवजी मुझको + इत्यादि ॥

१६ पर्व जो अमावास्यादि चंद्रग्रहणादि दर्शपौर्णमासादि यज्ञोंका स्वामी विष्णु परमात्मा परमेश्वरजी मुझको + इत्यादि ॥

१७–बलि होनेसे देवगणोंके स्वामी देवताजी + इत्यादि ॥

१८ देव ऋषि आंगिरस भार्गव ब्राह्मण क्षत्री वैश्य शूद्र और जो पिता पितामह प्रपितामहादि सनातन पितर अग्निष्वात्तादि और आधुनिक जो हमारे गोत्री वह सर्व मुझको + इत्यादि ॥ यहांभी प्रणीताजलसे स्पर्श करना। जिन २ देवताकी आहुतीके अनंतर जलस्पर्श करना चाहिये वह प्रमाण लिखते हैं–" यमो रुद्रश्च पितरः कालो मृत्युश्च पंचमः। पंच क्रूरा विवाहस्य होमे तच्छान्तिमाचरेत् ॥ प्रणीता अप्सु शान्त्यर्थं मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ॥ " इन अभ्यातानमंत्रोंसे देवता असुरोंको मारते भये इसलिये इनकी अभ्यातान संज्ञा भई। तथाच श्रुतिः " यद्देवा अभ्यातानैरसुरानभ्यातन्वतः ॥ " इति ॥

अथाज्यहोमः ॥ ॐ अग्निरैतु प्रथमो देवताना ᳪ सोस्यैप्रजांमुंचतुमृत्युपाशात् ॥ तदया ᳪ राजावरुणोनुमन्यतां यथेय ᳪ स्त्रीपौत्रमघन्नरोदात्स्वाहा । इदमग्नये० ॥ १ ॥ ॐ इमामग्निस्त्रायतांगार्हपत्यः प्रजामस्यैनयतुदीर्घमायुः ॥ अशून्योपस्थाजीवंतामस्तु मातापौत्रमानन्दमभिप्रबुध्यतामिय ᳪ स्वाहा । इदमग्नये० ॥ २ ॥ स्वस्तिनोऽग्नेदिवापृथिव्याविश्वानिधेह्यऽयथायजत्रा ॥ यदस्यांमहिदिविजातप्रशस्तंतदस्मासुद्रविणं धेहिचित्र ᳪ स्वाहा । इदम-

ग्नये० ॥ ३ ॥ सुगन्नुपंथांप्रदिशन्नएहिज्योतिष्मद्धे-
ह्यजरन्नआयुः ॥ अपैतुमृत्युरमृतंनआगाद्वैवस्वतो-
नोऽभयं कृणोतु स्वाहा । इदमग्नये ॥ ४ ॥
परंमृत्योऽनु परेहिपंथां यस्तेऽन्यइतरोदेवयानात्॥
चक्षुष्मतेशृण्वतेतेब्रवामिमानः प्रजा ँ रीरिषोमो-
तवीरान्स्वाहा । इदं वैवस्वताय० ॥ ५ ॥ अत्र
प्रणीतोदकस्पर्शः । ततो वधूमग्रतः कृत्वा वधूवरौ
प्राङ्मुखौ स्थितौ भवतः ॥ ततो वराञ्जलिपुटोपरि
संलग्नवध्वञ्जलिपुटोपरि संलग्नवध्वञ्जलिघृताभिघा-
रितवधूभ्रातृदत्तशमीपलाशमिश्रैर्लाजैर्वधूकर्तृको
होमः ॥

भा० टी० अग्निरैतु इत्यादि चार मन्त्रोंका प्रजापति ऋषि त्रिष्टुप् छंद मन्त्रोक्तदेवता घृतहोममें विनियोग है । (मंत्रार्थ) देवताओंमें आदि अग्निदेवता आकर इस कन्यामें आगे होने-वाली संतानको मृत्युपाशसे मृत्युसे बचावे वा मृत्युपाशको भस्म कर इसका प्रजापुत्रादि वरुणराजाकी आज्ञासे जैसे यह स्त्री पुत्रसंबंधि दुःखसे न रोदन करे ऐसी प्रजापुत्रादि संता-नको देवे ॥ १ ॥

---

१ अपैतुमृत्युरित्यपि पाठः ।

भा० टी०—(इमामग्नि) अग्निहोत्रसंबंधी अग्नि इस कन्याकी प्रजापुत्रादिको दीर्घायुको प्राप्त करे पुत्रोंसे नहीं शून्य गोद (अंक) जिसकी वा जीवद्वत्सा हो यह स्त्री पुत्रपौत्रादि-संबंधी आनंदको जाने अर्थात् भोगे ॥ २ ॥

भा० टी०—(स्वास्तिनो) पूजन करनेवालोंकी रक्षा करने वाली हे अग्ने ! पृथ्वीसे आदि ले स्वर्गपर्यंत जो कल्याण क्रमको छोड अर्थात् एकदाही हमारेमें धारणा करो। और पृथिवी स्वर्गमें पैदा होनेवाली महिमा वा यश नाना प्रकारके सुवर्ण मोती पद्मराग मरकत प्रवाल रजतादि द्रव्य सर्व मुझको देवो ॥ ३ ॥

भा० टी०—(सुगन्तु) सुखपूर्वक आना जाना जिसमें ऐसा गृह और सुखपूर्वक चिरकाल जीवन धर्मदानादि करनेसे य-शसे युक्त जरारोगसे रहित आयु देवो। और अपमृत्यु आदि हमारे नष्ट होवें। अमृत आनंद हमारेको मिले धर्मराजभी हमा-रेको अभय देवे अर्थात् हमारे पापका जो फल नरकादि क्लेश उनसे तुमारी कृपाद्वारा हमको बचावे। यह आहुति अग्निके लिये सुहुत हो ॥ ४ ॥

भा० टी०—(परंमृत्यो) इस मंत्रका संकर्षण ऋषि त्रिष्टुप् छंद मृत्यु देवता आज्यहोममें विनियोग है। हे मृत्युदेव ! सर्व व्यापारादिके साक्षी और सुननेवाले जिस कारणसे तुमारा देव-मार्गसे भिन्न मार्ग है इसलिये अपने मार्गको जावो और हमा-रेसे आहुति पूजा ले हमारी पुत्रपौत्र भ्रातादि संततिको मत

आगे किंतु प्रसन्न हो, रक्षा करो हम आपसे यह प्रार्थना करते हैं ॥ ५ ॥

इस मंत्रसे आहुति देकर जलस्पर्श करना अनंतर वरके आगे वधूको करे पूर्वकी तरफ मुख कर वरवधू हवनके लिये स्थित होवें । वरकी अंजलीपर वधूकी अञ्जली रखकर कुमारीके भ्राताने दी हुई जो घृत शमीके पत्रोंसे युक्त लाजा (फूलिया) से वधू मंत्रपूर्वक हवन करे ॥

ॐ अर्यमणं देवंकन्याअग्निमयक्षत ॥ सनो अर्यमा देवः प्रेतो मुञ्चतुमापतेः स्वाहा॥ १॥ इयंनार्य्युपब्रूतेलाजानावपंतिका॥ आयुष्मानस्तुमेपतिरेधन्तांज्ञातयोममस्वाहा ॥ २ ॥ इमाँल्लाजानावपाम्यग्नेसमृद्धिकरणं तव ॥ ममतुभ्यंचसंवननंतदग्निरस्तुमन्यतामियᳬस्वाहा ॥ ३ ॥ अथास्यै दक्षिणᳬहस्तं गृह्णाति वरः साङ्गुष्ठम् ॥ ॐ गृभ्णामिंतेसौभगत्वाय हस्तंमयापत्याजरदष्टिर्यथासः ॥ भगोऽर्यमासवितापुरंधिर्मह्यंत्वादुर्गार्हपत्यायदेवाः ॥ ४ ॥ अमोहमास्मिसात्वᳬसात्वमस्यमोऽहं ॥ सामाहमस्मिऋक्त्वंद्यौरहंपृथि-

वीत्वम् ॥ ५ ॥ तावेवविवहावहैसहरेतोद-धावहैप्रजांप्रजनयावहैपुत्रान्विंद्यावहैबहून् ॥ ६ ॥

भा० टी०-अर्यमणं इत्यादि तीन मंत्रोंका दध्यङ्ङाथर्वण ऋषि अनुष्टुप् छंद अग्नि देवता लाजाहोममें विनियोग है। (मंत्रार्थ) (अर्यमणं) यह पूर्वकन्या सूर्यदेवकी पूजनादि करती भई वह सूर्य भगवान प्रसन्न होकर पितृकुलसे श्वशुर गृह आनेके लिये मोचन करे नहीं मुझ पतिसे भिन्न करे ॥ १॥ यह तीन मंत्र वरकन्यासे कहावे ॥

भा० टी०-(इयंनार्य्युप) संतानप्राप्तिके लिये सूर्यदेवको प्रसन्न कर लाजाको अग्निमें गेरती हुई यह स्त्री पतिको सुंदर वाणीसे कहती है कि मेरा पति वीर्यपुष्टियुक्त चिरायुवाला होवे और मेरे बांधव ज्ञातिके लोक पित्रादि मातुलादि सब वृद्धिको प्राप्त होवें ॥ २ ॥

भा० टी०-(इमांल्लाजान्) हे पति ! तुमारी समृद्धिके लिये यह लाजा अग्निमें गेरती है और हमारी तुमारी प्रीतिको अग्नि सर्वांतर्यामी अनुमोदन करे अर्थात् तुमारी प्रीति हमसे सदा अविच्छिन्न रहे ॥ ३ ॥

भा० टी०-(अनंतर वर वधूका अंगुष्ठके साथ हस्तग्रहण करे) (मंत्रार्थ) (गृभ्णामि) हे पत्नी ! तुमारे हाथको ग्रहण करता हूं जिस हाथके ग्रहण करनेसे तुम बहु वर्ष जीवित रहो। शंका-आप किसकी आज्ञासे कन्याका पाणिग्रहण करते हैं। उत्तर-गार्हपत्यादि कर्मोंको करनेके लिये भग, अर्यमा,

सविता और संतान तथा आनंदके लिये सुन्दर रूपवती तुमको मुझे देते भये इस हेतुसे हम आपको ग्रहण करते हैं ॥ ४ ॥

भा० टी०—(अमोहमस्मि) इस मंत्रका भरद्वाज ऋषि उष्णिक् छंद विष्णु देवता हाथके ग्रहणमें विनियोग है । अर्थ—हे पति ! मैं अम नाम विष्णु वा देवत्रयात्मक हूं और तुम सा नाम लक्ष्मी वा देवीत्रयरूप अर्थात् ब्रह्माणी रुद्राणी वैष्णवी है । प्रमाण जैसे " ओ विष्णुरः शिवः प्रोक्तः प्रपंचे अः स्मृतस्तथा । सा च लक्ष्मी बुधैः प्रोक्ता" और " वेदानां सामवेदोऽस्मि" इस वाक्यसे मुख्यता होनेसे मैं सामवेद हूं और ऋक् शब्दका स्त्रीलिंग होनेसे तुम ऋग्वेद हो । प्रमाण—"स्त्रियामृक् सामयजुषी " इत्यमरः । और मैं आकाशरूप हूं तुम पृथ्वीरूप है । भावार्थ कि जैसे आकाश पृथ्वीपर छादित है तद्वत् मैं भी अपने गुणोंसे तुमारेपर छादित रहा अर्थात् तुम हमारे आधीन रहे । और जैसे पृथ्वी छेदन भेदन की हुई और भारसे दबाई हुई अग्निसे दग्ध की हुई शांतस्वभाव होनेसे कुछ नहीं कहती तद्वत् मेरे घर तुम श्वश्रू (सास) ननद आदिकर उपालम्भ कटु वचनोंको प्राप्त भईभी उनको कुछ निषिद्ध वाणी न कहे किन्तु उनकी सेवा करे । इस मन्त्रको लेकर दृष्टांत देते हैं । यथा 'शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः । भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः ॥' शकुंतलाको श्वशुर-

कुलगमनकालमें इस वेदमंत्रका आशय लेकर भगवान् कश्यपजी शकुंतलाको उपदेश करते हैं कि–हे शकुंतले ! तुम यहांसे जाकर अपने श्वशुर सास सौहरा पतीसपतयों हरा इत्यादि जो २ गुरुजन उनकी सेवा करनी और सपत्नीभी मित्रता भगिनीवत् करनी यदि तुमारा भर्ता किसी कारणसे तुमपर क्रुद्ध हो दुर्वचनभी कहे तो आपने कुछ नहीं कहना परंतु उसका क्रोध मधुर वचनोंसे निवृत्त करना और जो परिजन नौकर चाकर दास दासी उनमें चतुर (चुस्त) रहना और किसीकी उन्नती देख शोच नहीं करना इत्यादिक श्रेष्ठ आचारसे स्त्रियां सर्ववस्तुकी मालिक प्रिय होती हैं। व्यतिरिक्त स्त्री कुलोंमें एक मानासिक रोग होता तथा निरादरको प्राप्त होती है इति। आगेभी स्त्रियोंका आचरण कहेंगे ॥ ५ ॥

भा० टी०–(मंत्रार्थ–नावेव) तुम हम विवाह अर्थात ऋषिवाक्यवेदद्वारा मंत्रबलसे कन्याको वरके गोत्रमें मिलाना और पतिभाव करनेको विवाह करते हैं इसको करे। अनंतर विवाहके तुम हम पुत्रोत्पत्तिके लिये वीर्य धारण कर बहुत पुत्रोंको प्राप्त होवें ॥ ६ ॥

तेसन्तुजरदष्टयः संप्रियौरोचिष्णूसुमनस्यमानौ ॥ पश्येमशरदः शतं जीवेमशरदः शतꣳशृणुयामशरदः शतमिति ॥ ७॥ ॐ

आरोहेममश्मानमश्मेवत्वꣳस्थिराभव ॥
अभितिष्ठतपृतन्यतोऽववाधस्वपृतनायइति
॥ ८ ॥ अथ गाथां गायति ॥ सरस्वतीप्रे-
दमवसुभगेवाजिनीवति ॥ यांत्वां विश्वस्य
भूतस्यप्रजायामस्याग्रतः ॥ यस्यांभूतꣳसम
भवद्यस्यांविश्वमिदंजगत् ॥ तामद्यगाथांगा-
स्यामियास्त्रीणामुत्तमंयश इति ॥ ९ ॥
अथ वधूवरौ अग्निं प्रक्रामयतस्तुभ्यमग्रे
इति मंत्रेणेति ॥

ऋ० मं० १० अ० ७ सू० ९५ मंत्र २८।

तुभ्यमग्रेपर्य्यवहन्त्सूर्या वहतुनासह ।पुनः
पतिभ्योजायांदाअग्नेप्रजयासहेति पठ-
न्परिक्रामेत् ॥ १० ॥

मा० टी०-ते संतु इस मंत्रका प्रजापति ऋषि यजुः छंद विष्णु देवता हस्तग्रहणमें विनियोग है । [मंत्रार्थ] वह पुत्र-पौत्रादि चिरंजीवी होंगे और तुम हम प्रेमयुक्त सुमन पुत्रादि सहित शत (१००) वर्ष रूपग्रहणमें (देखनेमें) तथा श्रवण करनेमें सामर्थ्य जीवित रहे ॥ ७ ॥

भा० टी०–आरोहेम इस मंत्रका अथर्वण ऋषि अनुष्टुप् छंद वधू देवता अश्म (शिला) के आरोहणमें विनियोग है। [मंत्रार्थ] हे पत्नि! तुम पाषाणकी समान निश्चल हो और हमारे शत्रुकी सेनाको उद्यमवालीको निरुद्यम करो ॥ ८ ॥

भा० टी०–कन्याके पाषाणपर स्थित होनेमें वर गाथा गायन करे। सरस्वती देवता गाथाके गायनमें विनियुक्त है। हे वाणिरूप सरस्वती कल्याणगुणविशिष्ट अन्नादिके देनेवाली अन्नपूरणे ! तुम यह वधूरूप द्वंद्वोंकी रक्षा करो तुमकोही इस पृथिव्यादि सर्व प्रपंचजातकी कारणरूप प्रकृति कहते हैं कि जिसमें विश्व लयको प्राप्त होती तथा सृष्टिके आदिमें उत्पन्न होती है प्रमाण सांख्यतत्त्वकौमुदी कारिका ६२ "तस्मान्न बध्यतेऽसौ न मुच्यते नापि संसरति कश्चित् । संसरति बध्यते मुच्यते च नानाश्रया प्रकृतिः ॥" अर्थ–कि पूर्वोक्त जो अनुपकारी पुरुषमें उपकार करनेवाली प्रकृति तिसके अर्थको नष्ट कर आचरण करती है इसलिये पुरुष न बंध होता न अत्यंत मुक्त होता न जन्मता मरता है परंतु प्रकृति नानाश्रय मुक्त करती बंधन करती उत्पन्न करती है। "असङ्गोऽयं पुरुषः" यह सांख्यसूत्रमेंभी लिखा है । विस्तारके भयसे व्याख्यान नहीं करते हैं और हम उस गाथाको गान करते हैं जो स्त्रियोंकी उत्तम पतिव्रतादि यश है ॥ ९ ॥

भा० टी०–अनंतर तुभ्यमग्रे इस मंत्रसे वधू वर अग्निकी परिक्रमा करे। तुभ्यमग्रे इस मंत्रका अथर्वण ऋषि अनुष्टुप् छंद अग्निर्देवता प्रदक्षिणामें विनियोग है। (मंत्रार्थ) हे अग्ने !

तुमारे लियेही सोमादि देवता इस कन्याको ग्रहण करते भये । अर्थात् २ वर्ष चंद्रमा पालन कर सौंदर्यताको दे गंधर्वको देता भया वह २ वर्ष पालन कर सुंदर कंठ वाणीको दे तुमारेको देता भया तुमभी तद्वत् पालन कर ६ वर्ष पर्यंत और पातिव्रताको देकर मुझको देवे अर्थात् हे अग्ने ! पालनके अनंतर पुत्रादि दे मुझ भर्ताके साथ मिलावे ॥ १० ॥

एवं पश्चादग्नेः स्थित्वा लाजाहोमसाङ्गुष्ठहस्तग्रहणाश्मरोहणगाथागानाग्निप्रदक्षिणानि पुनरपि द्विस्तथैव कर्तव्यानीति ॥ एतेन नवलाजाहुतयः साङ्गुष्ठहस्तग्रहणत्रयं च संपद्यते तथा आसनविपर्ययः । ततोऽवशिष्टलाजैः कन्याभ्रातृदत्तैरञ्जलिस्थशूर्पकोणेन वधूर्जुहोति ॥ ॐ भगाय स्वाहा इदं भगा० । अथाग्रे वरः पश्चात्कन्या तूष्णीमेव चतुर्थपरिक्रमणं कुरुतः । ततो वर उपविश्य ब्रह्मणान्वारब्ध आज्येन प्राजापत्यं जुहुयात् । ॐ प्रजापतये स्वाहा इदं प्रजापतये० । इति मनसा । प्रोक्षणीपात्रे आहुतिशेषाज्यप्रक्षेपः । तत आलेपनेनोत्तरकृतसप्तमण्डलेषु सप्तपदाक्रमणं वरः कारयेत् वक्ष्यमाणमंत्रैः ॥

भा० टी०—इस प्रकार अग्निके पीछे स्थित हो लाजा हवन साथ अंगुष्ठके हस्त ग्रहण । अश्मारोहण गाथाका गान अग्निकी प्रदक्षिणा फिर दो वार करनी चाहिये । अर्थात् पूर्वोक्त तीन २ वार कर्तव्य है । और आसनका बदलाना एक वार चाहिये शेष कन्याके भ्राताने दी हुई लाजोंसे शूर्पकी कोनसे वधू हवन करे भगाय स्वाहा इस मंत्रसे । फिर आगे वर पीछे कन्या चुपचापसे चतुर्थ परिक्रमण करे । प्रजाप० इसको मनसे कहे और इस हवनमें आहुति शेष घृतका प्रोक्षणी-पात्रमें प्रक्षेप करे अनंतर आलेपन (वटना) से उत्तरोत्तर क्रम सप्तमंडलको वर वधूसे आक्रमण करवावे ॥

ॐ एकमिषेविष्णुस्त्वानयतु ॥ द्वेऊर्जेविष्णुस्त्वानयतु । त्रीणिरायस्पोषायाविष्णुस्त्वानयतु । चत्वारि मायोभवायविष्णुस्त्वानयतु । पञ्च पशुभ्योविष्णुस्त्वा नयतु । षट्ऋतुभ्योविष्णुस्त्वानयतु ॥ सखे सप्तपदा भवसामनुव्रताभव विष्णुस्त्वानयतु ॥ ततोऽग्नेः पश्चादुपविश्य पुरुषस्कंधे स्थितात्कुम्भादाम्रपल्लवेन नवजलमानीय तेन वरो वधूमभिषिञ्चति ॥ ॐआपःशिवाः

शिवतमाः शांताः शान्ततमास्तेकृण्वन्तु भेषजमिति । अनेन पुनस्तथैव तस्मादेव कुम्भात्तथैवानीतजलेन ।

य० अ० ११ मंत्र ५ ।

आपोहिष्ठामयोभुवस्तानं ऊर्ज्जे दधातन ॥ महेरणाय चक्षसे ॥ योवंः शिवतमोरस स्तस्यभाजयतेहनंः उशतीरिवमातरंः ॥ तस्मा ऽ अरंङ्गमामवोयस्यक्षयायजि न्वथ ॥ आपो जुनयथाचनं ॥ इतितिसृ- भिर्वधूमात्मानंचाभिषिञ्चति ॥ इति ॥

भा०टी०—विष्णुरूप हम तुमको अन्नादि प्राप्तिके लिये एक पद आक्रमण कराते हैं । प्रसन्न हो. वधू यह कहे । धनं धान्यं च मिष्टान्नं व्यञ्जनाद्यं च यद्गृहे । मदधीनं च कर्तव्यं वधूराद्ये पदे वदेत् ॥ १ ॥

भा०टी०—विष्णुस्वरूप हम बलके लिये द्वितीयपद आक्र- मण कराते हैं । फिर वधू यह कहे । कुटुम्बं पर्थायिष्यामि ते सदा मञ्जुभाषिणी । दुःखे धीरा सुखे हृष्टा द्वितीये साब्रवी- द्वरम् ॥ २ ॥

भा०टी०—विष्णुस्वरूप हम धन पुष्टिके लिये तुमारा तृतीय

पद आक्रमण कराते हैं। अनंतर वधू यह कहे । ऋतौ काले शुचिः स्नाता क्रीडयामि त्वया सह। नाहं परपतिं यायां तृतीये साब्रवीद्वरम् ॥ ३ ॥

भा०टी०-चतुर्थपदको विष्णुस्वरूप हम सुखकी प्राप्तिके लिये आक्रमण कराते हैं। फिर वधू यह कहे। लालयामि च केशान्तं गन्धमाल्यानुलेपनैः । काञ्चनैर्भूषणैस्तुभ्यं तुरीये साब्रवीद्वरम् ॥ ४ ॥

भा०टी०-विष्णुस्वरूप हम पशुसुख गौ महिषी इत्यादिक दुग्धदधिघृतभक्षणरूप और अश्वादि आरोहणके लिये पंचम-पदको आक्रमण कराते हैं। वधूभी यह वाक्य कहे । सखी-परिवृता नित्यं गौर्य्याराधनतत्परा । त्वयि भक्ता भविष्यामि पंचमे साब्रवीद्वरम् ॥ ५ ॥

भा०टी०-विष्णुस्वरूप हम छः (षट्) ऋतुओंके सुख भोगनेके लिये तुमारा पद आक्रमण कराते हैं। वधूवाक्य जैसे-यज्ञ होमे च दानादौ भवेयं तव वामतः। यत्र त्वं तत्र तिष्ठामि पदे षष्ठेऽब्रवीद्वरम् ॥ ६ ॥

भा० टी०-मेरी आज्ञामें होकर पतिव्रतादि धर्मशीलसे तुम सप्तलोकमें प्रख्यात हो जैसे अरुंधति जानकी इत्यादि पति-व्रता हो अद्यपर्यन्त सप्तलोकमें प्रसिद्ध हैं॥ ७ ॥ इति सप्त-पदाक्रमणमंत्रिः ॥

भा० टी०-अनंतर अग्निके पश्चिम स्थित हो पुरुषस्कंध स्थित घटसे आम्रपत्रसे जल लेकर वर वधूका मस्तक अभि-

षिचन करता है आपः शिवा इत्यादि मंत्रोंसे । आपः शिवा इस मंत्रका प्रजापति ऋषि यजुः छन्द जल देवता अभिषेचनमें विनियोग है । (मंत्रार्थ) कल्याणहेतु अतिशयसे कल्याणकारक और शीतल अतिशयसे शान्ति करनेवाले जलदेव तुमारेको आरोग्य करे । आपोहिष्ठादि तीन मंत्रोंका सिन्धुद्वीप ऋषि गायत्री छंद जल देवता मार्जनमें विनियुक्त है (मंत्रार्थ) हे जलदेव ! प्रसिद्ध यश और अनुभव किये तुम मुझको बलके लिये अन्नादि भोगने लिये धारण करे और महान् सुन्दर देखने योग्य अत्यंत कल्याणके देनेवाले बलपुष्टि करनेवाले दुग्ध घृत स्तन्य पानादिसे माताकी न्याई आप मुझको रस देवें और जिस पापके नाशके लिये उत्पन्न करते हैं तिस रसके लिये हम शीघ्र जाते हैं । हे जलदेव ! आप मोक्षप्राप्तिके लिये योग्य हमको उत्पन्न करो अर्थात् तुमारी कृपा और आचरणसे शौचादिसे हमको मोक्ष हो। प्रमाण जैसे पातंजलदर्शन योगसूत्रमें "शौचात्स्वांगे जुगुप्सा परैरसंसर्गः" इति ॥

तत्सूर्यमुदीक्षस्वेति वधूं संबोधयति वरः ॥ तच्चक्षुरित्यृचं पठित्वा वधूः सूर्यं पश्येत् ॥ मंत्रो यथा ॥

यजुर्वेद अध्याय ३६ मंत्र २४ ।

तच्चक्षुर्देवहितम्पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् ।
पश्येम शरदः शतञ्जीवेम शरदः शतꣳ

शृणुयामशरदःशतम्प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाःस्यामशरदः शतम्भूयश्च शरदःशतात् ॥

इति पठित्वा सूर्यं पश्यति । अस्तंगते सूर्य्ये ध्रुवमुदीक्षस्व इति प्रेषानन्तरं ध्रुवं पश्यामीति ब्रूयात् तत्र वरपठनीयो मंत्रः । ॐ ध्रुवमसिध्रुवंत्वापश्यामि ध्रुवैधि पोष्यामयिमह्यंत्वादाद्बृहस्पतिर्मयापत्याप्रजावतीसञ्जीवशरदः शतमिति पठेत् ॥

भा० टी०-सूर्य्यको देखो यह वर वधूको कहे तच्चक्षु इस मंत्रको पढ वधू सूर्यको देखे तच्चक्षु इस मंत्रका दध्यङ्ङाथर्वण ऋषि अक्षरातीतिपुर उष्णिक् छंद सूर्य देवता सूर्य्यके उपस्थानमें विनियोग है । [मंत्रार्थ] स्वाहा स्वधाप्रभृति संपूर्ण देवता और पितर जिसके उदय होनेसे तृप्त होते हैं ऐसा देवसहित और नेत्रोंसे होनेसे चक्षु जो सूर्य भगवान् प्रमाण यजु० अध्याय ३१ "चक्षोः सूर्यो अजायत" अर्थ-विराड् भगवान्के नेत्रसे सूर्य जो भये । आदिमें कामादि और अविद्यादि दोषरहित उदयको प्राप्त हो ऊर्ध्वको जाता है उस सूर्यभगवान्को हम शत (१००) वर्ष देखें और जीवित रहें कर्णोंसे यश श्रवण करें वाणीसे श्रेष्ठस्तुत्यादि करें और अदीन रहकर शत (१००) वर्षसे अधिक बीस वर्ष-

जीवते रहे प्रमाण पूर्णायुमें जैसे बृहज्जातके—"समाः षष्टि र्द्विघ्ना मनुजकरिणां पंच च निशा ।" इस प्रमाणसे १२० वर्ष और पंचरात्र मनुष्यकी पूर्णायु है रात्रिमें ध्रुवजीको दर्शन करे वर मन्त्रको पढे ध्रुवमसि इस मन्त्रका परमेष्ठि ऋषि पंक्ति छंद प्रजापति देवता ध्रुवजीके दर्शनमें विनियुक्त है [मंत्रार्थ] हे ध्रुव ! तुम सदैव रहनेवाले निश्चल है इसलिये तुमारा दर्शन करते हैं । भाव—जैसे ध्रुवजी निश्चल है तद्वत् तुम निश्चल हो और मेरे पुत्रपौत्रादिके पुष्टि करनेवाली हो इसलिये प्रजापति ब्रह्माजी मुझको देते भये मेरेसे युक्त प्रजापति तुम शत वर्ष जीवित रहो । यदि वधूकी दृष्टिमें ध्रुव न आवे तो देखता हूं यह कह दे ॥

अथ वरो वधूदक्षिणांसस्योपरि हस्तं नीत्वा तस्या हृदयमालभेत । मंत्रो यथा । मम व्रतेतेहृदयंदधातुममचित्तमनुचित्तंतेऽस्तु॥ ममवाचमेकमनाजुषस्वप्रजापतिष्ट्वानियुनक्तुमह्यमितिमंत्रेण । अथ वधूमभिमन्त्रयाति वरः ॥ सुमङ्गलीरियंवधूरिमाᳬसमेतपश्यत। सौभाग्यमस्यैदत्त्वायाथास्तंविपरेतनेति ॥ अथ स्विष्टकृद्धोमः ॥ ॐ अग्नयेस्विष्टकृते-स्वाहा इदमग्नयेस्विष्टकृते० ॥ अथ स्रुवान-

शिष्टाज्यस्य प्रोक्षणीपात्रे प्रक्षेपः अयञ्च होमो ब्रह्मणान्वारब्धकर्तृकः ॥ अथ संस्रव-प्राशनं । तत आचम्य पूर्णपात्रं दक्षिणां ब्रह्मणे दद्यात् ॥ ॐ अद्य कृतैतद्विवाहहोम-कर्म्मणि आचार्य्यकर्मप्रतिष्ठार्थं इदं हिरण्य-माग्निदैवतद्रव्यम् यथानामगोत्रायामुकश-र्म्मणे ब्राह्मणाय दक्षिणां तुभ्यमहं संप्रददे। ततो ब्रह्मग्रंथिविमोकः ॥

भा० टी०—वर वधूके दक्षिण अंसपर हस्तको रख हृदयको स्पर्श करे मम व्रते इस मन्त्रका परमेष्ठि ऋषि त्रिष्टुप् छन्द प्रजापति देवता हृदयके स्पर्शमें विनियोग है [मंत्रार्थ] मेरे शास्त्रविहित नियमाचरणमें तुमारे हृदयको प्रजापति धारण करे और मेरे चित्तके अनुकूल तुमारा चित्त होवे और मेरे वचनको सुखपूर्वक करो। अनंतर वर वधूको अभिमंत्रण करे। सुमङ्गली इस मन्त्रका प्रजापति ऋषि अनुष्टुप् छन्द विवाहाधिष्ठात्री देवता अभिमंत्रणमें विनियोग है। [मंत्रार्थ] हे विवाहाधिष्ठात्रिदेवता गौरी पद्मा शची प्रभृतया ! यह सुमंगलयुक्त वधूको मिल इसको दृष्टिसे देखो और इसको सौभाग्य पुत्रपौत्रादि देकर पुनः आनेके लिये जावो। ॐ अग्नये स्विष्टकृते इस मन्त्रसे आहुति देकर स्रुवालग्न घृतको प्रोक्षणीपात्रमें गेरना और यह होम ब्रह्माका अन्वारब्ध कर करना संस्रव प्राशन करना अनंतर

आचमन कर पूर्णपात्र दक्षिणा ब्रह्माको देवे संकल्प कर ब्रह्मा स्वस्ति कहे । अनंतर ब्रह्मग्रंथि खोल देनी ॥

अत्र ग्रामवचनं च कुर्युः ॥ ॐसुमित्रियानआप ओषधयः सन्तु इति प्रणीताजलेन पवित्रे गृहीत्वा शिरःसंमृज्य दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योस्मान्द्वेष्टियञ्चवयंद्विष्मः ॥ इत्यैशान्यां सपवित्रां सजलां प्रणीतां न्युब्जीकुर्यात्॥ ततआस्तरणक्रमेण बर्हिरुत्थाप्य आज्येनावघार्यवक्ष्यमाणमन्त्रेण हस्तेनैव जुहुयात् ॥

यजुर्वेद अध्याय ८ मंत्र २१ ।

ॐ देवांगातुविदोगातुंवित्वागातुमित । मनसस्पतऽइमंदेवयज्ञ ँ स्वाहावातेधाःस्वाहा ॥ इति बर्हिर्होमः ॥

तत उत्थाय वध्वा दक्षिणहस्तेन स्पृष्टैः स्रुवस्थघृतपुष्पफलैः पूर्णाहुतिं कुर्यात् ॥ मूर्द्धानामिति मंत्रस्य भरद्वाज ऋषिर्वैश्वानरो देवता त्रिष्टुप् छंदः पूर्णाहुतिहोमे विनियोगः ॥

यजुर्वेद अध्याय ७ मंत्र २४ ।

ॐ मूर्द्धानंदिवोऽअंरतिम्पृंथिव्यावैं-
श्वानुरमृतऽआजातमुग्निम्। कुविंᳬसु-
म्राजुमतिंथिं जनांनामासन्नापात्रं जनय-
न्तदेवाःस्वाहा ॥

इदमग्नये ० ॥ तत उपविश्य स्रुवेण भस्मा-
नीय दक्षिणानामिकाग्रेण ॥

यजुर्वेद अध्याय ३ मंत्र ६२ ।

त्र्यायुषंजमदंग्नेः इति ललाटे । कुश्य-
पस्य त्र्यायुषम् इतिग्रीवायां । यद्देवेषु
त्र्यायुषं इति दक्षिणबाहुमूले ॥ तन्नोंऽअ-
स्तुत्र्यायुषम् इति हृदये ॥

अनेनैव क्रमेण वध्वा त्र्यायुषं कुर्यात् । तत्र
तन्नो इत्यत्र तत्ते इति विशेषः ॥

भा० टी०—नगरका आचार करे कुलरीति जैसे सुमित्रि-
यान इस मंत्रका विश्वामित्र ऋषि अनुष्टुप छंद मित्र देवता
मार्जनमें विनियुक्त है । (मंत्रार्थ) जल और औषधी हमारेको

परम सुख देवे इस मंत्रसे शिरको जल सिञ्चन करे । और जो हमारेसे द्वेष करता जिसको हम शत्रु मानते हैं इसको जल औषधि दुःखको दे इस मंत्रसे साथ जलके प्रणीतावो साथ जलसे न्युब्ज (पुठो) करे ईशानमें। अनंतर पूर्वोक्त आस्तरण क्रमसे कुशा उठाय घृतसे युक्त कर देवागातु मंत्र पढ हाथसे हवन करे । [देवागातु इस मंत्रका अर्थ] हे देवतालोक ! तुम यज्ञके जाननेवाले हैं इसलिये विष्णुरूप यज्ञको जानकर सुखपूर्वक जाओ । हे अंतर्यामी ब्रह्मस्वरूप ! यह यज्ञफल तुमारे अर्पण किया जाता है तुम वायुको अर्पण करो । अनं तर उठकर वधूके दक्षिण हाथसे युक्त स्रुवपर घृत पुष्प फल रख मूर्द्धानं इस मंत्रसे पूर्णाहुति देवे । मूर्द्धानं इस मंत्रका भारद्वाज ऋषि अग्नि देवता त्रिष्टुप् छंद पूर्णाहुतिहोममें विनि-युक्त है । [मंत्रार्थ] स्वर्गादि लोकसे ऊपर पृथिव्यादि पांच भूतोंसे विरिक्त ब्रह्माण्डको प्रकाश करनेवाला ईश्वर सत्यरूप जन्मादि षड्भावरहित निर्विकार प्रकाशमान सर्वज्ञ परमानंद तीन कालसे रहित सृष्टिलयसे प्राणियोंका पात्रभूत और जो देवताको उत्पन्न कर स्वस्वव्यापारमें लगाता है तिस परमेश्वरके लिये यह आहुति सुहुत हो । बैठकर स्रुवसे भस्मको ले दक्षिण अनामिकासे ललाट ग्रीवा दक्षिणबाहु के हृदयमें ४ यथाक्रम त्र्यायुषं इस मंत्रसे लगावे वर और वधूके लगानेमें तवो इस स्थानमें तत्ते यह पढे ॥

तत आचारात् ज्ञणशंखक्षमीपुष्पाद्रक्षिता-

रोपणसिंदूरकणं वरः कुर्यात् ॥ अथ वेदितो मण्डपमागत्य दूर्वाक्षतादिग्रहणम् ॥ ततस्त्रिरात्रमक्षारालवणाशिनौ अधःशायिनौ निवृत्तमैथुनौ भवतः । प्राङ्मुखौ वधूवरौ स्थितौ भवतः ॥

इति श्रीपदक्रमजटाघनाद्यखिलवेदवेदाङ्गन्यायमीमांसादिशास्त्रसंपन्नअपारमाहिमाविराजितश्रीमच्छ्रीगणेशसूनुश्रीरामदत्तकृता वाजसनेयीयजुर्वेदीयकात्यायनसूत्रवतां विवाहपद्धतिः समाप्ता ॥

भा० टी०—आचारसे शणशंखशमीपुष्प भिगे चावलको और सिंदूरको कन्याके मस्तकपर चढाना । और ग्रामके वचनको वर करे । अनंतर वेदीसे मंडपको आकर दूर्वाक्षत ग्रहण करने बाद तीन रात्र लवण क्षार भोजन मैथुन नहीं करना और भूमिशयन प्राङ्मुख होकर बैठना होगा । प्रमाण जैसे गृह्यसूत्रमें " त्रिरात्रमक्षारालवणाशिनौस्यातामधः शयीता २ संवत्सरं न मिथुनमुपेयातां द्वादशरात्र २ षड्रात्रं त्रिरात्रमन्ततः ॥ " इति श्रीगुरुदेवद्विजगोचरणसेवककाव्यनाटकनीतिसाहित्यज्योतिषचिकित्सादिप्रवीण—शिक्षासूत्रव्याकरणछन्दशुक्लयजुर्वेदाध्यायी—गौतमगोत्र [शोरि] ज्ञातिसम्भूतवि-

पाशाशतद्‌दुर्गंतर्गत—श्रीमहाराजजगज्जीतसिंहरक्षितराजधानीक-पूरस्थलनिवासि—श्रीघनैयारामशर्मणः प्रपौत्रः श्रीतुलसीराम-शर्मणः पौत्रः श्रीदैवज्ञदुनिचंद्रात्मजश्रीयुतकरुणासिंधुसर्वबंधु-श्रीपण्डितविष्णुदत्त—वैदिककृतविवाहपद्धतिटीका विक्रमार्कात् ऋषिवेदांकभूमिते १९४७ वर्षे मधुमासे रामनवम्यां तिथौ रात्रौ समाप्तिमगात् तच्च शुभं भूयात् श्रीरामचन्द्रप्रसादात् विप्राज्ञया च ॥

प्रार्थना.

यदशुद्धमसम्बद्धमज्ञानाच्च कृतं मया । विद्वद्भिः क्षम्यतां सर्वं बालत्वादयमञ्जलिः ॥ सूर्याचन्द्रमसौ यावत् पृथ्वी विश्वस्य धारिणी । विवाहपद्धतेष्टीका तावत्तिष्ठतु मे कृता ॥

इति षष्ठं प्रकरणं समाप्तम् ॥ ६ ॥

अथ सप्तमप्रकरणम् ।

ॐ स्वस्ति श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ चतुर्थीकर्म प्रारभ्यते ॥ तत्र चतुर्थ्यामपररात्रे चतुर्थीकर्म तच्च गृहाभ्यन्तर एव कार्यं । तत उद्वर्तनादि कृत्वा युग्मकाष्ठ उपविश्य वधूवरौ प्राङ्मुखौ भवतः गणपत्यादिदेवता-

पूजनं। ततःकुशकण्डिकाप्रारम्भः॥ तत्र क्रमः॥ जामातृहस्तपरिमितां वेदीं कुशैः परिसमूह्य तान्कुशानैशान्यां निक्षिप्य गोमयोदकेनोपलिप्य रफ्येन स्रुवेण वा प्रागग्रप्रादेशमात्रत्रिरुत्तरोत्तरक्रमेणोल्लिख्य उल्लेखनक्रमेण अनामिकाङ्गुष्ठाभ्यामृदमुद्धृत्य। जलेनाभ्युक्ष्य तत्र तूर्ष्णीं कांस्यपात्रेणाग्निमानीय स्वाभिमुखं निदध्यात्॥

भा० टी०—विवाहके अनंतर चतुर्थीकर्म लिखते हैं। विवाहकी रात्रिसे चतुर्थरात्रमें चतुर्थीकर्म गृहके अंतरमें करना चाहिये। और उद्वर्तन (उबटना) आदि कर्म कर युगकाष्ठ अर्थात् हलपजालिपर बैठ स्नान कर शुद्ध वस्त्रको धारण कर घरमें प्रवेश हो वधूवर पूर्वमुख होकर बैठे और गणपति षोडश (१६) मात्रा नवग्रहादि विवाहवत् सर्व पूजा करे। अनंतर कुशकण्डिका करनी। तिसमें विधि यह है। जामातृके हस्त ४ सदृश वेदी बनाय कुशोंसे समूहन कर वह कुशा ईशानमें प्रक्षेप कर गोमयजलसे लेप देय स्फय वा स्रुवसे प्रादेशमात्र उत्तर क्रमसे उल्लेखन त्रय रेखा कर इसी प्रकार मृत्तिका प्रक्षेप कर जल अभ्युक्षण कर कांस्यपात्रमें तूर्ष्णीं हो अग्नि ले अपने सन्मुख वेदीमें स्थित करे॥

ततः पुष्पचन्दनतांबूलवस्त्राण्यादाय । ॐ अस्यां रात्रौ कर्तव्यचतुर्थीकर्महोमकर्मणि कृताऽकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्मकर्तुममुकगोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणमेभिः पुष्पचंदनतांबूलवासोभिर्ब्रह्मत्वेन त्वामहं वृणे । इति ब्रह्माणं वृणुयात् । ॐ वृतोस्मीति प्रतिवचनं । यथाविहितं कर्म कुर्विति वरेणोक्ते । करवाणीति ब्राह्मणो वदेत् ॥ ततोऽग्नेर्दक्षिणतः शुद्धमासनं दत्त्वा तदुपरि प्रागग्रान्कुशानास्तीर्य्य ब्रह्माणमग्निप्रदक्षिणक्रमेणानीय ॐ अत्र त्वं मे ब्रह्मा भव इत्यभिधाय । ॐ भवानीति ब्राह्मणेनोक्ते । कल्पितासने उदङ्मुखं ब्रह्माणमुपवेशयेत् ॥

भा० टी०—अनंतर पुष्प चंदन तांबूल वस्त्र ले इस चतुर्थरात्रिमें करना जो होम उसकी अशुद्धि शुद्धि साक्षीके लिये अमुक गोत्र ब्राह्मण तुमको ब्रह्मा समझ कर वरण करता हूं । मैंने वर्णी ली । फिर यथाविहित आप कर्म कीजिये यह वर कहे । करता हूं ब्रह्मा कहे । अनंतर दक्षिण अग्निसे शुद्ध आसन देकर ऊपर पूर्वाग्र कुशा बिछाय अग्निकी प्रदक्षिण

कर यहां तुम ब्रह्मा होवे । हुआ यह ब्राह्मण कहे । फिर उत्तराभिमुख उस आसनपर ब्रह्माको स्थित करे ॥

ततः पृथूदकपात्रमग्नेरुत्तरतः प्रतिष्ठाप्य प्रणीतापात्रं पुरतः कृत्वा वारिणा परिपूर्य्य कुशैराच्छाद्य ब्रह्मणो मुखमवलोक्याग्नेरुत्तरतः कुशोपरि निदध्यात् ॥ ततः परिस्तरणं ॥ बर्हिषश्चतुर्थभागमादाय आग्नेयादीशानान्तं ब्रह्मणोऽग्निपर्यन्तं नैर्ऋत्याद्वायव्यांतं अग्नितः प्रणीतापर्यन्तं । ततोऽग्नेरुत्तरतः पश्चिमादिशि पवित्रच्छेदनार्थं कुशत्रयं पवित्रकरणार्थं साग्रमनन्तर्गर्भकुशपत्रद्वयं प्रोक्षणीपात्रं । आज्यस्थाली । सम्मार्जनार्थं कुशत्रयं । उपयमनार्थं वेणीरूपकुशत्रयं । समिधस्तिस्रः । स्रुवः । आज्यं । षट्पञ्चाशदुत्तरवरमुष्टिशतद्वयावच्छिन्नतण्डुलपूर्णपात्रं । एतानि पवित्रच्छेदनकुशानां पूर्वपूर्वदिशि क्रमेणासादनीयं ॥ ततः पवित्रच्छेदनकुशैः पवित्रे छित्त्वा प्रादेशमितपवित्रकरणम् ॥

भा०टी०—अग्निसे उत्तर जलसहित पीतलका कुंभ स्थापन कर प्रणीतापात्रको सन्मुख कर जलसे भर कुशोंसे आच्छादित कर ब्रह्माजीको देख अग्नि उत्तर कुशामें स्थित करे। अनंतर कुशोंका चतुर्थ भाग ले अग्निसे ईशानपर्यंत ब्रह्मासे अग्निपर्यंत निर्ऋति कोणसे वायुकोणपर्यंत और समिद्ध अग्निसे प्रणीतापर्यंत पूर्वोत्तर क्रमसे आस्तरण करे फिर अग्निसे उत्तर पश्चिम दिशामें पवित्र छेदनार्थ कुशत्रय और पवित्र करणके लिये गर्भपत्ररहित अग्रसहित दो कुशपत्र प्रोक्षणीपात्र आज्यस्थाली संमार्जन शुद्धिके लिये तीन कुशा उपयमन (हस्तग्रहण) के लिये वेणीरूप तीन कुशा। तीन समिधा पालाशकी। स्रुव घृत ५६ मुष्टिमित तण्डुलयुक्त पूर्णपात्र। यह पवित्र छेदन कुशाके पूर्व २ क्रमसे स्थित करने। अनंतर पवित्र छेदन कुशासे पवित्रे छेदन कर प्रादेशमात्र पवित्र बनावे ॥

ततः सपवित्रकरेण प्रणीतोदकं त्रिःप्रोक्षणीपात्रे निधाय अनामिकाङ्गुष्ठाभ्यामुत्तराग्रे पवित्रे धृत्वा त्रिरुत्पवनं ततः प्रोक्षणीपात्रस्य सव्यहस्तकरणम्। पवित्रे गृहीत्वा त्रिरुद्दिङ्गनं। प्रणीतोदकेन प्रोक्षणीप्रोक्षणं। ततः प्रोक्षणीजलेन यथासादितवस्तुसेचनम् ॥ ततोऽग्निप्रणीतयोर्मध्ये प्रोक्षणीपात्रं निधाय

आज्यस्थाल्यामाज्यनिर्वापः। ततोऽधिश्रयणम्। ततो ज्वलत्तृणादिना हविर्वेष्टयित्वा प्रदक्षिणक्रमेण पर्यग्निकरणम्। ततः स्रुवं प्रतप्य सम्मार्जनकुशानामग्रैरन्तरतो मूलैर्बाह्यतः स्रुवसंमार्जनम्। प्रणीतोदकेनाभ्युक्ष्य पुनः प्रतप्य स्रुवं दक्षिणतो निदध्यात् ॥

भा० टी०—अनंतर सपवित्र हस्तसे प्रणीताके जलको तीन वार प्रोक्षणीपात्रमें प्रक्षेप कर अनामिका अंगुष्ठसे उत्तराग्र पवित्र धारण कर तीन वार ऊर्ध्वको पवित्रसे जल फेंकना फिर प्रोक्षणीपात्रको वाम हस्तमें स्थित कर पवित्रे ग्रहण कर तीन वार उर्ङ्गिन करे और प्रणीताजलसे प्रोक्षणीपात्रको प्रोक्षण कर फिर प्रोक्षणीजलसे सर्व वस्तु सिंचन करे। अनंतर अग्नि प्रणीतामध्यमें प्रोक्षणीपात्र धर दे। आज्यस्थालीमें घृत तपाय अग्निमें रख ज्वलत्तृणसे हवि वेष्टन कर प्रदक्षिण क्रमसे पर्यग्निकरण अर्थात् अग्निमें तृणको प्रक्षेप करे। फिर स्रुवको तपाय सम्मार्जन कुशाके अग्रभागसे मध्यसे साफ करे और मूलसे ऊपर साफ कर फिर अग्निमें तपाय दक्षिणमें स्थित करे ॥

तत आज्यस्याग्नेरवतारणम्। तत आज्ये प्रोक्षणिवदुत्पवनं। अवेक्ष्य सत्यपद्रव्ये

तन्निरसनं । पुनः पूर्ववत्प्रोक्षण्युत्पवनम् । उपयमनकुशान्वामहस्तेनादाय उत्तिष्ठन् प्रजापतिं मनसा ध्यात्वा तूष्णीं घृताक्ताः समिधास्तिस्रः क्षिपेत् । तत उपविश्य प्रोक्षणीजलेनाग्निं प्रदक्षिणं पर्युक्ष्य पवित्रं प्रोक्षणीपात्रे धृत्वा ब्रह्मणान्वारब्धः पातितदक्षिणजानुर्जुहुयात् । तत्राघारादारभ्याहुतिचतुष्टये तत्तदाहुत्यनन्तरं स्रुवावस्थिताज्यं प्रोक्षिण्यां क्षिपेत् । ॐ प्रजापतये स्वाहा इदं प्रजापतये० ॥ इति मनसा । ॐ इन्द्राय स्वा० इदमिन्द्राय । इत्याघारौ । ॐ अग्नये स्वाहा इदमग्नये० ॥ ॐ सोमाय स्वाहा इदं सोमाय० । इत्याज्यभागौ । तत आज्याहुतिपंचतये स्थालीपाकाहुतौ च प्रत्याहुत्यनन्तरं स्रुवावस्थितहुतशेषघृतस्य प्रोक्षणीपात्रे प्रक्षेपः ॥

भा० टी०—घृतको अग्निसे उतार घृतकोभी प्रोक्षणीवत् उत्पवन कर यदि कुत्सितद्रव्य घृतमें होय तो निकाल फिर

पूर्ववत् प्रोक्षणीका उत्पवन कर उपयमन कुशा वामहस्तमें ले उठकर प्रजापतिका मनमें ध्यान कर तूष्णीं हो घृतयुक्त तीन समिधा अग्निमें प्रक्षेप करे फिर बैठकर प्रोक्षणीजलसे अग्निको प्रदक्षिण क्रमसे पर्युक्षण कर पवित्रा प्रोक्षणीपात्रमें रख ब्रह्मासे अन्वारब्ध अर्थात् कुशा मिलाय दक्षिण गोडा नमाय स्रुवसे हवन करे और चार आहुतिके अनंतर स्रुवमें अवशिष्ट घृतका प्रोक्षणीपात्रमें प्रक्षेप करे। प्रजापतिकी आहुति मनसे कहे इंद्र अग्नि सोम यह क्रमसे चार आहुति हवन करे फिर घृतसे जो पंच आहुति और स्थालीपाक आहुतिमें आहुतिके अनंतर स्रुवमें अवशिष्ट घृतका प्रोक्षणीपात्रमें प्रक्षेप करना॥

ततो ब्रह्मणान्वारब्धं विना। ॐ अग्नेप्रायश्चित्तेत्वं देवानांप्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वानाथकामउपधावामियास्यैपतिघ्नीतनूस्तामस्यैनाशयस्वाहा। इदमग्नयेनमम॥ १॥ ॐवायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसिब्राह्मणस्त्वा नाथकामऽउपधावामि यास्यैप्रजाघ्नीतनूस्तामस्यै नाशयस्वाहा। इदं वायवे न मम॥ २॥ ॐ सूर्यप्रायश्चित्तेत्वंदेवानां प्रायश्चित्तिरसिब्राह्मणस्त्वानाथकामऽउपधावामि यास्यैपशुघ्नीतनूस्ताम-

स्यैनाशय स्वाहा । इदं सूर्याय न मम॥ ३॥
ॐ चन्द्रप्रायश्चित्तेत्वंदेवानांप्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वानाथकाम ऽउपधावामियास्येगृह-प्नीतनूस्तामस्येनाशयस्वाहा । इदं चंद्रमसे न मम ॥ ४ ॥ गन्धर्वप्रायश्चित्तेत्वं देवानां-प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वानाथकाम ऽउप-धावामियास्ये यशोघ्नी तनूस्तामस्येनाशय स्वाहा । इदं गन्धर्वाय न मम ॥ ५ ॥

मा० टी०-(मंत्रार्थ-अग्नेप्रायश्चित्ते) हे अग्निदेव ! प्राय-श्चित्तस्वरूप देवताओंके दोषनाशक तुमकोही स्तुतिपूर्वक मैं ब्राह्मण प्राप्त होता हूं । कि इस स्त्रीका पतिविरोधिक अर्थात् पतिनाशक अंगलक्षण शरीरको नाश करो अस्ये यह चतुर्थ्यर्थमें षष्ठी विभक्ति है ॥ १ ॥

मा० टी०-(मंत्रार्थ-वायोप्रायश्चित्ते) हे वायुदेव ! इस स्त्रीका जो प्रजाघ्नी संतानविरोधि अर्थात् पुत्रनाशक शरीर (वा अंगविशेष) उसका नाश करो ॥ २ ॥

मा० टी०-(मंत्रार्थ-सूर्यप्रायश्चित्ते) हे सूर्यदेव ! इस स्त्रीका जो पशुविरोधि अर्थात् पशुनाशक शरीर वह नाश करो ॥ ३ ॥

भा० टी०--(मंत्रार्थ–चन्द्रमाप्रायश्चित्ते) हे चन्द्रमादेव ! इस स्त्रीका जो गृहविरोधि अर्थात् गृहनाशक शरीर है वह नाश करो ॥ ४ ॥

भा० टी०--(मंत्रार्थ–गन्धर्वप्रायश्चित्ते) हे यशके प्रकाशक गन्धर्वदेव ! इस स्त्रीका जो यशविरोधि अर्थात् यशनाशक शरीर उसका नाश करो ॥ ५ ॥

चरुमभिघार्य ततः स्थालीपाकेन जुहुयात् ॥ ॐ प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये० इति मनसा । अग्न्याहुतिनवके हुतशेषघृतस्य प्रोक्षणीपात्रे प्रक्षेपः । अयं च होमो ब्रह्मणान्वारब्धकर्तृकः । तत आज्यस्थालीपाकाभ्यां स्विष्टकृद्धोमः । ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा इदमग्नये स्विष्टकृते० ॥ तत आज्येन । ॐ भूःस्वाहा इदमग्नये० । ॐ भुवः स्वाहा इदं वायवे० । ॐ स्वः स्वाहा इदं सूर्याय० ॥ एता महाव्याहृतयः ॥

भा० टी०--चरुको तप्त कर स्थालीपाकसे हवन करे ॐ प्रजापतये स्वाहा यह मंत्र मनसे कहे । अग्नये स्वाहा इस आहुतिसे नव आहुतिपर्यंत हुतशेष घृतका प्रोक्षणीपात्रमें प्रक्षेप करे । यह होम ब्रह्माके अन्वारब्धकर्तृक है ॥

शुक्लयजु० अध्याय २१ मंत्र ३ ।

ॐ त्वन्नोऽअग्नेवरुणस्यविद्वान्देवस्यहेडो अवयासिसीष्ठाः ॥ यजिष्ठोवह्नितमुःशोशुचानो विश्वाद्वेषांꣳसिप्रमुमुग्ध्यस्स्मत्स्वाहा ॥ इदमग्नीवरुणाभ्याम० ॥ १ ॥

शुक्लयजुर्वेद अध्याय २१ मंत्र ४ ।

ॐ सत्वन्नोऽग्नेऽवमोभवोतीनेदिष्ठोऽअस्याऽउषसोव्युष्टौ ॥ अवयक्ष्वनोवरुणꣳरराणो वीहिमृडीकꣳसुहवोनऽएधिस्वाहा । इदमग्नये० ॥ २ ॥

शुक्लयजु० अ० मंत्र ।

ॐ अयाश्चाग्नेस्यनभिशस्तिपाश्च सत्वमित्वमयाऽअसि ॥ अयानोयज्ञंवहास्ययानोधेहिभेषजꣳस्वाहा इदमग्नये० ॥३॥

शुक्लयजु अध्याय मंत्र ।

ॐ येतेशतम्वरुणयेसहस्रंयज्ञियाः पाशा-

वितताममहान्तः । तेभिर्न्नोऽअद्यसवितोत्त-
विष्णुर्विश्वेमुञ्चन्तु मरुतःस्वर्काःस्वाहा॥
इदं वरुणायसवित्रेविष्णवेविश्वेभ्योदेवे-
भ्यो मरुद्भयः स्वर्केभ्यः० ॥ ४ ॥

शुक्लयजु० अध्याय २१ मंत्र १२ ।

ॐ उदुत्तमम्वरुणपाशमस्म्मदवाधमंवि-
मध्यमश्रथाय । अथावयमादित्यव्रते-
तवानागसोऽअदितये स्यामस्वाहा । इदं
वरुणाय० ॥ ५ ॥ एताः सर्वप्रायश्चित्तसं-
ज्ञकाः ॥

भा० टी०–त्वन्नो और सत्वन्नो इन मंत्रोंका वामदेव ऋषि त्रिष्टुप् छन्द अग्नि और वरुण देवता सर्वप्रायश्चित्तमें विनियुक्त है । और (येतेशतं) इस मंत्रका शुनःशेप ऋषि त्रिष्टुप् छंद वरुण देवता वरुणसंबंधि शापके मोचनमें विनियुक्त हैं । (मंत्रार्थ–त्वन्नोऽअग्ने इति) हे अग्निदेव ! तुम इस कर्ममें वैगुण होनेसे वरुणदेवके क्रोधको दूर करो कैसे तुम सर्व कर्ममें साक्षी चतुर हो । और सबसे उत्तम हो और सर्वदेवताओंको यज्ञका भाग देनेवाले हो प्रकाशमान हो इसलिये

मंदबुद्धिवाले हमको जानकर हमारेसे की हुई अवज्ञा (अनादर) को क्षमा कर सर्व प्रकारसे कल्याण देवो ॥ १ ॥

भा० टी०—(मंत्रार्थ—सत्वन्न इति) हे अग्ने ! तुम सबकी पालना करनेवाले हैं इसलिये आज दिनके प्रातःकालसे लेकर मेरी रक्षा करो । नहीं केवल रक्षाही किंतु हमारे कर बुलाये तुम सुखपूर्वक आकर सुख देनेवाला चरु यज्ञके स्वामी वरुणदेवताको देकर पूजन करो जिससे वरुणदेवभी प्रसन्न हो हमारेको सुख दे ॥ २ ॥

भा० टी०—(मंत्रार्थ—अयाश्चाग्न इति) हे अग्ने ! तुम सर्वांतर्यामी और प्रायश्चितद्वारा सर्व प्राणियोंको शुद्ध करनेवाले और शुभके दाता हमारे किये हुए यज्ञको कृपालु होनेसे इंद्रादि देवताओंको देनेवाले इसालिये हमकोभी भेषज अर्थात् सुखके देनेवाला त्रिविधं दुःखविनाशन अपूर्व सुख देवो॥३॥

भा० टी०—(मंत्रार्थ—येते शतमिति) हे वरुणदेव ! यज्ञके विघ्नसे उत्पन्न हुए बडे २ भारी महान् कठिन जो तुमारे शत संख्यक और सहस्रसंख्यक पाश हैं । वह पाश पापरूप हमारे सविता सूर्य विष्णुरूप इंद्र और सर्वदेवता और वायुदेव ४९ सुंदर हृदयवाले आदित्य १२ हमारे पापोंको नष्ट करें ॥४ ॥

---

१ आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविकभेदसे दुःख तीन प्रकारके हैं इनके भेद प्रत्युपभेद मत्कृतरामगीताविषमपदी टीकामें सविस्तृत लिखे हैं ॥

भा० टी०–(मंत्रार्थ–उदुत्तममिति) उत्तम मध्यम अधम यह तीन वरुणजीके पाश हैं । हे वरुणदेव ! जो तुम्हारा उत्तम पाश है उससे हमारी रक्षा करो पाशको शिथिल करो हे वरुणदेव ! हम ब्रह्मचर्यसे तुमारेसे निरपराध होकर दीनतासे रहित होते हैं "दीनतायांदितिः प्रोक्ता दितिः स्याद्दैत्य मातरि" इस वचनसे दितिनाम दीनताकाभी है ॥ ९ ॥ यह आहुति सर्व प्रायश्चित्तमें है ॥

ॐ प्रजापतये स्वाहा इदं प्रजापतये० । इति मनसा ॥ इदं प्राजापत्यं ततः संस्रवप्राशनम् । आचम्य । ॐ अस्यां रात्रौ कृतेतच्चतुर्थीहोमकर्मणि कृताऽकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्मप्रतिष्ठार्थमिदं पूर्णपात्रं प्रजापतिदैवतं अमुकगोत्रायामुकशर्मणे ब्राह्मणाय दक्षिणां तुभ्यमहं संप्रददे । इति दक्षिणां दद्यात् ॥ स्वस्तीति प्रतिवचनम् । ततो ब्रह्मग्रंथिविमोकः । ततः सुमित्रियानऽआपऽओषधयः सन्तु । इति पवित्राभ्यां शिरः संमृज्य । ॐ दुर्मित्रियास्तस्मैसन्तुयोऽस्मान्द्वेष्टियञ्चवयं द्विष्मः इत्यैशान्यां दिशि प्रणीतां न्युब्जीकुर्यात् ।

ततः स्तरणक्रमेण बर्हिरुत्थाप्य घृताक्तं हस्तेनैव जुहुयात् ॥

शुक्ल यजु० अध्याय ८ मंत्र २१ ।

ॐ देवागातुविदोगातुंवित्वागातुमित । मनसस्पतऽइमन्देवयज्ञꣳस्वाहावातेधाः स्वाहा ॥

भा० टी०-प्रजापतये यह मनसे कह प्रजापतिसंबंधि हवन कर फिर संश्रव प्राशन करे इस रात्रिमें कृत चतुर्थी कर्मकी सांगतासिद्धिके लिये अमुकगोत्र ब्राह्मणको दक्षिणा देता हूं ब्राह्मण स्वस्ति कहे । फिर ब्रह्माकी ग्रंथि खोल देवे । सुमित्रियानऽ-आप ओषधयः सन्तु इस मंत्रसे शिरको जलसे मार्जन करे फिर दुर्मित्रिया इस मंत्रसे प्रणीताको ईशान कोणमें न्युब्ज करे फिर आस्तरण क्रमसेही कुशा ले घृत लगाय देवागातु इस मंत्रसे हाथसेही हवन करे । (मंत्रार्थ-देवगातुविदेति) हे देवता-लोक ! तुम यज्ञके जाननेवाले हैं इसलिये विष्णुरूप यज्ञको जानकर सुखपूर्वक जाओ हे अन्तर्यामी ब्रह्मरूप ! यह यज्ञको फल तुमारे अर्पण किया जाता है । तुम वायुको अर्पण करो ॥

आम्रपल्लवेन जलमादाय मूर्ध्नि वरो वधूम-भिषिञ्चति ।ॐ यातेपतिघ्नीपशुघ्नीगृहघ्नीय-शोघ्नीनिंदितातनूजारघ्नीतंतएनांकरोमि सा

जीर्यत्वं मयासहश्रीअमुकदेव्या । इति मंत्रेण । ततो वधूं स्थालीपाकं प्राशयति वरः । ॐ प्राणैस्तेप्राणान्संदधामि ॐ अस्थिभिरस्थीनिसंदधामि ॥ ॐ मांसैस्तेमांसानि संदधामि ॥ ॐ त्वचा तेत्वचंसंदधामि॥ इति मंत्रचतुष्टयेन प्रतिमंत्रान्ते अन्नं प्राशयेत् ततो वधूहृदयं स्पृष्ट्वा वरः पठेत् ॥ ॐ यत्ते सुशीमेहृदयंदिविचन्द्रमसिश्रितं । वेदाहं तन्मांतद्विद्यात्पश्येमशरदःशतंजीवेमशरदः शतंशृणुयामशरदःशतमिति ॥

भा० टी०—आम्रके पत्रसे जल ले वर वधूको यातेपतिघ्नी इस मंत्रसे मार्जन करे । (मंत्रार्थ—याते) हे स्त्री ! जो तुमारे पतिनाशक पुत्रनाशक पशुनाशक गृहनाशक यशनाशक निंदित शरीर है सो जीर्णको (नाशको) प्राप्त होय मुझकामी जो स्त्री पुत्र पशु गृह यशनाशक शरीर है उसके साथ और मैं तुमको जारके नाश करनेवाली अर्थात् पतिव्रता करता हूं । अनंतर वधूको वर प्राणैस्ते इन चतुर्मंत्रोंसे स्थालीपाक प्राशन करवावे (मंत्रार्थ—प्राणैस्ते) हे वधू ! तुम्हारे प्राणोंके साथ मैं अपने प्राण और अस्थियोंसे अपनी अस्थि मांससे मांस त्वचासे त्वचा स्थित करता हूं अर्थात् तेरे और मेरेमें कुछ भेदबुद्धि

नहीं है अनन्तर वर वधूके हृदयको स्पर्श कर यत्ते सुसीमे यह मंत्र पढे । (मन्त्रार्थ--यत्ते सुसीमे) हे वधू ! जो तुम्हारे हृदयमें चन्द्रमासी शोभा लक्ष्मी मैं जानता हूं वह मुझको प्राप्त हो उसको मैं शतवर्ष पर्यंत देखा और शतवर्ष जीवते रहा और शतवर्षही श्रवण करा । भावार्थ यह है कि तुमारे साथ रोगरहित शतवर्ष पर्यंत सुखपूर्वक प्राणको धारण करा ॥

अथ कङ्कणमोक्षणादीनि सुतग्रंथिविमोक्षा-दीनि आचारात्प्राप्तानि कर्तव्यानि । मंत्रः ।
कंकणं मोचयाम्यद्य रक्षांसि न कदाचन ।
मयि रक्षां स्थिरां दत्त्वा स्वस्थानं गच्छ कं-कण ॥ तत उत्थाय वधूदक्षिणहस्तस्पृष्ट-स्रुवेण घृतफलपुष्पपूर्णेन पूर्णाहुतिं जुहुयात् ॥

शुक्ल यजु० अध्याय ७ मंत्र २४ ।

ॐ मूर्द्धानंदिवोऽअरतिम्पृथिव्यावैश्वान-रमृतऽआजातमग्निम् । कविꣳसम्राज-मतिथिं जनानामासन्नापात्रं जनयन्तदे-वाःस्वाहा ॥ इदमग्नये० ॥

ततःस्रुवेणभस्मानीय दक्षिणानामिकया त्र्यायुषं कुर्य्यात् ।

यजु० अध्याय ३ मंत्र ३२ ।

ॐ त्र्यायुषंजमदग्नेः । इति ललाटे ॥ ॐ कश्यपस्यत्र्यायुषम् । इतिग्रीवायां ॥ ॐ यद्देवेषुत्र्यायुषम् । इति दक्षिणबाहुमूले ॥ ॐ तन्नोऽअस्तुत्र्यायुषम् । इति हृदये ॥

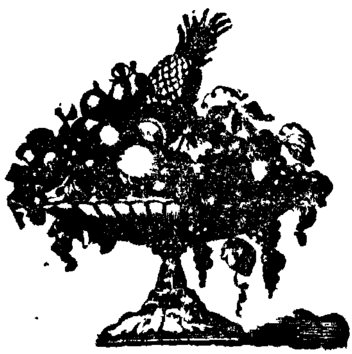
एवं वध्वापि त्र्यायुषं कुर्य्यात् । तत्र तन्नो इत्यस्य स्थाने तत्तइति विशेषः । तत आचार्याय दक्षिणां दद्यात् । भूयसीं दद्यात् ॥ इति श्रीचतुर्थीकर्म समाप्तम् ॥

भा०टी०—कंकण मोक्षण और युतग्रंथि (खट्टाचितावां) मोक्षण आचारसे (मन्त्रार्थ) मैं आज कंकणको त्यागता हूं राक्षस दूर होय हे कंकण ! मेरेमें दृढ रक्षा दे अपने स्थानको यथासुख जाओ फिर उठकर वधूका दक्षिण हाथ स्रुवके साथ लगाय घृतफलपुष्पयुक्त पूर्णाहुति वर हवन करे मूर्द्धानं इस मंत्रसे । (मन्त्रार्थ—मूर्द्धानमिति) स्वर्गादि सप्तलोकसे ऊपर पृथिव्यादि पांच भूतोंसे विरक्त (रहित) ब्रह्माण्डको प्रकाश करनेवाला ईश्वर सत्यरूप जन्म आदि षड्भावरहित निर्विकार प्रकाशमान सर्वज्ञ परमानंद तीन कालसे रहित सृष्टि उत्पत्ति लय नाशसे प्राणियोंका पात्रभूत आधार और जो देवताओं-

को उत्पन्न स्वव्यापारमें लगाता है तिस परमेश्वरके लिये यह आहुति सुहुत हो । बैठकर स्रुवसे भस्म ले दक्षिण अनामिकासे ललाट १ ग्रीवा २ दक्षिण बाहुमूल ३ हृदयमें ४ यथाक्रम त्र्यायुषं इस मंत्रसे लगावे इसी प्रकार वधूकेभी लगावे वधूके स्थानमें तत्ते यह वधूको कहना । इतना विशेष है अनंतर आचार्यको दक्षिणा भूयसी देवे ॥

इति श्रीकर्पूरस्थलनिवासिगौतमगोत्र (शौरि) अन्वयालंकृतदैवज्ञ—ढुनिचंद्रात्मजपण्डितविष्णुदत्तवैदिककृतचतुर्थीकर्मटीका अद्रिवेदांकभूमिते १९४७ मधुमासेकृष्णपञ्चम्यां गुरुदिने समाप्तिमगात् । सा च शुभावही स्यात्कुलदेव्याः प्रसादात् देवगुरुद्विजाशीर्भिः ।

समाप्तं चेदं सप्तमं प्रकरणम् ॥ ७ ॥



अथ विवाहमंत्राणां सूचीपत्रम्।

अथ चतुर्थीकर्ममंत्राः ।

इति विवाहमंत्राणां सूचीपत्रम् ।

अथ अष्टमप्रकरणम् ।

स्त्रीणामाचारे ।

ॐ स्वस्ति श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगुरवे नमः ॥

लोकानंत्यं दिवः प्राप्तिः पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः ।
यस्मात्तस्मात् स्त्रियः सेव्याः कर्तव्याश्च सुरक्षिताः ॥

भा० टी०–याज्ञवल्क्यस्मृति और मन्वादि धर्मशास्त्र और श्रुतियोंमें स्त्रियोंका स्वीकार रक्षा यह सिद्ध है इसलिये पुत्र-पौत्रप्रपौत्रादिद्वारा स्वर्गादिप्राप्तिके लिये स्त्रियोंका पाणिग्रहण करना चाहिये और स्त्रियोंको उपदेश करना आचारका तथा भर्ताका पूजन अवश्य कर्तव्य है यहभी याज्ञवल्क्यस्मृति

प्रथम अध्यायमेंभी लिखा है "पतिप्रियहिते युक्ता स्वाचारा विजितेन्द्रिया । सेह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमां गतिम् ॥" अर्थात् जो स्त्री पतिके प्रियमें तत्पर और शुद्ध आचारयुक्त और इंद्रियजित् ऐसी स्त्री इस लोकमें कीर्ति यश और परलोकमें उत्तम गतिको प्राप्त होती है । औरभी लिखा है "स्त्रीभिर्भर्तृवचः कार्यमेष धर्मः परः स्त्रियाः ।" अर्थात् भर्ताका वचन मानना यही स्त्रीका परम धर्म है । अन्यच्च "गुरुरग्निर्द्विजातानां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः । पतिरेको गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः ॥" अर्थात् ब्राह्मणोंका अग्नि गुरु, वर्णोंका ब्राह्मण गुरु है, स्त्रीका एक पतिही गुरु होता है, अभ्यागत सबका गुरु है, इत्यादि अनेक प्रमाणोंसे स्त्रियोंका पतिही गुरु है इसलिये पतिकी सेवा और आज्ञा करनी आचार शुद्ध रखना यही स्त्रीका मुख्य धर्म है इसालिये कुछ यत्किंचित् स्त्रियोंका आचार धर्मशास्त्रोक्त लिखते हैं जो सौभाग्यवती स्त्रीमात्र है उनको प्रातःकाल सूर्योदयके प्रथम चार घडीके तडके (प्रातःकाल) उठकर नेत्रोंको प्रथम जल स्पर्श करना, अनंतर अपने पतिके चरणोंपर शिरको धर प्रणाम कर प्रथम पतिके मुखका दर्शन करना पश्चात् शुद्ध (साफ) दर्पणमें अपना मुख देखना पीछेसे भूमिको प्रोक्षण (छिडकन) सम्मार्जन (बुहारी) लेपनादिसे घरको शुद्ध करे और पृथिवीकी पूजा कर फिर शूद्रकमलाकरोक्त मंगलपाठ पढकर पतिकी सेवा पाद प्रक्षालन आदि कर फिर वेणी (गूत) को कंकपत्र (कंघी) से शुद्ध कर और पुष्पादिक धारण कर भाल (मस्तक) में तिलक लगाय हस्त कर्ण बाहुके भूषणादि धारण कर फिर जिस

प्रकार केशादिक जलसे क्लिन्न (गीले) न होवें तद्वत् स्नान करे इसमें प्रमाणभी जैसे सौभाग्यकल्पद्रुममें लिखा है ॥

यथा–बुद्ध्वा ब्राह्मे मुहूर्ते निजपतिचरणौ संप्रणम्यास्यमस्य प्रेक्ष्य प्रेम्णाथ नैजं शुभमुकुरतले भूमिमभ्यर्च्य पत्नी । प्रातःस्मृत्यादि कृत्वा पतिपरिचरणं संविधायैव वेणीं संरच्याधाय भाले तिलकमथ गलाधो निमज्जेत्सभूषा ॥

भा० टी०–और स्कांदमेंभी लिखा है "प्रसुप्तं च सुखासीनं रममाणं यदृच्छया । आतुरेष्वपि कालेषु पतिं नोत्थापयेत्क्वचित् ॥" अर्थात् पति शयनअवस्थामें हो वा सुखपूर्वक आराममें होय वा स्वेच्छापूर्वक आनंद लेता हो अर्थात् अपनी तकलीफमेंभी होय तबभी पतिको न उठावे और पतिको सर्व प्रकारसे प्रसन्न करे । और हरिद्रा (हलदी) का मर्दन केशरका स्वीकार सिंदूर कज्जल कूर्पासक (बहुदेवाकंगण) ताम्बूल यह स्त्रियोंको मंगलदायक भूषण है । और केशोंका संस्कार कर्णके भूषण तथा हस्तोंके भूषण भर्ताके आयुकी वृद्धिकी इच्छावाली स्त्री इनको मत त्यागे ॥

प्रमाणं–हरिद्रा कुंकुमं चैव कस्तूरी कज्जलं तथा । कूर्पासकं च तांबूलं मांगल्याभरणं

स्त्रियाः ॥ केशसंस्कारकबरिकरकर्णविभूषणम् । भर्तुरायुष्यमिच्छंती दूरयेन्न काचित्सती ॥ नियमोदकवाहिं च पत्रपुष्पादिकं च यत् । सेवेत भर्तुरुच्छिष्टमिष्टमन्नं फलादिकम् ॥ तीर्थस्नानार्थिनी नारी पतिपादोदकं पिबेत् । शंकरादपि विष्णोर्वा पतिरेकोऽधिकः स्त्रियाः ॥

भा० टी०—और नियमका जल और पत्र पुष्प आदि जो पति आज्ञा करे वह आगे रख दे और भर्ताका उच्छिष्ट सेवन करे । और तीर्थस्नानकी इच्छावाली स्त्री पतिका पादोदक पान करे और शंकर विष्णुसे अधिक स्त्रीको पति होता है ॥

श्रीमद्भागवते—स्त्रीणां च पतिदेवानां तच्छुश्रूषानुकूलता । तद्बंधुष्वनुवृत्तिश्च नित्यं तद्व्रतधारणम् ॥ संमार्जनोपलेपाभ्यां सेकमण्डलवर्तते । स्वयं च मण्डिता नित्यं परिमृष्टपरिच्छदा ॥ कामैरुच्चावचैः साध्वी प्रश्रयेण दमेन च । वाक्यैः सत्यैः प्रियैः प्रेम्णा काले काले भजेत्पतिम् ॥ संतुष्टालोलुपा दक्षा धर्मज्ञा प्रियसत्यवाक् । अप्र-

मत्ता शुचिः स्निग्धा पातिं त्वपातितं भजेत् ॥
या पातिं हरिभावेन भजेच्छ्रीरिव तत्परा ।
हर्यात्मना हरेर्लोके पत्या श्रीरिव मोदते ॥
दुःशीलो दुर्भगो वृद्धो जडो रोग्यधनोऽपि
वा । पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकेप्सुभि-
रपातकी ॥ अस्वर्ग्यमयशस्यं च फल्गु-
कृच्छ्रभयावहम् । जुगुप्सितं च सर्वत्र औप-
पत्यं कुलस्त्रियाः ॥

भा० टी०–स्त्रीलोगोंका पतिही परम देव है इसकाही पूजन करना और आज्ञामें रहना और पतिके बंधु माता पिता इनकी सेवा करनी पतिव्रत धारण करना और पृथिवीकी शुद्धि संस्कार पूजन और अपने शरीरमें भूषण पुष्प धारण करने श्रेष्ठ कार्यों और वचनोंसे पतिव्रता स्त्री पतिकी सेवा करे और काल अर्थात् ऋतुकालमेंही पतिसे संभोग करे अन्यथा अति-विषयासक्त न होवे और सदैव संतुष्ट और सावधान पवित्र स्नेह-वती रहे । जो स्त्री हरिभावसे लक्ष्मीवत् पूजन करती है विष्णु-लोकमें वह स्त्री पतिके साथ विष्णुजीवत् आनंद भोगती है । यदि पति दुष्ट निर्धन वृद्ध मूर्ख जड रोगीभी होय वह लोकप-रलोकमें सुख इच्छावती स्त्री न तिरस्कार करे । और स्वर्गके न देनेवाला यशके नाश करनेवाला संपूर्ण शास्त्र वेदोंमें निंदित

उपपति अर्थात् जार स्त्रीको होता है इसलिये स्त्रियोंको परपु-रुषसे एकांत भाषण हास्य विहार अति निषिद्ध है । और इसमें याज्ञवल्क्यजीभी लिखते हैं ॥

पितृमातृश्वश्रुभ्रातृजामिसम्बंधमातुलैः । हीना न स्याद्विना भर्त्रा गर्हणीयान्यथा भवेत् ॥ पतिप्रियहिते युक्ता स्वाचारा विजि-तेंद्रिया । सेह कीर्तिमवाप्नोति मोदते चोमया सह ॥ रक्षेत्कन्यां पिता विन्नां पतिपुत्रास्तु वार्द्धके । अभावे ज्ञातयस्तेषां न स्वातंत्र्यं क्वचित्स्त्रियाः ॥

भा० टी०—पिता माता सास भ्राता बंधुओंकी स्त्रीसंबंधी मातुल इनसे सहित विना भर्त्ताके स्त्री न होवे यदि होय तो निंदित होती है विना भर्त्ताके । और जो स्त्री पतिके प्रियमें हित आचार शुद्ध विजितइंद्रिय सो इस लोकमें सुखको प्राप्त होवी है मरने बाद पार्वतीके लोकमें आनंद पार्वतीसे करती है और कन्याको पिता रक्षा करे विवाहीकी पति रक्षा करे वृद्धा-की पुत्र रक्षा करे इनके अभावमें ज्ञाति रक्षा करे अर्थात् स्व-तंत्र स्त्री नष्ट न हो । और वसिष्ठसंहितामें लिखा है ॥

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ।
पुत्राश्च स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति ॥

असत्यं साहसं माया मात्सर्यं चलचित्तता ।
निर्गुणत्वमशौचत्वं स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः ॥

भा० टी०–झूठ बोलना साहस माया क्रोध चंचलता निर्गुण अपवित्र रहना यह स्त्रियोंके स्वाभाविक दोष हैं ॥

अन्यच्च–पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम् ।
स्वप्नश्चान्यगृहे वासो नारीणां दूषणानि षट् ॥

भा० टी०–मद्यका पीना १ बुरी सोभत कुसंगत २ पतिसे वियोग कलह ३ भ्रमण देश स्थानोंमें ४ औरके गृहमें शयन ५ अन्य गृहमें वास ६ षट् दोषोंसे स्त्री दुष्ट होजाती है कारण इसमें स्वतन्त्रता है । इसलिये स्त्रियोंको अपने वश्यमें रखना उचित है । मांसका भक्षण स्त्रीको बडे रोगादि करनेवाला होनेसे वर्जनीय है जैसे चिकित्साशास्त्र भावप्रकाशमें लिखा है " आमिषस्याशनं यत्नात्प्रमदा परिवर्जयेत् । " अर्थ–मांसका भक्षण स्त्री अवश्य छोड दे । व्यासजीभी लिखते हैं ॥

द्वारोपवेशनं नित्यं गवाक्षेण निरीक्षणम् ।
असत्प्रलापो हास्यं च दूषणं कुलयोषिताम् ॥

भा०टी०–और द्वारदेशमें बैठना अर्थात् प्रतिदिन अपने द्वारपर बैठ और सर्व बातमें हास्य (हँसना) और गवाक्ष (झरोखे) से देखना बहुत प्रलाप (वृथा वाद करना) यह कुलस्त्रियोंके दोष हैं ॥

अन्यच्च–स्त्री शूद्रोऽनुपनीतश्च वेदमंत्रान्विवर्जयेत् ॥

भा०टी०-स्त्री शूद्र यह वेदमंत्रोंका त्याग दे इससे पुराण-श्रवणाध्ययन तुलसीपूजन हरितालिकाव्रत गौरीपूजन यह शूद्रकमलाकरसे देख अवश्य कर्तव्य है और भगवान् पराशरजी लिखते हैं ॥

ऋतुस्नातां तु यो भार्य्यां सन्निधौ नोपगच्छति ।
घोरायां भ्रूणहत्यायां युज्यते नात्र संशयः ॥
ऋतुस्नाता तु या नारी भर्तारं नोपसर्पति
सा मृता नरकं याति विधवा च पुनः पुनः ॥

भा० टी०-जो स्त्री ऋतुस्नानके अनन्तर अपने भर्तासे संभोग नहीं करती वह मरनेबाद नरकको प्राप्त होती है और वारंवार विधवा होती है इस प्रकार ऋतुकालमें स्वस्थ हो जो पुरुष स्त्रीको नहीं प्राप्त होता वहभी घोर जो भ्रूणहत्या अथवा गर्भहत्या उसको प्राप्त होता है यदि रोगयुक्त हो तो न जानेसे दोष नहीं होता अन्यथा प्रमादसे जो न प्राप्त होवे वह पापका अधिकारी अवश्य है इसलिये ऋतुकालमें स्त्रीको भर्तासे संभोग आवश्यक है अन्यथा स्वेच्छासे है ॥

पराशरः-दरिद्रं व्याधितं धूर्तं भर्तारं याव-
मन्यते । सा शुनी जायते मृत्वा सूकरी च
पुनः पुनः ॥

भा० टी०-जो स्त्री निर्धन वा रोगयुक्त वा मूर्ख भर्ताका प्रमादसे तिरस्कार करती है वह स्त्री मरकर शुनी (कुत्ती)

शूकरीके वारंवार जन्मको प्राप्त होती है इसलिये भर्ताका अपमान स्त्रीमात्रको कदाचित् न करना चाहिये ॥

स्मृतिपाराशरः—पत्यौ जिवति या नारी उपोष्य व्रतमाचरेत् । आयुष्यं हरते पत्युः सा नारी नरकं व्रजेत् ॥

भा० टी०—जो सौभाग्यवती अर्थात् पतिवती स्त्री उपवास व्रत आचरण करती है वह पतिकी आयुको नष्ट कर मरकर नरकको प्राप्त होती है ॥

मनुः—अपृष्टा चैव भर्तारं या नारी कुरुते व्रतम् । सर्वं तद्राक्षसान् गच्छेदित्येवं मनुरब्रवीत् ॥

भा० टी०—जो स्त्री भर्ताकी आज्ञा विना व्रत नियम दानादि करती है उसका फल राक्षसोंको मिलता है ऐसे मनुजी कहते हैं । इस स्मृतिमें मनुजीका आशय है ॥

पाराशरी—नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतितेऽपतौ । पंचस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ॥

भा० टी०—नष्ट मृत संन्यस्त क्लीव पतित इन पंच आपत्में स्त्रीको अन्य पति विधान किया है । शंका है कि एक पतिके मरनेपर द्वितीय पति उसके मरनेपर तृतीय चतुर्थ

आदि असंख्य स्त्रीको पति कर्तव्य हैं क्योंकि पराशरजी स्वयं लिखते हैं ' नष्टे मृते ' इत्यादि । उत्तर यह है कि पतिशब्दका क्या अर्थ है यदि तुम कहो कि पति अर्थात् पाणिग्रहण जिससे करा हो तौ हम यह कहते हैं कि ' पतौ ' यह रूप सिद्ध कैसे होता है यदि कहे कि पतिशब्दकी विभक्तिमें ' अच्च घेः ' इस सूत्रसे घिसंज्ञक ङिको ' औत घिको अत् ' होकर पतौ सिद्ध भया तो हम कहते हैं कि ' पतिः समास एव घीसंज्ञा ' अर्थात् पतिशब्दकी समासमें घीसंज्ञा होती है तौ यहां समास नहीं एकही शब्द है । और केवल पतिशब्दका सप्तमी विभक्तिमें ' पत्यौ ' यह शब्द बनता है इस लिये यहां असिद्ध असंस्कृत पतिशब्दके प्रयोगसे भगवान् पराशरका यही आशय है कि असंस्कृत अर्थात जिसका पाणिग्रहण न हो केवल वाङ्मात्रसे पति हो अर्थात् वाग्दान मात्र किया हो उस पतिको नष्ट मृत संन्यस्त क्लीब होनेपर और पति स्त्रीको कर्तव्य है और यह बात आचारसे सनातन सिद्ध है । यदि आप यह शंका करें कि भगवान् पराशरजीने यह अशुद्ध (पतौ) प्रयोग लिखा क्या वह हमारे तुमारे सदृश थे वह तो आचार्य धर्मशास्त्रके मुख्य हैं तौ इनका उत्तर देते हैं कि यह जो आपको पूर्वोक्त कहा है सो उनका आशय इस (पतौ) शब्दसेही मालूम होता है । महाशय ! यह भगवान् पराशरजी तो ठीक २ लिख गये परन्तु आपकी समझमें भी गडबड है । पराशरजीने अनञ् तत्पुरुष समासान्त पतिशब्दकी संज्ञा कर (अपतौ) यह शब्द सिद्ध संस्कृत लिखा

है यथा 'न पतिः अपतिः तस्मिन् अपतौ पतिभिन्ने पतिसदृशे ईषत्पतावित्यर्थः तस्य च नष्टे मृते सति स्त्रियामन्यः पतिर्विधेयः' इति । ऐसे पराशरजी अपने आशयको लिखते हैं। यदि तुम कहो कि वहां तो 'क्लीबे च पतिते पतौ' ऐसे लिखा है अपतितौ लिखा नहीं । उत्तर—महात्मन् ! यहां पररूप 'एङः पदान्तादति' इस सूत्रसे 'पतिते अपतौ' अकारका पररूप भया है और आगे द्वितीयश्लोकमें भी इस स्मृतिश्लोकको प्रगट करते हैं ॥

मृते भर्तरि या नारी ब्रह्मचर्यव्रते स्थिता ।
सा मृता लभते स्वर्गं यथा ते ब्रह्मचारिणः ॥

भा०टी०—जो स्त्री पतिकी मृत्युपर ब्रह्मचर्य व्रतको धारण करती है वह मृत्यु होनेपर ब्रह्मचारीवत् स्वर्गको प्राप्त होती है इस लिये पतिशब्दसे असंस्कृत अर्थात् वाग्दान मात्र कहा है तो उक्त दोष न भया, नहीं तो पूर्वोक्त व्यर्थ होता है और इस वाक्यकी दृढताके लिये औरभी प्रमाण देते हैं ॥

तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च यानि लोमानि मानवे । तावत्कालं वसेत् स्वर्गे भर्तारं यानुगच्छति ॥ व्यालग्राही यथा व्यालं बलादुद्धरते बिलात् । तद्वद्भर्तारमादाय तेनैव सह मोदते ॥ पुरुषेणापि चोक्ता या दृष्टा वा

क्रुद्धचक्षुषा । सुप्रसन्नमुखी भर्तुः सा नारी धर्मभाजनम् ॥ चितौ परिष्वज्य विचेतनं पतिं प्रिया हि या मुञ्चति देहमात्मनः । कृत्वापि पापं शतलक्षमप्यसौ पतिं गृहीत्वा सुरलोकमाप्नुयात् ॥

भा०टी०—इत्यादि अनेक प्रमाण सतीविधानके व्यर्थ होते हैं और ' दरिद्रं व्याधितं धूर्तं' "पत्यौ जीवति" इत्यादि "इमा नारीरविधवा" ऋ० मंडल १० सू० ८५ इत्यादि अनेक वेदमन्त्रोंसे विधवाविवाह और उपपतिस्वीकार (जारसे मैत्री) निषिद्ध है । यह मैंने विवाहका अंग समझकर साथ प्रमाणों-के स्पष्ट भाषामें सर्वोपकारके लिये स्त्रियोंका आचार दिङ्मात्र लिखा है जिन महाशयोंको विशेष आकांक्षा हो वह मन्वादि धर्मशास्त्र ऋग्वेदादिमें अच्छी तरह देख लेवे । विस्तारभयसे बहुत नहीं लिखा । इसका प्रचार अवश्य धर्माभिलाषी पुरुषोंको उचित है ॥

इति श्रीकर्पूरस्थलनिवासिगौतमगोत्र (शोरि) अन्वयालंकृतदैवज्ञ इनिचन्द्रात्मजपण्डितविष्णुदत्तवैदिककृतस्त्रीणामाचारः समाप्तः ।

इत्यष्टमं प्रकरणं समाप्तम् ॥ ८ ॥

अथ नवमं प्रकरणम्.

अथ रजस्वलास्वरूपम् ।

भावप्रकाशे–द्वादशाद्वत्सरादूर्ध्वमापंचाशत् समाः स्त्रियाः । मासि मासि भगद्वारा प्रकृत्यैवार्तवं स्रवेत् ॥ आर्तवस्रावादिवसादृतुः षोडशरात्रयः । गर्भग्रहणयोग्यस्तु स एव समयः स्मृतः ॥ याज्ञवल्क्येनाप्युक्तम् षोडशर्तुनिशाः स्त्रीणां तस्मिन् युग्मासु संविशेत् । ब्रह्मचार्येव पर्वण्याद्याश्चतस्रश्च वर्जयेत् ॥ एवं गच्छन्स्त्रियं क्षामां मघामूलं च वर्जयेत् । सुस्थ इन्दौ सकृत्पुत्रं लक्षण्यं जनयेत्पुमान् ॥ सर्वासामेव चतुर्वर्णस्त्रीणां सर्वत्रादिसम्मतः पूर्वोक्तः समयः ॥ ग्रंथांतरे तु विशेषः ॥ तद्यथा–स्नानादिवसादूर्ध्वं द्वादशपरिमितरात्रावधिर्ब्राह्मण्या दशरात्रावधिः क्षत्रियायाः । अष्टरात्रावधिर्वैश्यायाः षड्रात्रावधिः शूद्राया गर्भधारणे शक्तिरिति ॥ रजस्वलास्वरूपमुक्त्वा नियमानाह भावमिश्रप्रकाशे–आर्तवस्रावदिवसादहिंसा ब्रह्मचारिणी । शयीत

दर्भशय्यायां पश्येदपि पतिं न च ॥ करे शरावे पर्णे वा हविष्यं त्र्यहमाचरेत् । अश्रुपातं नखच्छेदमभ्यंगमनुलेपनम् ॥ नेत्रयोरञ्जनं स्नानं दिवास्वापं प्रधावनम् । अत्युच्चशब्दश्रवणं हसनं बहुभाषणम् ॥ आयासं भूमिखननं प्रवातं च विवर्जयेत् ॥ अमुमेवाशयं यथाह भगवान् धन्वन्तरिः सुश्रुते ऋतौ प्रथमदिवसात्प्रभृति ब्रह्मचारिणी दिवस्वप्नाश्रुपातस्नानानुलेपनाभ्यङ्गालङ्कारमाल्यनखच्छेदन प्रधावनहसनकथनातिशब्दश्रवणावलेखनायासान्परिहरेत् । दर्भसंस्तरशायिनीं करतलशरावपर्णान्यतमशरावभोजिनीं हविष्याशिनीं त्र्यहं च भर्ता संरक्षेदिति । एतान्नियमानुल्लंघ्य या वर्तते तां प्रति दोषमाह भावप्रकाशे भावमिश्रः॥ यथा—अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा लोभाद्वा दैवतश्च वा । सा चेत्कुर्यान्निषिद्धानि गर्भो दोषांस्तदाप्नुयात् ॥ एतस्या रोदनाद्गर्भो भवेद्विकृतलोचनः । नखच्छेदेन कुनखी कुष्ठी त्वभ्यंगतो भवेत् ॥ अनुलेपात्तथा स्नानाद्दुःशीलोऽभ्यञ्जनादृहक् । स्वापशीलो दिवास्वा-

पाङ्गुलः स्यात्प्रधावनात् ॥ अत्युच्चशब्दश्रवणा-
द्बधिरः खलु जायते । तालुदन्तोष्ठजिह्वासु श्यावो
हसनतो भवेत् ॥ प्रलापी भूरिकथनादुन्मत्तस्तु
परिश्रमात् । स्खलते भूमिखननादुन्मत्तो वातसेव-
नात् ॥अथ चतुर्थदिवसानन्तरं वह्नाति रक्ते गच्छतः
पुरुषस्य दोषमाह भगवान् सुश्रुतः ॥ किञ्च तत्र
प्रथमदिवसे ऋतुमत्यां मैथुनगमनमनायुष्यं पुंसां
भवति यश्च तत्राधीयते गर्भः सोऽप्रसवमानो विमु-
च्यते प्राणैः ॥ द्वितीयेऽप्येवं सूतिकागृहे वा तृती-
येऽप्येवमसम्पूर्णाङ्गोऽल्पायुश्च भवति ॥ यथा नद्यां
प्रतिस्रोतः प्लाविद्रव्यं प्रक्षिप्तं प्रतिनिवर्तते नोर्ध्वं
गच्छति तद्वदेव द्रष्टव्यम् । तस्मान्नियमवती त्रिरात्रं
परिहरेत् ॥ चतुर्थे तु सम्पूर्णाङ्गो दीर्घायुश्च भवति
अमुमेवाशयं भावप्रकाशे भावमिश्रोऽपि भर्तृकृत्ये
विशिनष्टि दृष्टान्तेन ॥ यथा—प्रवहत्सलिले क्षिप्तं
द्रव्यं गच्छत्यधो यथा । तथा वहाति रक्ते तु क्षिप्तं
वीर्य्यमधो व्रजेत् ॥ (अतः) आयुःक्षयभयाद्भर्ता
प्रथमे दिवसे स्त्रियम् । द्वितीयेऽपि दिने रत्यै त्यजे-

ऋतुमतीं तथा ॥ तत्र यश्चाहितो गर्भो जायमानो न जीवति । आहितो यस्तृतीयेऽह्नि स्वल्पायुर्विकलांगकः ॥ अतश्चतुर्थी षष्ठी स्यादष्टमी दशमी तथा । द्वादशी वापि या रात्रिस्तस्यास्तां विधिना भजेत् ॥ विधिना कोऽर्थो गर्भाधानोक्तविधानेन ॥ अत्रोत्तरं विद्यादायुरारोग्यमेव च । प्रजासौभाग्यमैश्वर्यं बलं चाभिगमात् फलम् ॥ धर्मशास्त्रे प्रथमरात्रिचतुष्टयगमने निषेधमाह पाराशरः ॥ प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी । तृतीये रजकी पुंसां यथा वर्ज्या तथांगना ॥ व्याधिमती च वर्ज्या ॥ तत्र स्त्रीणां व्याधयः प्रदरादयस्तद्युक्ता निषिद्धा । तत्रापि विशेषात् योनिरोगिणी अशुद्धगर्भदोषमाविष्करोति ॥ प्रकाशे भावमिश्रः । दम्पत्योः कुष्ठबाहुल्याद्दुष्टशोणितशुक्रयोः । यदपत्यं तयोर्जातं ज्ञेयं तदपि कुष्ठितमिति ॥ गर्भाधानेऽयोग्यं पुरुषं स्त्रियं चाह स एव ॥ अत्याशितोऽधृतिः क्षुद्वान् सव्यथांगः पिपासितः । बालो वृद्धोऽन्यवेगार्तस्त्यजेद्रोगी च मैथुनम् ॥ रजस्वला व्याधिमती विशे-

षाद्योनिरोगिणी । वयोधिका च निष्कामा मलिना गर्भिणी तथा ॥ एतासां संगमात्पुंसां वैगुण्यानि भवन्ति हि ॥ युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु । तत्र स्त्रीपुरुषयोः संभोगे यादृगुक्तस्तादृगुच्यते ॥ स्नातश्चंदनालिप्तांगः सुगन्धिः सुमनोऽर्चितः । भुक्तवृष्यः सुवसनः सुवेषः समलंकृतः ॥ ताम्बूलवदनस्तस्यामनुरक्तोऽधिकस्मरः । पुत्रार्थी पुरुषो नारीमुपेयाच्छयने शुभे ॥ भार्यापि ॥ पुरुषस्य गुणैर्युक्ता विहिता न्यूनभोजना । नारी ऋतुमती पुंसा संगच्छेतु सुतार्थिनी ॥ पूर्वं पश्येदृतुस्नाता यादृशं नरमंगना । तादृशं जनयेत्पुत्रं ततः पश्येत् पतिं प्रियम् ॥ प्रियमिति भर्तर्यासन्ने पुत्रादिकमपि पश्येत् ॥ अतः किं सिद्धम् ॥ पतिं स्नेहदृष्ट्या तथा पुत्रं पश्येत् ॥ असमीपे एषां भास्करं पश्येत् । एवं मंगलशब्दं चाश्रौषीत् । मधुरान्नं भक्षयेत् ॥ भूषणवस्त्रादिकं संधार्य रात्रौ विहिता न्यूनभोजना सुतार्थिनी स्त्री सुमुहूर्ते संगच्छेत् ॥ एतेन दिवसगमननिषिद्धं कर्मकाण्डचिकित्साशास्त्रे । यथा च

गृह्यसूत्रे भगवान् पारस्करः ॥ यदि दिवा मैथुनं व्रजेत्क्लीबा अल्पवीर्या अल्पायुषश्च प्रसूयन्ते तस्मादेतद्वर्जयेत्प्रजाकामो गृहीति । भावप्रकाशचिकित्साशास्त्रे भावमिश्रोऽप्याह ॥ आयुःक्षयभयाद्विद्वान्नाह्नि सेवेत् कामिनीम् । अवशो यदि सेवेत तदा ग्रीष्मवसन्तयोः ॥ ग्रीष्मवसन्तयोरित्यत्र भोगार्थं सेवेन्न तु सुतार्थं अन्यथा तस्मादेतद्वर्जयेत्प्रजाकाम इति व्यर्थं स्यात् आवश्यके भोगमपि ॥ गर्भाधानोक्तविधिना सङ्गच्छेदित्युक्ते गर्भाधानमुहूर्तमाह मुहूर्तचिंतामणौ रामः ॥ यथा हस्तानिलाश्विमृगमैत्रवसुध्रुवाख्यैः शक्रान्वितैः शुभतिथौ शुभवासरे च । स्नायादथार्तववती मृगपौष्णवायुहस्ताश्विधातृभिरलं लभते च गर्भम् ॥ यथा हस्तस्वातीअश्विनीमृगशिरअनुराधाउत्तराभाद्रपदारोहिणीज्येष्ठाशुभतिथिरिक्तवर्जितशुभवारसौरारार्कविनेषु रजस्वलायाः स्नानं विधेयं सुस्नाता वस्त्रभूषणसंयुता रात्रौ मृगशिररेवतीस्वातिहस्तआश्विनीरोहिणी एषु भेषु गमनात् स्त्री गर्भं लभते ॥

गमने निषेधमाह स एव ।

गण्डान्तं त्रिविधं त्यजेन्निधनजन्मर्क्षे च मूलान्तकं दास्रं पौष्णमथोपरागदिवसं पातं तथा वैधृतिम् । पित्रोः श्राद्धदिनं दिवा च परिघाद्यर्द्धं स्वपत्नीगमे भान्युत्पातहतानि मृत्युभवनं जन्मर्क्षतः पापभम् ॥ तद्यथा ॥ गण्डान्तं चतुर्घटिकात्मकं ज्येष्ठाशताभिषारेवती एषां तथा तिथिगण्डान्तद्विघटिकात्मकं तथा लग्नगडान्तं नवांशार्धघट्यात्मकं जन्मर्क्षात् अष्टमनक्षत्रं निधनसंज्ञकं मूलांत्यं अश्विनीरेवती तथोपरागः सूर्यचंद्रग्रहणं । 'उपरागो ग्रहो राहुग्रस्ते त्विन्दौ च पूष्णि च ।' व्यातिपातवैधृतियोगौ पितुः श्राद्धदिनं तथा दिने परिघार्द्धं एतानि नक्षत्रयोगदिवसानि स्वस्त्रियं संतानार्थं गच्छता पुरुषेण अवश्यं वर्जनीयानि ॥ ऋतुमती स्त्री मनसापि मैथुनचिंतनं न कुर्यात् । उक्तं च बृहन्नारदीये ॥ मैथुनं मानसं वापि वाचिकं देवतार्चनम् । वर्जयेच्च नमस्कारं देवतानां रजस्वलेति ॥ अथ रजस्वलाया ऋतुशुद्ध्यनंतरं पतिरेव द्रष्टव्यः असमीपे पत्युः पुत्रमुखं

द्रष्टव्यं वा सूर्यदर्शनं विधेयं नान्यं पुरुषं मनसा वाचा स्मरेत् चक्षुषा न पश्येत् उक्तमिदं बृहन्नारदीये ॥ स्नात्वान्यं पुरुषं नारी न पश्येच्च रजस्वला । ईक्षेत भास्करं देवं ब्रह्मकूर्चं ततः पिबेत् ॥ ब्रह्मकूर्चं पञ्चगव्यं स्नानानंतरं शुद्ध्यर्थं पातव्यम् ॥

इति श्रीकर्पूरस्थलनिवासिगोतमगोत्र (शौरि) अन्वयालंकृतदैवज्ञदुनिचंद्रात्मजश्रीमच्छ्रीपण्डितविष्णुदत्तवैदिककृतं रजस्वलाकृत्यं समाप्तम् ॥

समाप्तं चेदं नवमं प्रकरणम् ॥ ९ ॥

अथ प्रकीर्णाध्यायः प्रारभ्यते ।

अथ विवाहलग्नादिद्वादशस्थाने सूर्यादीनां फलमाह.

अथ सूर्यस्य फलं.

मृति १ र्विधनता २ धनं ३ सहजसंक्षयाः ४ पुत्रसूः ५ प्रियस्य परमोन्नति ६ र्विधवता ७ चिरंजीविता ८ ॥ शुभाकृति ९ रशीलता १० र्विविधलब्धि ११ रर्थक्षयः १२ तनुप्रभृति भास्करे सति फलं भवेद्योषिताम् ॥ १ ॥

अथ चंद्रस्य फलं ।

प्राणस्य च्युति १ रर्थसंप २ दुभयप्रीतिश्च ३ बंधून्नाति ४ वैपुत्र्यं च ५ सवैरता च ६ नियत सापत्न्य ७ मात्मव्यथा ८॥ स्त्रीसुतिः ९ परकर्मकृत् १० स्वमाधिका ११ लब्धिक्षयः १२ संपदां स्यादिंदावुदयात्सुखे तु कथितो बंधुक्षयः कैश्चन२॥

अथ भौमस्य फलं ।

पंचत्वं १ च दरिद्रता २ सधनता ३ सुभ्रातृवैरं ४ सुतानुत्पात्ति ५ दयितोन्नातिः ६ कुचरिता ७ सक्तिश्च रक्तस्त्रुतिः ८ ॥ स्याद्भर्तृप्रातिकूलता ९ऽभिषरुचि १० र्वित्ताप्ति ११ रर्थक्षयो १२ नारीणामुदयादिवर्तिनि महीपुत्रे विवाहोत्सवे ॥ ३ ॥

अथ बुधस्य फलं ।

सौम्ये भर्तृपरायणा १ स्वगृहिणी २ स्यात्स्वामिपक्षार्चिता ३ बंधुत्वं च ४ सुतान्विता च ५ विगत ६ प्रद्वेषिपक्षा तथा ॥ वंध्या चा ७ स्वभिरुज्झितास्तु कृतिनी ८ मायाविनी ९ च क्रमात् १० भूरिद्रव्यवती ११ बहुव्ययपरा १२ लग्नादिभावस्थिते ॥ ४ ॥

अथ गुरोः फलं ।

स्वाभीष्टा १ धनभागिनी २ प्रमुदिता ३ द्रव्या न्विता ४ स्वात्मजा ५ नष्टारि ६ र्दयितोज्झिता ७ च विगतप्राणा ८ रता श्रेयसि ९ ॥ सिद्धार्था १० विभवान्विता ११ च विधना १२ भावेषु मूर्त्यादिषु ॥ ५ ॥

अथ शुक्रस्य फलं ।

मनोभीष्टा भर्तु १ र्धनचयपरा २ देवररता ३ कुलेष्टा ४ सत्पुत्रा ५ विहितबहुवैरा ६ न्यनिरता ७ ॥ व्यसु ८ र्धर्मेष्टा ९ स्यात्कुशलनिरता १० भूरिविभवा ११ निरर्था १२ शुक्रे स्याद्भवति खलु लग्नप्रभृतिषु ॥ ६ ॥

अथ शनेः फलं ।

स्यात्पुंश्चल्य १ धना २ ऽर्थवत्य ३ थ यशो-हीना ४ च हृद्रोगिणी ५ शत्रुघ्ना ६ निजगर्भपात-नरता ७ नीरुक् ८ च भग्नव्रता ९ ॥ दुःशीला १० बहुवित्तसंग्रहपरा ११ पानप्रसक्तांगना १२ स्याद्ल-

आद्रविनंदनेन शिखिना स्वर्भानुना च क्रमात्॥७॥
शनिवत् राहुकेत्वोरपि फलं ज्ञेयम् ॥

इति श्रीकर्पूरस्थलीयदेवज्ञदुनिचंद्रात्मज-
पण्डितविष्णुदत्तवैदिकसंगृहीतं विवाह-
कुंडलीस्थितग्रहफलं समाप्तम् ।
समाप्तश्चायं प्रकीर्णाध्यायः ।

अथ वंशवर्णनम् ।

अस्ति महात्मा किल गौतमो मुनिः कर्ता स्मृति-शास्त्रपरम्पराणाम् ॥ षड्दर्शने दर्शनमेव पूर्वं यस्तर्कशास्त्रं प्रकरोन्महर्षिः ॥ १ ॥ तस्यान्वये रत्नविशुद्धवर्णे कर्णे श्रुतीनां तद्धर्मवत्परे ॥ मह-त्परे सम्प्रति संबभूव कन्हैयारामात्मजतुलसी-रामः ॥ २ ॥ महाप्रभावश्च हि स महात्मा गंगा-तटे निर्मलवारिराशौ ॥ एह्येहि पुत्रेति हि वत्स-लत्वादाहूत एवाऽविशतीह अङ्के ॥ ३ ॥ स्थित्वा क्षणं तत्र हि अङ्कमध्ये ध्यात्वा शिवं शङ्करमप्रमे-

यम् ॥ संपश्यता तत्र हि साधवानां त्यक्त्वा तनुं ज्योतिरिवाबभूव ॥ ४ ॥ तत्सूनुपश्चादिह तत्प्रभावात् संप्राप्तविद्यो गुरवे सकाशात् ॥ संशोभते देवविदां हि मध्ये देवज्ञविद्वान् दुनिचन्द्रनाम्ना ॥ ५ ॥ तदात्मजेनापि हि वैदिकेन अधीतवेदाङ्गकदर्शनेन ॥ श्रीविष्णुदत्तेन सुदर्शनेन कृता हि टीका सर्वोपकारिणी ॥ ६ ॥ नत्वा गुरुं शास्त्रनिविष्टचक्षुं दत्तान्वये रत्नमिवावभूतम् ॥ अभूतपूर्वं च हि संप्रभूतं श्रीरामनाथं संशास्त्रिणं हि ॥ ७ ॥ श्रीकाशिजन्मादिह लब्धवर्णं विद्यासमूहस्य द्वितीयमोकः ॥ अधीतयेभ्यश्च हि वेदसर्वं गोपालशास्त्रिस्वगुरुं च मुहुः प्रणोमि ॥ ८ ॥ श्रीहरिभक्तं महात्मानं शास्त्रिणं प्रणमाम्यहम् ॥ यस्य संगात्समालब्धं ज्ञानं विज्ञानमेव च ॥ ९ ॥ मित्रं हि साधुरामं च विष्णुदासं तथैव च अन्यान्स्वाध्यायवर्गान्स्वान्नमस्कृत्य पुन पुनः ॥ १० ॥ कपूरस्थले रम्ये अद्रिवेदांक भूमिते ॥ वैक्रमे मधुमासे च कृता टीका मनोरमा ॥ ११ ॥

इति वंशवर्णनं समाप्तम् ।

अथार्कविवाहः ।

प्रयोगरत्ने मात्स्ये ।

ॐ स्वस्ति श्रीगणेशाय नमः ॥ तृतीयां मानुषीं नैव चतुर्थीं यः समुद्वहेत् । पुत्रपौत्रादिसंपन्नः कुटुंबी साग्निको वरः ॥ उद्वहेद्वतिसिद्ध्यर्थं तृतीयां न कदाचन । मोहादज्ञानतो वापि यदि गच्छेत्तु मानुषीम् ॥ नश्यत्येव न संदेहो गर्गस्य वचनं यथा ॥ तत्रैव संग्रहे–तृतीयां यदि चोद्वाहेत्तर्हि सा विधवा भवेत् । चतुर्थ्यादिविवाहार्थं तृतीयेऽर्कं समुद्वहेत् ॥ आदित्यदिवसे वापि हस्तर्क्षे वा शनैश्चरे । शुभे दिने वा पूर्वाह्णे कुर्यादर्कविवाहकम् ॥

व्यासः–स्नात्वालंकृतवासास्तु रक्तगंधादिभूषितम् । सपुष्पफलशाखैकमर्कगुल्मं समाश्रयेत् ॥ सलक्षणेन संयुक्तमर्कं संस्थाप्य यत्नतः । अर्ककन्याप्रदानार्थमाचार्यं कल्पयेत्पुरा ॥ अर्कसन्निधिमागत्य तत्र स्वस्त्यादि वाचयेत् । नांदीश्राद्धे हिरण्येन अष्टवर्गान् प्रपूजयेत् ॥ पूजयेन्मधुपर्केण वरं

विप्रस्य हस्ततः । यज्ञोपवीतं वस्त्रं च हस्तकर्णा-
दिभूषणम् ॥ उष्णीषगंधमाल्यादि वरायास्मै प्रदा-
पयेत् । स्वशाखोक्तप्रकारेण मधुपर्कं समाचरेत् ॥

ब्राह्मे-ग्रामात्प्राच्यामुदीच्यां वा सपुष्पफलसं-
युतम् । परीक्ष्य यत्नतोऽधस्तात्स्थण्डिलादि यथा-
विधि ॥ कुर्यादितिशेषः ॥ कृत्वार्कं पुरतस्तिष्ठन्
प्रार्थयेत द्विजोत्तमः । त्रिलोकवासिन्सप्ताश्व छायया
सहितो रवे ॥ तृतीयोद्वाहजं दोषं निवारय सुखं
कुरु । तत्राध्यारोप्य देवेशं छायया सहितं रविम् ॥
वस्त्रैर्माल्यैस्तथा गन्धैस्तन्मंत्रेणैव पूजयेत् । तत्रैव
श्वेतवर्णेन तथा कार्पासतंतुभिः ॥ गन्धपुष्पैः
समभ्यर्च्य अब्लिंगैरभिषिच्य च । गुडोदनं तु नैवेद्यं
ताम्बूलं च समर्पयेत् ॥

व्यासः-अर्कं प्रदक्षिणकुर्वन् जपेन्मंत्रमिमं बुधः ।
मम प्रीतिकरा येयं मया सृष्टा पुरातनी ॥ अर्कजा
ब्रह्मणा सृष्टा अस्माकं प्रतिरक्षतु । पुनः प्रदक्षिणी-
कुर्यान्मंत्रेणानेन धर्मवित् ॥ नमस्ते मंगले देवि

---

१ आपो हिष्ठेत्यादिभिर्ऋग्भिः ।

नमः सवितुरात्मजे । त्राहि मां कृपया देवि पत्नी त्वं मे इहागता ॥ अर्क त्वं ब्रह्मणा सृष्टः सर्वप्राणिहिताय च । वृक्षाणामादिभूतस्त्वं देवानां प्रीतिवर्द्धनः ॥ तृतीयोद्वाहजं पापं मृत्युं चाशु विनाशय । ततश्च कन्यावरणं त्रिपुरुषं कुलमुद्धरेत् ॥ आदित्यः सविता चार्कपुत्री पौत्री च नप्त्रिका । गोत्रं काश्यप इत्युक्तं लोके लौकिकमाचरेत् ॥ सुमुहूर्तं निरीक्षेत् स्वस्तिसूक्तमुदीरयन् । आशीर्भिः सहितैः कुर्यादाचार्यप्रमुखैर्द्विजैः ॥ अथाचार्यं समाहूय विधिना तन्मुखाच्च तां । प्रतिगृह्य ततो होमं गृह्योक्तविधिनाचरेत् ॥

व्यासः—अर्ककन्यामिमां विप्र यथाशक्ति विभूषिताम् । गोत्राय शर्मणे तुभ्यं दत्तां विप्र समाश्रय ॥ अंजल्यक्षतकर्माणि कृत्वा कंकणपूर्वकं । यावत्पंच वृता सूत्रं तावदर्कं प्रवेष्टयेत् । स्वशाखोक्तेन मंत्रेण गायत्र्या वाथवा जपेत् । पंचीकृत्य पुनः सूत्रं स्कंधे बध्नाति मंत्रतः ॥ बृहत्सामेति मंत्रेण सूत्ररक्षां प्रकल्पयेत् । अर्कस्य पुरतः पश्चाद्दक्षिणोत्तरतस्तथा ॥ कुम्भांश्च निक्षिपेत्पश्चादाग्नेयादिचतुष्टये । सर्वत्र

प्रतिकुम्भं च त्रिसूत्रेणैव वेष्टयेत् ॥ हरिद्रागन्धसंयुक्तं पूरयेच्छीतलं जलं । प्रतिकुंभं महाविष्णुं संपूज्य परमेश्वरं ॥ पाद्यार्घादिनिवेद्यान्तं कुर्यान्नाम्नैव मंत्रवित् ॥

अथ शौनकोक्तो होमप्रकारः ।

तृतीये स्त्रीविवाहे तु संप्राप्ते पुरुषस्य तु । आर्कं विवाहं वक्ष्यामि शौनकोऽहं विधानतः ॥ अर्कसन्निधिमागत्य तत्र स्वस्त्यादि वाचयेत् । नान्दीश्राद्धं प्रकुर्वीत स्थंडिलं च प्रकल्पयेत् ॥ अर्कमभ्यर्च्य सौर्या च गंधपुष्पाक्षतादिभिः ॥ सौर्या सूर्यदैवत्यया ॥ आकृष्णेनेत्यनया ॥ स्वयं बाल कृतस्तद्वद्वस्त्रमाल्यादिभिः शुभैः । अर्कस्योत्तरदेशे तु समन्वरब्धा एतया ॥ एतयार्ककन्यया ॥ उल्लेखनादिकं कुर्यादाघारांतमतः परम् । आज्याहुतिं च जुहुयात्संगोभिरनयैकया ॥ यस्मै त्वा कामकामायेत्येतयर्चा ततः परं । व्यस्ताभिश्च समस्ताभिस्ततश्च स्विष्टकृद्भवेत् ॥ परिषेचनपर्यंतमयाश्चेत्यादिकं क्रमात् । प्रार्थनामंत्रादिविशेषमाह व्यासः ॥ पुनः प्रदक्षिणं कृत्वा मंत्रमेतमुदीरयेत् । मया कृतमिदं कर्म स्थावरेषु जरायुणा ॥ अर्कापत्यानि नो देहि

तत्सर्वं क्षंतुमर्हसि । इत्युक्त्वा शांतिसूक्तानि जप्त्वा तं विसृजेत्पुनः ॥ गोयुग्मं दक्षिणां दद्यादाचार्याय च भक्तितः । इतरेभ्योऽपि विप्रेभ्यो दक्षिणां चापि शक्तितः ॥ तत्सर्वं गुरवे दद्यादंते पुण्याहमाचरेत् ॥

अथ प्रयोगविधिः ।

तृतीयोद्वाहात्प्राग्दिनचतुष्टयाधिकव्यवहिते रविवारे शनिवारे हस्तनक्षत्रे शुभदिनांतरे वा ग्रामात्प्राच्यामुदीच्यां वा पुष्पफलयुतार्काधस्तात्स्थण्डिलं कृत्वाऽर्कपश्चिमत उपविश्य मासपक्षाद्युल्लिख्य मम तृतीयमानुषीविवाहजदोषापनुत्त्यर्थमर्कविवाहं करिष्ये इति संकल्प्य गणेशपूजास्वस्तिवाचनमातृपूजनवृद्धिश्राद्धाचार्यवरणानि कुर्यात् । तत्र वृद्धिश्राद्धं सुवर्णेन ॥ अथाचार्येण पूजितो वरः ॥ त्रिलोकवासिन् सप्ताश्व छायया सहितो रवे । तृतीयोद्वाहजं दोषं निवारय सुखं कुरु ॥ इत्यर्कं संप्रार्थ्याऽर्कं ॥ आकृष्णेनेति छायया सहितं रविमावाह्य श्वेतवस्त्रसूत्राभ्यामावेष्ट्य संपूज्यापोहिष्ठेत्यादिभिरभिषिच्य गुडोदनतांबूलादि र्घ्यं प्रदाशिणीकुर्वन् ॥ मम प्रीतिकरा येयं मया

सृष्टा पुरातनी । अर्कजा ब्रह्मणा सृष्टा अस्माकं प्रतिरक्षतु ॥ इति पठेत् । द्वितीयप्रदक्षिणायां तु ॥ नमस्ते मंगले देवी नमः सवितुरात्मजे त्राहि मां कृपया देवि पत्नी त्वं मे इहागता॥ अर्क त्वं ब्रह्मणा सृष्टः सर्वप्राणिहिताय च । वृक्षाणामादिभूतस्त्वं देवानां प्रीतिवर्द्धनः ॥ तृतीयोद्वाहजं पापं मृत्युं चाशु विनाशयेति ॥ तत आचार्येण मासपक्षाद्युल्लिख्य काश्यपगोत्रामादित्यपुत्रीं सवितुः पौत्रीमर्कस्य प्रपौत्रीमिमामर्ककन्यामित्युक्ते वरः स्वस्तिनइंद्रोवृद्धश्रवा इति सूक्तं पठन्नर्कं निरीक्षेत । तत आचार्यो विप्रैः सहाशिषो दत्त्वामुकगोत्रामुकशर्म्मणे संप्रददे इत्यर्ककन्यां दत्त्वा ॥ अर्ककन्यामिमां विप्र यथाशक्ति विभूषिताम् ॥ गोत्राय शर्म्मणे तुभ्यं दत्तां विप्र समाश्रयेति पठेत् । वरस्तु यज्ञो मे कामः समृद्ध्यतामिति प्रथमां धर्मो मे इति द्वितीयां यशो मे तृतीयामिति त्रीनक्षतांजलीनर्कोपरि क्षिप्त्वा गायत्र्या परित्वेत्यादिना वा पंचावृता सूत्रेणार्कमावेष्ट्य तत्सूत्रं पुनः पंचगुणं कृत्वार्कस्य स्कंधे बद्ध्वा गृह-

त्सामेति रक्षां परिकल्प्यार्कस्य दिग्विदिक्ष्वष्टौ कुंभान् संस्थाप्य वस्त्रेण त्रिसूत्रेण चावेष्ट्य हारिद्रार्घ्यंधाद्यंतः क्षिप्त्वा तेषु नाम्ना महाविष्णुमावाह्य षोडशोपचारैः संपूज्य स्थंडिलेऽग्निं प्रतिष्ठाप्य आघारावाज्येनेत्यंतमुक्त्वात्र प्रधानं बृहस्पतिमग्निं वायुं सूर्यं प्रजापतिं चाज्येन शेषेणेत्याद्युक्त्वाघारांते संगोभिरांगिरसोबृहस्पतिस्त्रिष्टुप्॥ अर्कविवाहहोमे विनियोगः ॥ ॐ संगोभिरांगिरसोनक्षमाणोभगइवेदर्यमणंनिनाय । जनेमित्रोनदंपतीअनक्तिबृहस्पते वाजयाशूँरिवाजौ स्वाहा बृहस्पतय इदं न ममेति त्यजेत्। यस्मैत्वाकामदेवोग्निस्त्रिष्टुप् विनियोगः प्राग्वत् ॥ ॐ यस्मैत्वाकामकामायवयंसम्राडयजामहे ॥ तमस्मभ्यंकामंदत्त्वाथेदंत्वंघृतंपिबस्वाहाअग्नयइदं० ॥ ततो व्यस्तसमस्तव्याहृतिभिर्हुत्वा स्विष्टकृदादिकर्मशेषंसमाप्यार्कं प्रदक्षिणीकृत्य ॥ मया कृतमिदं कर्म स्थावरेण जरायुणा । अर्कापत्यानि नो देहि तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि ॥ इति प्रार्थ्याचार्याय गोयुग्ममन्येभ्यश्च विप्रेभ्यो यथाशक्ति दक्षिणां दत्त्वा शांतिसूक्तं जप्त्वा पूर्णोपस्करानाचार्याय दत्त्वा

दिनचतुष्टयमाग्निं कुंभांश्च रक्षेत् ॥ कुंभेषु महा-
विष्णुं पूजयेच्च ॥

पंचमदिनकृत्यं ।

ब्राह्मे—चतुर्थे दिवसेऽतीते पूर्ववत्तां प्रपूज्य च ।
विसृज्य होममाग्निश्च विधिना मानुषीं परां ॥ उद्वहे-
दन्यथा नैव पुत्रपौत्रसमृद्धिमान् ॥ इत्यर्कविवाहः
समाप्तः ॥

अथ विवाहनिर्णयः ।

श्रीतारानाथतर्कवाचस्पतिभट्टाचार्य्यसंगृहीतवा-
दार्थसारांशमादायानैश्चयार्थं प्रमाणानि प्रदर्श्यंते ।

तद्यथा ईशं नत्वा दर्श्यतेऽत्र वेदादिशास्त्रमानतः
एकस्य कामतोऽनेकसवर्णापाणिपीडनम् ॥ धर्म
तत्वं बुभुत्सूनां बोधनायैव मत्कृतिः । तेनैव कृत-
कृत्योऽस्मि न जिगीषास्ति लेशतः ॥ पाणिग्रह-
णिका मंत्रा नियतं दारलक्षणम् । तेषां निष्ठा तु
विज्ञेया विद्वद्भिः सप्तमे पदे ॥

मनुः—पाणिग्रहणसंस्कारः सवर्णासूपदिश्यते ।
विवाहमात्रं संस्कारं शूद्रोऽपि लभते सदेति ॥

छांदोगपरिशिष्टे—स्त्रापितृभ्यः पिता दद्यात् सुत-

संस्कारकर्माणि । पिण्डानोद्वहनात्तेषां तदभावेऽपि तत्क्रमादिति ॥ विवाहस्य संस्कारत्वे सति तत्र विशेषो वक्ष्यते ॥ बलादपहृता कन्या मन्त्रैर्यदि न संस्कृता । अन्यस्मै विधिवद्देया यथा कन्या तथैव सेति पराशरभाष्यादिधृतकात्यायनवचनेन राक्षसादावपहरणमात्रे कन्यैव ॥

यथा वा—अद्भिर्वाचा प्रदत्तायां म्रियेतोर्ध्वं वरो यदि । न च मंत्रोपनीता तु कुमारी पितुरेव सेति ॥

विवा०—उद्वाहतत्वधृतवाशिष्ठवचनेन वाङ्मात्रदाने उदकपूर्वदाने वा मंत्रसंस्काराभावे अन्यस्मै देयेति मन्यते ॥

मंत्रसंस्कृता तु सा—शरीरार्धं स्मृता जाया पुण्यापुण्यफले समेति ॥ अस्थिभिरस्थीनिमा २ सेस्ते मा २ सानित्वचात्वचामित्यादिभिः शरीरार्धहरा अर्द्धफलभाग्भवतीत्याशयः ॥

पतिलक्षणं निर्णयसिंधौ यथा—नोदकेन च वाचा च कन्यायाः पतिरुच्यते । पाणिग्रहणसंस्कारात्पतित्वं सप्तमे पदे इति ॥

तथा च हारीतः—पाणिग्रहणेन जायात्वं कृत्स्नं हि जायापतीत्वं सप्तमे पदे इति ॥

अथ का भार्या कार्या अत्र पैठीनसिः—भार्याः कार्याः सजातीयाः सर्वेषां श्रेयस्यः स्युरिति ॥

केन विवाहेन— गांधर्वादिविवाहेषु शुभो वैवाहिको विधिः । कर्तव्यश्च त्रिभिर्वर्णैः समर्थैश्चाग्निसाक्षिकः ॥ अत्र त्रिभिरिति विशेषणात् विप्रस्यात्र नाधिकार इति विशेषः ॥

का विधिस्तेष्वित्यपेक्षायाम्—गांधर्वासुरपैशाचा विवाहा राक्षसश्च यः । पूर्वं परिश्रयस्तत्र पश्चाद्धोमो विधीयते ॥

सवर्णासु—पाणिग्रहणसंस्कारः सवर्णासूपदिश्यत इति ॥

विप्रेण क्षत्रियादिपरिणयने—शरः क्षत्रियया ग्राह्यः प्रतोदो वैश्यकन्यया ॥ मनुः ॥

तथा च याज्ञवल्क्यः—पाणिर्ग्राह्यः सवर्णासु गृह्णीयात्क्षत्रिया शरं । वैश्या प्रतोदमादद्याद्वेदने त्वग्रजन्मनः ॥ वस्तुतस्तु—स्वदारनिरतः सदेति मानववचनस्य परदारान् न गच्छेदिति परिसंख्यापरतायाः सर्वैः स्वीकारेण परदारगमननिषेधात् तद्व्युदासेन अनिषिद्धस्त्रीगमनं शास्त्रविहितस्त्रीसंस्कारं विनानुपपन्नमिति संस्कार आक्षिप्यते ॥

सवर्णायां संस्कृतायां स्वयमुत्पादयेत्तु यम् । औरसं तं विजानीयादिति औरसो धर्म्मपत्नीजः ॥ इति याज्ञवल्क्यस्मृतिः ॥

स्त्रीपरिणयनफलम्—अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा । दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितॄणामात्मनश्चह ॥ मनुः—लोकानंत्यं दिवः प्राप्तिः पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः । यस्मात्तस्मात्स्त्रियः सेव्याः कर्तव्याश्च सुरक्षिताः ॥ याज्ञवल्क्यस्मृ० । पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात् पितरं त्रायते सुतः । तस्मात्पुत्र इति प्रोक्त इत्यादि पुत्रः । पुरु त्रायते निपरणाद्वा पुं नरकं ततस्त्रायत इति निरुक्तम् ॥ पुत्रेण लोकान् जयति पौत्रेणानंत्यमश्नुते इत्यादि ॥

कीदृशी स्त्री स्यादित्याकांक्षायाम् मनुः—असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः । सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने इति ॥

तया हि सहितः सर्वान् पुरुषार्थान् समश्नुते । अनाश्रमी न तिष्ठेत्तु दिनमेकमपि द्विजः ॥ आश्रमेण विना तिष्ठन् प्रायश्चित्तीयते हि सः ॥

दक्षः—न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते ।

पं० तोत्राल

तया हि सहितः सर्वान् पुरुषार्थान् समश्नुते ॥ द्वितीयमायुषो भागं कृतदारो गृहं वसेदिति मनुः । अथ नापुत्रस्य लोकोऽस्तीति ॥ नैमित्तिकानि काम्यानि निपतन्ति यथा यथा । तथा तथैव कार्य्याणि न कालस्तु विधीयते ॥ अथ प्रथमभार्यायां सत्यामन्याधिवेतव्येति नवेति कांक्षायां मनुः ॥ वन्ध्याष्टमेऽधिवेतव्या दशमे स्त्री मृतप्रजा। एकादशे स्त्रीजननी इत्यादि ॥ स्त्रीप्रसूश्चाधिवेतव्या पुरुषद्वेषिणी तथा इति याज्ञवल्क्यः ॥ अधिविन्ना तु भर्तव्या महदेनोऽन्यथा भवेदित्युक्ते वंध्यादीनामपि भूषणवस्त्रादिभिर्भरणं न तु त्यागः पापभयात् । अधिविन्ना तु या नारी निर्गच्छेद्रोषिता गृहात् । सा सद्यस्तु निरोद्धव्या त्याज्या वा कुलसन्निधौ ॥ एकामूढ्वा तु कामार्थमन्यां वोढुं य इच्छति । समर्थस्तोषयित्वार्थैः पूर्वोढामपरां वहेत् ॥ अप्रजां दशमे वर्षे स्त्रीप्रजां द्वादशे त्यजेत् । मृतप्रजां पंचदशे सद्यस्त्वप्रियवादिनीम् ॥

अन्यच्च—अथ यदि गृहस्थो द्वे भार्ये विन्देत कथं कुर्यादिति बोधायनमाशंक्य यस्मिन् काले विन्दे-

तोभावग्नी परिचरेदित्युपक्रम्य द्वयोर्भार्ययोरन्वारब्धयोर्यजमान इति ॥

तथा च कात्यायनः—नैकयापि विना कार्यमाधानं भार्यया द्विजैः। अकृतं तद्विजानीयात् सर्वाभिर्नारभेद्यदि ॥ एकैकामेवासां संनह्यादेकैकां गार्हपत्यमीक्षयेत्। एकैकामाज्यमवेक्षयेदिति ॥ यदेकस्मिन् यूपे द्वे रशने परिव्ययति। तस्मादेको द्वे भार्ये विन्दतेति श्रुतिः। श्रुतिस्मृतिपुराणानां विरोधो यत्र विद्यते। तत्र श्रौतं प्रमाणं स्यात्तयोर्द्वैधे स्मृतिर्वरा ॥ व्यासः—विरोधे त्वनपेक्षेत सति ह्यनुमानमिति जैमिनिसूत्रम्।

तथा च महाभारते—एकस्य बह्व्यो विहिता महिष्यः कुरुनन्दन। नैकस्या बहवः पुंसः श्रूयन्ते पतयः क्वचित् ॥ भार्याः कार्याः सजातीयाः सर्वेषां श्रेयस्यः स्युरित्यत्रापि बहुवचनम् ॥

तथा च कात्यायनः—अग्निहोत्रादिशुश्रूषां बहुभार्यः सवर्णया। कारयेत्तद्बहुत्वे च ज्येष्ठया गर्हिता न चेत् ॥ सवर्णासु विधौ धर्म्ये ज्येष्ठया न विनेतरेति याज्ञवल्क्यः ॥

तथा च महाभारते--ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश । एकैव भार्या स्वीकार्या धर्मकर्मोपयोगिनी ॥ प्रार्थने चातिरागे च ग्राह्यानेकापि च द्विज । आद्यायां विद्यमानायां द्वितीयामुद्वहेद्यदि ॥ तदा वैवाहिकं कर्म कुर्यादावसथेऽग्निमान् ॥ नि० सिं०--सदारोऽन्यान् पुनर्दारानुद्वोढुं कारणांतरात् । यदीच्छेदग्निमान् कश्चित् क होमोऽस्य विधीयते ॥ स्वेऽग्नावेव भवेद्धोमो लौकिके न कदाचन ॥ कात्यायनः ॥

मात्स्ये यथा-उद्वहेद्रतिसिद्ध्यर्थं तृतीयां न कदाचन । मोहादज्ञानतो वापि यदि गच्छेत्तु मानुषीम् ॥ नश्यत्येव न संदेहो गर्गस्य वचनं यथेति ॥ तृतीयस्त्रीविवाहे तु संप्राप्ते पुरुषस्य तु । अर्के विवाहं वक्ष्यामि शौनकोऽहं विधानतः ॥ इत्युपक्रम्य ॥ विसृज्य होम्यमग्निं च विधिना मानुषीं पराम् । उद्वहेदन्यथा नैव पुत्रपौत्रादिवृद्धिमान् ॥ विसृज्याग्निं कंकणं च मानुषीमुद्वहेत्पराम् । अनेन विधिना यस्तु कुर्यादर्कविवाहकम् ॥ पुत्रपौत्रादिसंपत्तिश्चतुर्थ्यां लभते नरः । चतुर्थादिविवाहार्थं तृतीयेऽर्कं

समुद्वहेत् ॥ ऋणत्रयमपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत् ॥ जायमानो वै पुरुषस्त्रिभिर्ऋणैर्ऋणीभवति ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यः यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्य इति । एतदुक्तं भवति निदर्शितबहुप्रमाणैरेकपुरुषस्य बहुभार्याकरणं सिद्धम् ॥ एतद्विषये किं स्ववर्णा उत ब्राह्मणादिभिरसवर्णाः कार्या अत्र को मुख्यकल्पः कश्च गौणः ॥

अत्रोच्यते यथाह मनुः—सवर्णाग्रे द्विजातीनां प्रशस्ता दारकर्मणि । कामतस्तु प्रवृत्तानामिमाः स्युः क्रमशो वराः ॥ शूद्रैव भार्या शूद्रस्य सा च स्वा च विशः स्मृते । ते च स्वा चैव राज्ञश्च ताश्च स्वा चाग्रजन्मनः ॥

तथाह याज्ञवल्क्यः—तिस्रो वर्णानुपूर्व्येण द्वे तथैका यथाक्रमम् । ब्रह्मक्षत्रविशां भार्या स्वा चैव शूद्रजन्मनः ॥ भार्याः कार्याः स्वजातीयाः सर्वेषां श्रेयस्यः स्युरिति मुख्यः कल्पस्तदनु चतस्रो ब्राह्मणस्य तिस्रो राजन्यस्य द्वे वैश्यस्येति ॥ सवर्णायां सवर्णासु जायन्ते हि सजातयः । अनिन्द्येषु विवाहेषु पुत्राः सन्तानवर्द्धनाः ॥ इति याज्ञवल्क्यपैठीनसिमन्वादिवचनैः स्वजातीयविवाहेषु विशेषफल-

प्रतिपादनात् मुख्योऽयं कल्पः सर्वैराभिवंद्यः ॥ कामतस्तु प्रवृत्तानामिमाः स्युः क्रमशो वराः । यदि कामात् रागात् लोभात् क्रमशः प्रवर्तेत तदा चेमं पक्षमाश्रयेदिति निष्कर्षः ॥

याज्ञ० स्मृ० अथ विवाहभेदा निरूप्यन्ते–ब्राह्मो विवाह आहूय दीयते शक्त्यलंकृता । तज्जः पुनात्युभयतः पुरुषानेकविंशतिम् ॥ यज्ञस्थ ऋत्विजे चैव आदायार्षस्तु गोद्वयम् । चतुर्दश-प्रथमजः पुनात्युत्तरजश्च षट् ॥ इत्युक्त्वाचरतां धर्मं सह या दीयतेऽर्थिने । सकायं पावयेत्तज्ज षड्षड्वं-श्यान् सहात्मना ॥ आसुरो द्रविणादानात् गांधर्वः समयान्मिथः । राक्षसो युद्धहरणात्पैशाचः कन्य-काछलात् ॥ पाणिर्ग्राह्यः सवर्णासु गृह्णीयात्क्षत्रिया शरम् । वैश्या प्रतोदमादद्याद्वेदने त्वग्रजन्मनः ॥

अधिकारिणः कन्यादानस्य–पिता पितामहो भ्राता सकुल्यो जननी तथा । कन्याप्रदः पूर्वनाशे प्रकृतिस्थः परः परः ॥

अथ कतिविधाः पुत्राः–औरसो धर्मपत्नीजस्त-त्समः पुत्रिकासुतः । क्षेत्रजः क्षेत्रजातस्तु सगोत्रेणे-

तरेण वा ॥ गृहे प्रच्छन्न उत्पन्नो गूढजस्तु सुतः स्मृतः । दद्यान्माता पिता वायं स पुत्रो दत्तको भवेत् ॥ क्रीतश्च ताभ्यां विक्रीतः कृत्रिमः स्यात्स्वयं कृतः । दत्तात्मा तु स्वयं दत्तो गर्भे विन्नः सहोढजः ॥ उत्क्षिप्तो गृह्यते यस्तु सोऽपविद्धो भवेत्सुतः ॥ इत्याद्युपक्रम्यांते ॥ पिण्डदोंऽशहरश्चैषां पूर्वाभावे परः परः ॥ इत्यादिप्रमाणैः पुरुषस्य बहुस्त्रीत्वं सिद्ध्यति ॥ अत्राशंक्यते यथा बह्व्यः पुरुषस्य स्त्रिय एवं स्त्रीणामपि बहवः पुरुषाः स्युः ॥ अत्र किं प्रमाणं येन पुरुषेण बह्व्यः स्त्रियः कार्याः ॥ ननु स्त्रिया बहुपुरुषा इति शङ्क्यमानं प्रत्याह श्रूयतां भोः ॥

तथा श्रुतिः—यदेकस्मिन् यूपे द्वे रशने परिव्ययति तस्मादेको द्वे भार्ये विन्दते ॥ इति श्रुतिः ॥ तस्मादेको बह्वीर्विन्दतेति श्रुतिः ॥ तस्मादेकस्य बह्व्यो जाया भवन्ति नैकस्यै बहवः सहपतय इति श्रुतिः ॥

तथाच स्मृतिः याज्ञवल्क्यः—सकृत्प्रदीयते कन्या हरंस्तां चोरदण्डभाक् । मृते जीवति वा

पत्यौ या नान्यमुपगच्छंति ॥ सेह कीर्तिमवाप्नोति मोदते चोमया सह । इत्यादिश्रुतिस्मृतिनिष्पन्नत्वा-त्पुरुषस्यैव बह्व्यः स्त्रियो न तु स्त्रीणां बहुपुरुषा अन्यथा व्यभिचारप्रसङ्गः स्यात् ॥

यथाह मनुः—आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्रावि-रोधिना । यस्तर्केणानुसंधत्ते तद्धर्मं वेद नेतरः ॥ नतु स्वकपोलकल्पितयुक्तयः ॥ इति श्रुतिस्मृति-पुराणनिष्पन्नं विवाहस्य संक्षेपतो निर्णयः कृतः । विस्तरस्तु तत्तद्ग्रंथेभ्यो ज्ञेय इति शम् ॥

इति श्रीकर्पूरस्थलनिवासिगोतमगोत्र (शोरि)
जात्यालंकृतदैवज्ञदुनिचन्द्रात्मज० पं० विष्णु-
दत्तवैदिककृतविवाहनिर्णयः समाप्तः ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
" लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर " स्टीम् प्रेस,
कल्याण—मुंबई.

खेमराज श्रीकृष्णदास,
" श्रीवेङ्कटेश्वर " स्टीम् प्रेस,
खेतवाडी—मुंबई.

जाहिरात.

	की. रु. आ.
अष्टशान्ति–इसमें–१ सूर्यादिग्रह, २ सप्तग्रहीयोग, ३ मघारेवत्यादि, ४ ज्वरादिरोगोत्पत्ति, ५ सर्व-नक्षत्र, ६ ग्रहण, ७ काकमैथुनदर्शन और ८ पल्लीसरटपतन ये आठ शान्ति हैं.	०–२
अष्टलिङ्गतोभद्र–रंगीन.	०–१
अथर्ववेद–कौशिकसूत्रानुसारी आह्निक–गुजराती भाषाटीकासमेत.	१–४
अन्त्येष्टी श्राद्धकर्मपद्धति–पं० चतुर्थीलालजीकृत नूतन छपकर तैयार है	०–१२
आह्निकसूत्रावली–यजुर्वेदी–प्रातस्मरणसे लेकर शयन पर्यंतके सब कर्मप्रयोग एकत्र कियेगये हैं.	१–८
आश्लेषाशान्ति और ज्येष्ठाशान्ति–इसमें आश्लेषा और ज्येष्ठा नक्षत्रमें शान्तिका प्रयोग	०–२
उपाकर्मपद्धति–अर्थात् (श्रावण शुक्ल १५ की) शुक्ल यजुर्वेदियोंकी श्रावणी इसमें–नूतन यज्ञो-पवीत धारण करनेका तथा स्नानविधिसमेत प्रयोग लिखा है	०–८
ऋग्वेद–सांख्यायन शाखाका आह्निक गुजराती भाषाटीकासमेत.	१–४
एकलिंगतोभद्र रंगीन.	०–१

कात्यायनीशान्ति–अर्थात् कात्यायन सूत्रानुसारी
ग्रहशान्तिप्रयोग. ०–२

कात्यायनी तर्पण बडा .... ०–१॥

कुशकण्डिकाभाष्य–इसमें कुण्ड और स्थण्डिला-
दिकी विधि, ब्रह्मा स्थापन आदि विषय हैं. ०–४

गयायात्रापद्धति–(गयाजीमें श्राद्धादि करनेकी
विधि है) ०–४

ग्रहशान्ति–(शुक्लयजुर्वेदोक्त) यह यज्ञोपवीत
तथा विवाहादि शुभकर्ममें बहुत उपयोगी है ०–८

गौडीयश्राद्धप्रकाशमहानिबन्ध–इसमें–श्राद्धस्वरूप,
श्राद्धमें ब्राह्मणलक्षण, महालयादि निर्णय और
श्राद्धप्रयोग, क्षयाहश्राद्ध, संकल्पश्राद्ध, हेमश्राद्ध,
एकादशादिश्राद्ध, मासिकश्राद्ध, मघादिश्राद्ध,
तथा नान्दिश्राद्धादि बहुतसे श्राद्ध और विष्ण्वा-
दिपूजन, पितृतर्पणादि अपूर्व संग्रह हैं। चारों
वर्णोंको उपयोगी है १–०

गोदानपद्धति–इसमें–गोदान देनेवालेको गौका पूजन
दान आदिका संकल्प भलीभांति लिखागया है. ....०–१॥

गोदानव्यवस्था. ०–१

गोविन्दार्चनचन्द्रिका, इसमें–संपूर्ण कर्मकाण्ड और
व्रतादिका अपूर्व संग्रह है। यह "गोविन्दार्चनच-
न्द्रिका" ग्रन्थ अर्चनाग्रन्थोंमें अत्युत्तम संग्रह

कियाहै । यह ग्रन्थ श्रौत और स्मार्तधर्मोंको प्रकाश करताहुआ गोविन्द-भगवान्‌की पूजा-अर्चनको १६ उल्लासोंमें प्रकाशित करता है. ५-०

चतुर्लिंगतोभद्र-रंगीन. ०-१

जलाशयोत्सर्गप्रकाश-महानिबन्ध-अर्थात् वापी, कूप तडागादिकोंकी शान्ति-कलशस्थापनसे लेके होमतक भलीभांति है. १-१२

जन्मदिनपूजापद्धति-अर्थात् प्रतिवर्ष अपने २ जन्ममें पूजनीय देवकी पूजनविधि. .... ०-१॥

ज्येष्ठाशान्ति-ज्येष्ठा नक्षत्रमें जननादि शान्ति .... ०-१॥

तुलसीविवाहविधि ०-२

तुलसीपूजापद्धति .... ०-१॥

तुलसीविवाहपद्धति-इसमें कार्तिकशुक्ल ११ एकादशीके रोज तुलसी और भगवान्‌की लग्न विधि लिखी है. ०-२

तुलसीसन्ध्या-भाषाटीकासहित श्रीस्वामी-विद्याप्रकाश विरचित. .... ०-१॥

दशकर्मपद्धति-इसमें-गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, नामकर्म, निष्क्रमण अन्नप्राशन, चूडाकर्म, कर्णवेध, उपनयन, वेदारम्भ, समावर्तन-विवाह और चतुर्थीकर्मादिविषय है ०-७

देवऋषितर्पण-नित्योपयोगी है ०-१२

द्वादशलिंगतोभद्र-रंगीन ०-१

धनिष्ठापञ्चकशान्ति—धनिष्ठासे रेवती नक्षत्रतक पंचक आते हैं उनकी शान्ति इसमें लिखीगईहै. .... ०—२

नवग्रहकांडी—(नित्यपूजाविधानपद्धति) वैदिक मंत्रोंकी संस्कृतटीका तथा भाषाटीकासहित .... ०—१॥

नवग्रहविधानपद्धति—मनुष्यको अनिष्ट ग्रह होनेपर प्रत्येक ग्रहके स्तोत्र—पाठादि पढनेको अवश्य लेना चाहिये. .... ०—४

नारायणबलिप्रयोग—इसमें जीर्णव्रतोद्धारके लिये श्राद्ध लिखागयाहै .... ०—६

नान्दीमुखश्राद्ध. .... ०—२

नारदपञ्चरात्र—अर्थात् भारद्वाजसंहिता संस्कृतटीका-सहित .... १—०

नित्यकर्मपद्धति—यह छोटासा ग्रन्थ बहुत उपयोगीहै ०—२

पुस्तकें मिलनेका ठिकाना—

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,

"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना,

कल्याण—मुंबई.